॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

सितम्बर २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ९

वार्षिक १३०/– **एक प्रति ३०/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. विवेकानन्द-वन्दना ३८९
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ३८९
३. स्वामी विवेकानन्द स्तुतिः (डॉ सत्येन्दु शर्मा) ३९०
४. जय जय केशरिया साफे की (पुरुषोत्तम नेमा) ३९०
५. सम्पादकीय : शिकागो व्याख्यान की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि ३९१
६. शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में विवेकानन्द...प्रदत्त ऐतिहासिक व्याख्यान ३९५
७. वैश्विक चिन्तन के क्षेत्र में...विवेकानन्द के शिकागो व्याख्यान का योगदान (स्वामी स्मरणानन्द) ३९८
८. स्वामी विवेकानन्द का भारत परिभ्रमण... विश्वधर्म-सम्मेलन का तात्पर्य (स्वामी भूतेशानन्द) ४००
९. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/४) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ४०२
१०. विश्वधर्म-सम्मेलन में सम्मिलित...स्वामी विवेकानन्द कैसे प्रेरित हुए (स्वामी त्यागानन्द) ४०५
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (८३) (स्वामी सुहितानन्द) ४१५
१२. (भजन) माँ! भक्ति, ज्ञान प्यार दो! (कुसुम वर्मा) ४१६
१३. बड़े पुण्य से सत्संग मिलता है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४१७
१४. विश्वधर्म...और पाश्चात्य यात्रा हेतु विवेकानन्द को प्रेरित करने वाले व्यक्ति (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ४१८
१५. (प्रेरक लघुकथा) कबीर कुसंग न कीजिए, कबहुँ न होय कल्याण (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ४२५
१६. (बच्चों का आँगन) भैंसा ने मन्त्र उच्चारित किया (स्वामी पद्माक्षानन्द) ४२६

१७. आध्यात्मिक जिज्ञासा (४५) (स्वामी भूतेशानन्द) ४२८
१८. दृग्-दृश्य-विवेक: (४) ४२९
१९. शिकागो के पथ पर स्वामी विवेकानन्द (स्वामी चेतनानन्द) ४३०
२०. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३१) ४३८
२१. (भजन एवं कविता) प्रभुजी हौं टैरत हौं कब को (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) बिगरी बनत बनत बन जइहै (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') ४३९
२२. (युवा प्रांगण) वास्तविक विजेता (सीताराम गुप्ता) ४४०
२३. साधुओं के पावन प्रसंग (९) ४४२
२४. शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन : सफलता का रहस्य और ऐतिहासिक महत्त्व (डॉ ओम प्रकाश वर्मा) ४४५
२५. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२१) (स्वामी अखण्डानन्द) ४५८
२६. धर्म और विज्ञान : एक विश्लेषण (स्वामी आत्मानन्द) ४६०
२७. (भजन एवं कविता) बन गये विवेकानन्द करके जीव सेवा (विजय कुमार श्रीवास्तव) ईश्वर से ही जगत है (डॉ शंकर लाल स्वामी) ४६२
२८. आधुनिक काल में विश्वबन्धुत्व की प्रासंगिकता (मीनल जोशी) ४६३
२९. अनिकेत का निकेत (स्वामी ओजोमयानन्द) ४६५
३०. स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण (अवधेश प्रधान) ४७३
३१. पुस्तक समीक्षा ४७५
३२. समाचार और सूचनाएँ ४७८

सितम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

५	शिक्षक दिवस
१७	विश्वकर्मा पूजा
२३	स्वामी अभेदानन्द
२८	स्वामी अखण्डानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अशीष रशिकभाई टॉक, बालाघाट (म.प्र.)	१०००/-
श्री जीवन लाल गुप्ता, भोपाल (म.प्र.)	५०००/-
....	१०००/-
श्री बनारसी दास अग्रवाल, नांदेड़ (महा.)	१०००/-
श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	८१००/-

आवरण पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो व्याख्यान की १२५वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रकाशित विशेषांक का यह विशेष आवरण पृष्ठ है। इसमें नीचे आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो का चित्र दिया गया है। चूँकि यह विश्व धर्म महासम्मेलन था, इसलिए इसमें विश्व का मानचित्र सम्पूर्ण विश्व के प्रतिनिधियों की उपस्थिति का द्योतक है। इसमें भारत का मानचित्र दर्शाया गया है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द भारत के हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखायी दे रहे हैं। स्वामीजी ने इस व्याख्यान के द्वारा विश्व पर विजय प्राप्त की थी। अत: उसके उपलक्ष्य में बनाया गया विश्व विजयिनी १२५वीं जयन्ती का प्रतीक चिन्ह (logo) भी दिया गया है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५७२. श्री ओम प्रकाश दुबे, नेमावर रोड, इन्दौर (म.प्र.)	गवर्नमेंट महारानी लक्ष्मीबाई गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, इन्दौर (म.प्र.)
५७३. श्रीमती सुदर्शन भुटानी, पीतमपुरा, दिल्ली	अहिकॉन पब्लिक स्कूल, मयूर विहार फेस -१, नईदिल्ली

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। — स्वामी विवेकानन्द

◆ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

◆ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १५००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

◆ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, IFSC CODE : CBIN0280804

पता – व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगीऔर दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान - आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

विवेकानन्द वन्दना

जीवसेवाव्रतं यस्य लक्ष्यमासीन्महीतले।
ज्ञानमात्मगतं यो वै तेन मार्गेण संगतः।।
कर्मिणे ज्ञानिने चैव भक्ताय स्वामिने पुनः।
विवेकानन्दरूपाय भूयो भूयो नमाम्यहम्।।

–इस भूमण्डल पर शिवज्ञान से जीवसेवा ही जिनका लक्ष्य था, जो उसी सेवामार्ग में विचरणकर आत्मज्ञानसम्पन्न हुए थे, उन्हीं कर्मयोगी, ज्ञानी और भक्त स्वामी विवेकानन्द को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

यत्सेवाव्रतमामन्ति मुनयो बुद्धो जिनः शंकरः
श्रीरामः कमनीयकाम्यकवने वृन्दावने माधवः।
जाह्नव्या सुतटेषु गौड़गहने गौरांदेवस्तथा
तत्वसेवाव्रतमद्य साधकवरः स्वामी पुनर्घोषते।।

–प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने, बुद्ध, जिन, शंकराचार्य ने, कमनीय काम्यक वन में श्रीरामचन्द्र ने, वृन्दावन में कुंजविहारी श्रीकृष्ण ने एवं गौड़ देश में गंगा-तट पर गौरांगदेव ने जिस सेवा धर्म की बात कही थी, उसी सेवाव्रत की घोषणा साधकवर स्वामी विवेकानन्द ने आज पुनः किया।

पुरखों की थाती

नास्ति मात्रा समं तीर्थं,
नास्ति मात्रा समा गतिः।
नास्ति मात्रा समं त्राणं
नास्ति मात्रा समा प्रपा।।६५०।।

– माता के सामान अन्य कोई तीर्थ नहीं है, माता के समान अन्य कोई आश्रय नहीं है और माता के समान कोई खिलाने, पिलाने तथा पोषण करनेवाला नहीं है।

पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।।६५१।।

– पिता स्वर्ग हैं, पिता धर्म हैं और पिता ही सर्वोच्च तपस्या हैं। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सारे देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता।।६५२।।

– सज्जन लोगों के मन, वचन तथा कर्म में एकरूपता होती है। वे लोग अपने मन में जो कुछ होता है, वही बोलते हैं और जैसा बोलते हैं, वैसा ही करते हैं।

यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवति।
काकोऽपि किं न कुरुते चञ्च्वा स्वोदरपूरणम्।।६५३।

– जिसके जीवित रहने से बहुत-से लोगों का कल्याण होता है, उसी का जीना सार्थक है, अन्यथा एक कौआ भी तो चोंच के द्वारा अपना पेट भर लिया करता है। (पंचतंत्र)

स्वामी विवेकानन्द स्तुतिः

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

निजं धर्मं ज्ञात्वाऽखिलभुवनभूतेषु सततं
'शिवो जीवेष्वेव स्थित' इति वदन्तं नरवरम्।
विवेकानन्दो यः सकल-जनसेवाव्रतधरो
वयं तेजः पुञ्जं गहनकरुणं तं ननु नुमः।।१।।

– 'भगवान शिव जीवों में ही विद्यमान हैं', ऐसा बोलने वाले, समस्त मानव समुदाय की सेवा का व्रत लेने वाले तथा अपना धर्म समझकर लोक के सभी जीवों की सेवा में तत्पर रहनेवाले, उस गहन करुणापूर्ण तेज-पुंज स्वामी विवेकानन्द को हम सादर प्रणाम करते हैं।

गुरोर्वाणीं स्वीकृत्य सुखदसमाधेरनुभवं
तिरस्कृत्य भ्राम्यन् रविरिव समाराधितकरः।
चरित्रं सेवाया अनुकरणयोग्यं परिवहन्
नराणां नम्यो यो परम पुरुषस्तं ननु नुमः।।२।।

– गुरु की बात मानकर, समाधि के सुखदायक अनुभव को छोड़कर, अपनी किरणों से परिचर्या करनेवाले सूर्य के समान अपने हाथों से परिचर्या करते हुए, सेवा के अनुकरणीय चरित्र को धारण करनेवाले, जो श्रेष्ठ पुरुष मनुष्यों द्वारा प्रणम्य हैं, उस स्वामी विवेकानन्द को हम प्रणाम करते हैं।

शिकागोक्षेत्रे धर्मपरिषदि सम्बोध्य मधुरै-
रपूर्वव्याख्यानैः कृतचकितसर्वः समुदयः।
विशेषा हिन्दूनां जगति गुणसम्पद् निगदिता
विदग्धं वक्तारं सुकृतपथिकं तं ननु नुमः।।३।।

– जिन्होंने शिकागो में विश्वधर्मपरिषद् में अपने अपूर्व मधुर व्याख्यान से सारे समुदाय को विस्मित कर दिया, संसार में हिन्दू जाति की विशेष गुण-सम्पदा बतलाई, ऐसे पुण्यपथगामी, विदग्ध (निपुण) वक्ता स्वामी विवेकानन्द को हम सादर प्रणाम करते हैं।

सुखं वा दुःखं वा परजनहिते दत्तमनसा
दिने वा रात्री वा विहितपुरुषार्थः प्रतिपलम्।
स्वराष्ट्रोत्थानार्थं च गमनपथो येन रचितः
दरिद्राणां बन्धुं विजितमदनं तं ननु नुमः।।४।।

– दिन हो या रात, सुख हो या दुख, लोकहित के लिए दत्तचित्त होकर जो प्रत्येक पल पुरुषार्थ करते रहे, अपने राष्ट्र के उत्थान हेतु जो नीति-पथ के निर्माता थे, ऐसे कामविजेता, निर्धनों के बन्धु स्वामी विवेकानन्द को हम सादर प्रणाम करते हैं।

प्रसन्नो लोकोऽयं स्मरति कृतकार्यं तु मनसा
प्रफुल्ला जातेयं धरणिजननी सेवितसुता।
अयच्छत सर्वस्वं मनुजकुलहेतोः हितकरः
महात्मानं देशस्य युगपुरुषं तं ननु नुमः।।५।।

– जिस पुत्र की सेवा से यह पृथ्वीमाता प्रफुल्लित हो उठी, जिनके कार्यों को यह संसार सानन्द हृदय से याद करता है, जिस हितैषी ने मानव जाति के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया, ऐसे युगपुरुष, भारत देश के महात्मा स्वामी विवेकानन्द को हम सादर प्रणाम करते हैं।

जय जय केशरिया साफे की

पुरुषोत्तम नेमा

धर्म सभा पर लहराया था जिसका केशरिया साफा।
भाई-बहन का सम्बोधन तो विजय-मन्त्र था, बाँका।।
था दर्शनीय व्यक्तित्व प्रभावी विस्फारित नेत्र सभा के।
हर एक धर्म को गले लगाया सब पार्थक्य हटा के।।
वेद पुराण साधु-मत-सम्मत कर्म योग-गहराई।
प्रभाव पूर्ण विश्लेषण ने तो भरपूर प्रशंसा पाई।।
भौतिकता-रंजित-नेत्रों में, आत्मिक श्रद्धा जागी।
जगह-जगह, प्रवचन-आयोजन जगत हुआ-अनुरागी।।
'वसुधैव कुटुम्बकं'-ध्वजा, विवेक ने पूरब-पश्चिम फहराई।
बहुत दिनों में जग ने देखी भारत की तरुणाई।।
प्राणि-मात्र को तृप्त बनायें दशा न लेश, शेष, फाके की।
जय रामकृष्ण ! जय सारदे माँ !
जय-जय केशरिया साफे की।।

सम्पादकीय

शिकागो व्याख्यान की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

सम्माननीय पाठको,

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन अपने देश-विदेश के केन्द्रों द्वारा एक वर्ष से शिकागो व्याख्यान की १२५वीं वर्षगाँठ स्मरणोत्सव मना रहा है। इस उपलक्ष्य में सभी केन्द्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के व्याख्यान, प्रतियोगिता इत्यादि कार्यक्रम वर्ष भर से आयोजित हो रहे हैं। रामकृष्ण मठ-मिशन के केन्द्रों से प्रकाशित होनेवाली विभिन्न भाषाओं की पत्रिकाओं ने 'शिकागो विशेषांक' प्रकाशित किए हैं। इसी स्मरणोत्सव शृंखला में 'विवेक-ज्योति' का यह 'शिकागो विशेषांक' आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस विशेषांक में मासिक लेख प्रवाह की निरन्तरता को अक्षुण्ण रखते हुए स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त शिकागो-व्याख्यान के विविध पक्षों पर विद्वान संन्यासियों और अन्य मूर्द्धन्य लेखकों के लेख दिए गये हैं। अधिकांश लोग स्वामी विवेकानन्द का परिचय पूछने पर कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गए थे और हिन्दू धर्म पर ऐसा व्याख्यान दिया कि वहाँ उपस्थित सभी लोग सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। लेकिन स्वामीजी ने वहाँ क्या व्याख्यान दिया था, क्या कहा था, जिससे ५ मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट गूँजती रही, उस व्याख्यान की ऐतिहासिक और आध्यात्मिक क्या पृष्ठभूमि थी, उसका धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और आर्थिक स्तर पर क्या प्रभाव पड़ा, भारत की आन-मान-शान पर क्या प्रभाव पड़ा, शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन तक पहुँचने में स्वामीजी ने कितना संघर्ष किया, इन सबके विषय में अधिकांश लोग कुछ नहीं जानते। आपको इन सबकी संक्षिप्त जानकारी इन लेखों से प्राप्त होगी, तब आप स्वामी विवेकानन्द के भारत और विश्व के प्रति महान अवदान की एक झलक देख और समझ पाएँगे।

स्वामी विवेकानन्द के इस ऐतिहासिक व्याख्यान ने सम्पूर्ण विश्व में, विशेष रूप से भारत में, सभी क्षेत्रों में क्रान्ति ला दिया। इसके पीछे केवल मानसिक दृढ़ता, ओजस्वी, प्रखर वाणी, विश्वमंच और सुयोग-संयोग ही प्रमुख नहीं है, इसके पीछे एक प्रबल आध्यात्मिक ईश्वरीय शक्ति कार्यरत थी, जिसने लोकहितार्थ अपने शाश्वत सन्देशों के विश्व में प्रचारार्थ, ऐसे वैश्विक मंच के भव्य आयोजन की प्रेरणा दी। विश्वधर्म-सम्मेलन में अपने व्याख्यानों से अभूतपूर्व सफलता पानेवाले स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि क्या थी, इन्हीं बिन्दुओं पर हम कुछ चर्चा करेंगे।

विश्वधर्म-सम्मेलन के पहले विश्व की क्या स्थिति थी, इस पर एक दृष्टि डालें – १. पाश्चात्य जगत दुख-ताप से तप्त था, दुख की ज्वालामुखी पर खड़ा था, जिसका संहारात्मक विस्फोट कभी भी हो सकता था। भौतिकता की आग में झुलस रहा था २. आदर्श-जीवन, धैर्य और सहिष्णुता के अभाव में वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक परस्पर सम्बन्ध विच्छेद हो रहे थे ३. जगत में युद्धोन्माद का दौर चल रहा था ४. राष्ट्राक्रमण हो रहा था ५. भारतीय परतन्त्रता और भारत जैसे पचासों देश पराधीनता का दंश झेल रहे थे ६. धर्म का विकृत स्वरूप – समाज वास्तविक धर्म को भूलकर कुप्रथाओं एवं अन्धविश्वासों में जकड़ा हुआ था ७. ईसाई धर्म की कट्टरता ८. अध्यात्म का विकृत रूप – एकमात्र मेरे धर्म से ईश्वर मिल सकता है, ऐसी कट्टर धारणा और उससे उत्पन्न राग, द्वेष, घृणा और हिंसा ९. स्वार्थ की पराकाष्ठा १०. स्वकेन्द्रित जीवन ११. परधर्म-असहिष्णुता १२. रक्त-रंजित तलवार और हिंसा के द्वारा धर्म-प्रचार १३. अन्य राष्ट्र और राज्य का धन लूटना और हिंसा करना, जैसे – सिकन्दर का लूट-अभियान १४. धर्म की आड़ में पाप-पापी की अवधारणा से जन-सामान्य को भ्रमित कर उनका शोषण करना। १५. जाति, वर्ण-भेद की पराकाष्ठा। तत्कालीन विश्व इन भीषण समस्याओं से संघर्ष कर रहा था। इससे निकलने को तड़प रहा था, लेकिन उसे

सही दिशा नहीं मिल रही थी, सही मार्गदर्शक नहीं मिल रहा था। विश्वधर्म-सम्मेलन ने सबकी आँखें खोल दी और उसमें भारतीय वीर संन्यासी स्वामी विवेकानन्द जी ने सम्पूर्ण विश्ववासियों को, वहाँ के चिन्तकों, मनीषियों और दार्शनिकों को एक सकारात्मक, सर्वसमावेशी, सर्वधर्म-समन्वयात्मक समाधान दिया।

विश्वधर्म महासम्मेलन क्यों : स्वामी विवेकानन्द के परिप्रेक्ष्य में

विश्वधर्म-सम्मेलन के आयोजन का उद्देश्य शिकागो के आयोजकों और अन्य लोगों की दृष्टि में भिन्न-भिन्न हो सकता है, लेकिन जब हम स्वामी विवेकानन्द के परिप्रेक्ष्य में इस आयोजन की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में जाकर देखते हैं, तो इस महासम्मेलन का उद्देश्य कुछ अन्य ही प्रतीत होता है। इसके पहले भी वहाँ धर्म-सम्मेलन का आयोजन हुआ था, लेकिन यह सम्मेलन उससे अलग था। इसकी पृष्ठभूमि भिन्न थी। यह सम्मेलन भले शिकागो की भूमि पर था, लेकिन इसके महानायक भारत की भूमि पर पल्लवित-पुष्पित हो रहे थे। इस महानायक के लिए इस विश्वमंच का आयोजन उस महाशक्ति ने किया था, जो उन्हें सप्तर्षि-मंडल से खींचकर अपने शाश्वत सन्देशों के प्रचार-प्रसार हेतु धरा पर लाई थी। एक बार श्रीरामकृष्ण देव ने एक कागज के टुकड़े पर लिखा था – 'नरेन्द्र शिक्षा देगा।' नरेन्द्रनाथ ने कहा कि मुझसे ये सब नहीं होगा। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – "तेरी हड्डियाँ भी करेंगी।" वह कौन-सी शिक्षा थी, जो नरेन के द्वारा ही श्रीरामकृष्ण विश्ववासियों को दिलाना चाहते थे, उसी शिक्षा के आधारशिलास्वरूप शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन था।

स्वामीजी ने कहा था – जैसे बुद्ध का सन्देश पूर्व के लिए था, वैसे ही मेरे पास पाश्चात्य हेतु सन्देश है। उस सन्देश के विश्वमंच से उद्घोषणा और वितरण करने का प्रथम सोपान था – विश्वधर्म सम्मेलन का आयोजन।

शिवभाव से जीवसेवा की अवधारणा का उद्घोष

यह १८८४ ई. की घटना है। श्रीरामकृष्ण देव के पास नरेन्द्रनाथ सहित कुछ भक्त बैठे हुए थे। हास-परिहास और वार्तालाप चल रहा था। प्रसंगवश वैष्णव धर्म की चर्चा चली। उस धर्म के सारतत्त्व को संक्षेप में सबको समझाते हुए श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "उस धर्म में तीन बातों का पालन करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहने का उपदेश है – नाम में रुचि, जीव के प्रति दया और वैष्णव पूजन। जो नाम है, वही ईश्वर है। नाम-नामी को अभिन्न जानकर निरन्तर अनुराग के साथ नाम लेना चाहिए। भक्त और भगवान, कृष्ण और वैष्णव को अभिन्न समझकर साधु-भक्तों की पूजा और वन्दना करनी चाहिए। कृष्ण का ही यह जगत है, ऐसी धारणा हृदय में रखकर सब जीवों पर दया करनी चाहिए।" 'सब जीवों पर दया' कहते ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गए। कुछ क्षणों के बाद अर्धबाह्य दशा में अवस्थित हो कहने लगे, "जीव पर दया, जीव पर दया? धत्त तेरी, कीटाणु-कीट होकर तू जीव पर दया करेगा? दया करनेवाला तू कौन है? नहीं, नहीं, जीव पर दया नहीं – शिवज्ञान से जीव की सेवा।"

इस बातों को सबने सुना, किन्तु कोई इसका मर्म नहीं समझ सका। केवल नरेन्द्रनाथ ने ही इसका गूढ़ तत्त्व समझा था। वे वहाँ से बाहर आकर कहने लगे, "आज ठाकुर की बात से कैसा प्रकाश दिखाई पड़ा! जिस वेदान्त को लोग कठोर और निर्मम समझते हैं, उसे भक्ति के साथ सम्मिलित करके कैसे सहज सरस और मधुर प्रकाश का उन्होंने प्रदर्शन करा दिया ! ...

"ठाकुर के इस उपदेश से भक्तिपथ में भी विशेष प्रकाश दिखाई पड़ता है। जब तक ईश्वर को सर्वभूतों में नहीं देखा जा सकता, तब तक यथार्थ भक्ति या पराभक्ति प्राप्त करना, साधक के लिए सम्भव नहीं होता। शिव या नारायण-ज्ञान से जीवों की सेवा करने से ईश्वर को सभी में व्याप्त देखकर, यथार्थ भक्तिलाभ करके भक्त-साधक अल्पकाल में ही कृतार्थ हो सकेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कर्मयोग या राजयोग के अवलम्बन से, जो साधक अग्रसर हो रहे हैं, उन्हें भी इस बात से विशेष प्रकाश दिखाई पड़ेगा, क्योंकि जब देही कर्म के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता, तो शिवज्ञान से जीवसेवा रूपी कर्मानुष्ठान ही कर्तव्य है और उसे करने से ही वह शीघ्र अपने लक्ष्य पहुँचेगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं। भगवान ने यदि अवसर दिया, तो आज जो सुना हूँ, इस अद्भुत सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा, पंडित,

मूर्ख, धनी-निर्धन, ब्राह्मण-चाण्डाल, सबको सुनाकर मुग्ध करूँगा।''[१]

अधिकांश लोग जीवों पर दया करके ही उनकी ओर सेवा को तत्पर होते हैं। कर्मवादी तो प्राणियों का कर्मफल मानकर कभी उनकी उपेक्षा भी कर जाते हैं। जिन मत-सम्प्रदायों के दर्शनशास्त्र पाप और पापी शब्दों से रंजित हैं, उनकी तो बात ही निराली है! ऐसे में एक सामान्य जन को ईश्वर मानकर जीव की शिवभाव से सेवा करने के गुरुदेव के संदेश को भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को आवश्यकता थी। स्वामीजी के संकल्पानुसार कि 'इस अद्भुत सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा' के लिए विश्व रंगमंच की आवश्यकता थी, उसी की प्रथम सुदृढ़ शृंखला थी – विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन और उसमें स्वामीजी की सहभागिता।

स्वामी विवेकानन्द देश-कालातीत युगाचार्य

परस्पर राग-द्वेष, मुगल और अँग्रेजों के आक्रमण का तांडव, युद्धोन्माद, स्वार्थी और साम्राज्य-विस्तार हेतु लालायित रक्त-रंजित तलवार, तोपों, गोली, बन्दूकों की कर्कश हिंसा-ध्वनिप्रिय शासकों को विश्व में शान्ति-स्थापना हेतु स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रेम, सौहार्द, सद्भाव की शिक्षा देने हेतु ईश्वरीय योजना थी विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन।

सत्य शाश्वत और देश-काल के अतीत है। तथाकथित बुद्धिवादी ईश्वर की सत्ता पर ही संशय करने लगे और इस सम्बन्ध में चार्वाक-प्रमाण देकर अपने विचारों की शास्त्रसम्मत पुष्टि करने लगे। कुछ स्वयं को ही आधुनिक मानकर अपनी कोरी बुद्धि से अनुभव न होने पर ईश्वर के अनस्तित्व का प्रचार करने लगे।

इस नास्तिकता और संशयी-दानवीवृत्ति के विनाशार्थ लोकातीत, सप्तर्षि-मंडल के ऋषि साक्षात् युगाचार्य के रूप में भारत धरा पर अवतीर्ण हुए स्वामी विवेकानन्द जी के शाश्वत सत्य, नित्य आध्यात्मिक अनुभूतिसम्पन्न विचारों की आवश्यकता थी। एकमात्र स्वामी विवेकानन्द ही ऐसे युगाचार्य, युगनायक थे, जो श्रुति, युक्ति और अनुभूतिसम्पन्न विचार दे सकते थे, और प्राच्य-पाश्चात्य के तीक्ष्ण बुद्धिजीवियों की शंकाओं का समूल नाश कर सकते थे। इसीलिए श्रीरामकृष्ण देव ऋषिलोक से स्वामीजी को इस लोक में लाए थे और उन्होंने विश्वधर्म सम्मेलन के आयोजन की प्रेरणा अपनी अमेरिकी सन्तानों को देकर अपने प्रिय नरेन्द्रनाथ को विश्वमंच प्रदान किया।

उपरोक्त विचारों के अत्यधिक स्पष्टीकरण हेतु हम स्वामीजी की शिकागो-यात्रा से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का अवलोकन कर सकते हैं।

शिकागो जाने की ईश्वरीय प्रेरणा

स्वामीजी मद्रास में थे। उस समय भी उनके मन में शिकागो जाने की द्विविधा चल रही है – क्या करूँ, जाऊँ कि न जाऊँ? लोकसुख-विरागी संन्यासी को देश-विकास हेतु केवल आर्थिक संचयन के लिए सात-समुद्र के पार अकिंचन बनकर उस भोगभूमि अमेरिका में जाने की क्या आवश्यकता है? यद्यपि उनके मद्रास के साथी और अन्य अनुयायी उन्हें शिकागो के विश्व-धर्म-सम्मेलन में जाने को प्रेरित कर रहे हैं और धन-संचय भी कर रहे हैं। एक बार उनके संचित धन को स्वामीजी ने गरीबों में बँटवा दिया। कुछ धन से बच्चों को खिलौने खरीदकर बाँट दिए। निम्नलिखित दो घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि स्वामीजी श्रीरामकृष्ण देव का साक्षात् निर्देश पाने के बाद ही शिकागो जाने को तत्पर हुए।

स्वामीजी मद्रास में एक रात सो रहे थे। उन्होंने एक स्वप्न देखा – गुरुदेव श्रीरामकृष्ण की आकृति देखी, जो समुद्र तट से समुद्र में जल की ओर जा रहे हैं और उन्हें अपने पीछे आने को इंगित कर रहे हैं। इस स्वप्न से उनका संशय दूर हुआ।[२] इस सम्बन्ध में दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना द्रष्टव्य है।

यह भी मद्रास की ही घटना है । नरसिंहा चारियार स्वामी विवेकानन्द जी के बगल के कमरे में सोते थे। कई बार रात में उन्होंने सुना कि स्वामीजी किसी से बहुत देर तक बातें कर रहे हैं। कुछ दिनों बाद उन्होंने स्वामीजी से पूछा, "स्वामीजी आप रात में किससे बात कर रहे थे?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी। मैंने मानसिक रूप से यह विचार लगभग त्याग दिया था, किन्तु पिछली कुछ रातों से श्रीरामकृष्ण मुझे जोर देकर कह रहे हैं – 'तुम मेरे कार्य के लिए ही आए हो, तुम्हें जाना ही होगा। तुम निश्चित रूप से जान लो कि यह सभा तुम्हारे लिए ही है। तुम चिन्ता मत करो, लोग तुम्हारी वाणी सुनकर चकित हो जाएँगे। जितना ही मैंने अनिच्छा व्यक्त की, उतना ही गुरुदेव ने बल दिया कि मैं जाऊँ। अन्त में मैंने उनका आदेश स्वीकार कर लिया है और शिकागो जाने की तैयारी कर रहा हूँ।''[३]

श्रीमाँ सारदा का पत्र द्वन्द्व-नाश का ब्रह्मास्त्र

केवल इतने से भी स्वामीजी को सन्तुष्टि नहीं मिली। स्वामीजी मन में किसी प्रकार का संशय नहीं रखते थे। वे मन की चपलता और संशयीवृत्ति के आत्यन्तिक चिकित्सक थे। उन्होंने पहले भी अपने इस मानसिक रोग की चिकित्सा की थी। स्वामीजी ने श्रीरामकृष्णदेव की जीवनभर विभिन्न प्रकार से परीक्षा ली। लेकिन अन्त में जब वे अन्तिम शय्या पर थे, तब उन्हें उनकी अवस्था देखकर हठात् उनके अवतारत्व पर ही संशय हो गया। वे मन-ही-मन सोचने लगे, यदि ये इस अवस्था में अपने को अवतार कहें, तब मानूँगा? श्रीरामकृष्ण जिनकी वाणी कई दिनों से मौन थी, उन्होंने तुरन्त नरेन्द्रनाथ की ओर देखकर कहा, "अभी भी अविश्वास! जो राम, जो कृष्ण, वही इस शरीर में रामकृष्ण। लेकिन तेरी वेदान्त की दृष्टि से नहीं।" स्वामीजी को बहुत ग्लानि हुई, लेकिन मन के संशय-व्याधि की स्थाई चिकित्सा तो हो ही गई।

शिकागो के सम्बन्ध में भी स्वामीजी अभी पूर्णत: संशयमुक्त नहीं हुए। यद्यपि उन्होंने विश्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में शिकागो जाने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी है, धन-संग्रह जारी है, अन्य आनुषंगिक तैयारियाँ चल रही हैं, फिर भी स्वामीजी के मन के एक कोने में अभी भी कुछ द्वन्द्व चल रहा है। क्योंकि उनके द्वारा स्वामी सारदानन्द जी को लिखित पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि वह पत्र केवल आशीर्वाद के लिये नहीं था, उसमें स्वामीजी की मानसिक विचलन, मानसिक द्वन्द्व और शिकागो जाने हेतु श्रीमाँ सारदा के अनुमोदन की अपेक्षा है। स्वामीजी ने अपने गुरुभाई स्वामी सारदानन्द जी को पत्र लिखा – "मैंने एक स्वप्न देखा है, जिसमें गुरुदेव मुझे पश्चिमी देशों को जाने के लिए कह रहे हैं। मेरा मन अत्यन्त विचलित है। तुम श्रीमाँ से सब कुछ जाकर बताओ, मैं इस सम्बन्ध में उनका परामर्श चाहता हूँ।" स्वामी सारदानन्द जी श्रीमाँ के पास गए और उन्हें स्वामीजी का पत्र पढ़कर सुनाया। श्रीमाँ ने तत्काल अपना परामर्श न देकर सारदानन्दजी को प्रतीक्षा करने को कहा। कुछ दिन बाद श्रीमाँ ने सारदानन्द जी से कहा, "नरेन को लिख दो कि उसे पश्चिमी देशों को जाना चाहिए।"[४] पत्र लिखाने के पहले श्रीमाँ ने भी एक स्वप्न देखा कि श्रीरामकृष्ण समुद्र की लहरों पर चले जा रहे हैं और नरेन्द्र को अपने पीछे आने को कह रहे हैं।

स्वामी सारदानन्द जी ने श्रीमाँ का अनुमोदन और आशीर्वाद स्वामीजी को लिखकर भेज दिया। श्रीमाँ का पत्र पाकर स्वामीजी का मन पूर्णत: संशयमुक्त हो गया, उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि उनका शिकागो जाना स्वयं ईश्वर की इच्छा है, दैवी इच्छा है, माँ जगदम्बा की इच्छा है और वे सानन्द शिकागो की यात्रा हेतु प्रस्थान करते हैं।

तभी तो वे जाते समय अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द जी को कहते हैं, "विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन (अपनी ओर संकेत कर) इसी के लिये हो रहा है। तुम इसे निकट भविष्य में सत्यापित होते देखोगे।"[५]

ईश्वरीय आदेश

स्वामीजी स्वयं अपने मित्र आलासिंगा पेरुमल को २० अगस्त, १८९३ को लिखते हैं, "सैकड़ों बार इच्छा हुई कि इस देश से चल दूँ और भारत लौट आऊँ। लेकिन मैं दृढ़ संकल्प हूँ। मुझे भगवान का आदेश मिला है। मेरी दृष्टि में रास्ता नहीं दिखायी देता, तो न सही, परन्तु उनकी आँखें तो सब कुछ देख रही हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द जी की विश्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में कितने संघर्षों के बाद सम्मिलित होना, पाश्चात्य में इतने व्यापक रूप से स्थाई कार्य होने में, इसकी एक आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है। मानो एक महान शक्ति वर्षों से इसके पीछे कार्यरत थी और उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में थी। यह ईश्वर की इच्छा थी। यह यात्रा उस महान युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव की लोकमंगल यात्रा की परिपूर्ति में एक महत्त्वपूर्ण घटक थी, जिसके लिए सर्वधर्म-समन्वयाचार्य अवतारवरिष्ठ श्रीरामकृष्ण स्वामीजी को ऋषिमंडल से खींचकर लाए थे और अन्त तक उनके रोम-रोम से, हड्डियों तक से अपना विराट लोक-कल्याण का महायज्ञ पूर्ण कराया।

अत: उपरोक्त तथ्यपरक विश्लेषण से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि स्वामी विवेकानन्द की पाश्चात्य-यात्रा और शिकागो में आयोजित विश्वधर्म-सम्मेलन में उनके द्वारा हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में ऐतिहासिक व्याख्यान देने के पीछे, ईश्वरीय योजना है, इसकी सुदृढ़ आध्यात्मिक पृष्ठभूमि है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग, खंड-२, पृष्ठ - ९०१ **२.** लाइफ ऑफ स्वामीजी, खंड १, पृष्ठ - ३८० **३.** सन्दीपन, बेलूड़ मठ, बी.टी.कालेज, सारदापीठ, १९६६ **४.** श्रीरामकृष्ण स्वामी विवेकानन्द औ धर्मप्रसंग, स्वामी ओंकारानन्द, पृष्ठ - १२७ **५.** नीउ डिस्कवरी, खंड १, पृष्ठ-३७.

शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त ऐतिहासिक व्याख्यान

धर्म महासभा : स्वागत का उत्तर

(विश्वधर्म-महासभा, शिकागो, ११ सितम्बर, १८९३ ई.)

अमेरिकावासी बहनो तथा भाइयो,

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हमलोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के लिए खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ और सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि कोटि हिन्दुओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।

मैं इस मंच पर से बोलनेवाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियों का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हमलोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी

आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो

आवृत्ति मैं अपने बचपन से करता रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं :

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

– 'जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।'[१]

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है, स्वतः ही गीता के इस अद्भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत के प्रति उसकी घोषणा है :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

– 'जो कोई मेरी ओर आता है, चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी ही ओर आते हैं।'[२]

साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही

१. शिवमहिम्नस्तोत्र श्लोक - ७, २. श्रीमद्भगवद्गीता. ४/११

हैं। यदि ये बीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।

शिकागो धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द

हमारे मतभेद का कारण

(१५ सितम्बर, १८९३ ई.)

मैं आप लोगों को एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूँ। अभी जिन वाग्मी वक्ता महोदय ने व्याख्यान समाप्त किया है, उनके इस वचन को आप लोगों ने सुना कि 'आओ, हम लोग एक-दूसरे को बुरा कहना बन्द कर दें' और उन्हें इस बात का बड़ा खेद है कि लोगों में सदा इतना मतभेद क्यों रहता है।

परन्तु मैं समझता हूँ कि जो कहानी मैं सुनानेवाला हूँ, उससे आप लोगों को इस मतभेद का कारण स्पष्ट हो जायेगा। एक कुएँ में बहुत समय से एक मेढक रहता था। वह वहीं पैदा हुआ था और वहीं उसका पालन-पोषण हुआ, पर फिर भी वह मेढक छोटा ही था। हाँ, आज के क्रमविकासवादी (evolutionists) उस समय वहाँ नहीं थे, जो हमें यह बतला सकते कि उस मेढक की आँखें थीं अथवा नहीं, पर यहाँ कहानी के लिये यह मान लेना चाहिए कि उसकी आँखें थीं और वह प्रतिदिन ऐसे पुरुषार्थ के साथ जल को सारे कीड़ों और कीटाणुओं से रहित पूर्ण स्वच्छ कर देता था कि उतना पुरुषार्थ हमारे आधुनिक कीटाणुवादियों (bacteriologists) को यशस्वी बना दे। इस प्रकार धीरे-धीरे यह मेढक उसी कुँए में रहते-रहते मोटा और चिकना हो गया। अब एक दिन एक दूसरा मेढक, जो समुद्र में रहता था, वह आया और कुएँ में गिर पड़ा।

"तुम कहाँ से आये हो?"

"मैं समुद्र से आया हूँ।"

"समुद्र! भला, कितना बड़ा है वह? क्या वह भी इतना ही बड़ा है, जितना मेरा यह कुआँ?" और यह कहते हुए उसने कुएँ में एक किनारे से दूसरे किनारे तक छलाँग मारी।

समुद्र वाले मेढक ने कहा, 'मेरे मित्र! भला समुद्र की तुलना इस छोटे से कुँए से किस प्रकार कर सकते हो?'

तब उस कुँए वाले मेढक ने एक दूसरी छलाँग मारी और पूछा, "तो क्या तुम्हारा समुद्र इतना बड़ा है?"

समुद्रवाले मेढक ने कहा, "तुम कैसी मूर्खतापूर्ण बात कर रहे हो! क्या समुद्र की तुलना तुम्हारे कुएँ से हो सकती है?"

अब तो कुएँ वाले मेढक ने कहा, "जा, जा! मेरे कुएँ से बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। संसार में इससे बड़ा और कुछ नहीं है! झूठा कहीं का! अरे, इसे बाहर निकाल दो!"

यही कठिनाई सदैव रही है।

मैं हिन्दू हूँ। मैं अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा यही समझता हूँ कि मेरा कुँआ ही सम्पूर्ण संसार है। ईसाई भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठे हुए यही समझता है कि सारा संसार उसी के कुएँ में है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा हुआ उसी को सारा ब्रह्माण्ड मानता है। मैं आप अमेरिकावालों को धन्य कहता हूँ, क्योंकि आप हम लोगों के इन छोटे-छोटे संसारों की क्षुद्र सीमाओं को तोड़ने का महान प्रयत्न कर रहे हैं और मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में परमात्मा आपके इस प्रयत्न में सहायता देकर आपका मनोरथ पूर्ण करेंगे।

धर्म : भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं

(२० सितम्बर, १८९३ ई.)

ईसाइयों को अच्छी आलोचना सुनने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए और मुझे विश्वास है कि यदि मैं आप लोगों की कुछ आलोचना करूँ, तो आप बुरा नहीं मानेंगे। आप ईसाई लोग जो मूर्तिपूजकों की आत्मा का उद्धार करने के निमित्त अपने धर्म-प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं, उनके शरीरों को भूख से मर जाने से बचाने के लिये

कुछ क्यों नहीं करते? भारतवर्ष में जब भयानक अकाल पड़ा था, तो सहस्रों और लाखों हिन्दू क्षुधा से पीड़ित होकर मर गये; पर आप ईसाइयों ने उनके लिए कुछ नहीं किया। आप लोग सारे हिन्दुस्तान में गिरजे बनाते हैं, पर पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है, उनके पास धर्म पर्याप्त है, जलते हुए हिन्दुस्तान के लाखों दुखार्त भूखे लोग सूखे गले से रोटी के लिए चिल्ला रहे हैं। वे हमसे रोटी माँगते हैं और हम उन्हें देते है पत्थर! क्षुधातुरों को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है, भूखों को दर्शन सिखाना अपमान करना है। भारतवर्ष में यदि कोई पुरोहित द्रव्य-प्राप्ति के लिये धर्म का उपदेश करे, तो वह जाति से च्युत कर दिया जायेगा और लोग उस पर थूकेंगे। मैं यहाँ पर अपने दरिद्र भाईयों के निमित्ति सहायता माँगने आया था, पर मैं यह पूरी तरह समझ गया हूँ कि मूर्तिपूजकों के लिए ईसाई-धर्मावलम्बियों से, और विशेषकर उन्हीं के देश में, सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है।

अन्तिम अधिवेशन में व्याख्यान

(२७ सितम्बर, १८९३ ई.)

विश्व-धर्म-महासभा एक मूर्तिमान तथ्य सिद्ध हो गयी है, दयामय प्रभु ने उन लोगों की सहायता की है, जिन्होंने इसका आयोजन किया तथा उनके परम नि:स्वार्थ श्रम को सफलता से विभूषित किया है।

उन महानुभावों को मेरा धन्यवाद है, जिनके विशाल हृदय तथा सत्य के प्रति अनुराग ने पहले इस अद्भुत स्वप्न को देखा और फिर उसे कार्यरूप में परिणत किया। उन उदार भावों को मेरा धन्यवाद, जिनसे यह सभामंच आप्लावित होता रहा है। इस प्रबुद्ध श्रोतृमंडली को मेरा धन्यवाद, जिसने मुझ पर अविकल कृपा रखी है और जिसने मत-मतान्तरों के मनोमालिन्य को हल्का करने का प्रयत्न करनेवाले प्रत्येक विचार का सत्कार किया है। इस समसुरता में कुछ बेसुरे स्वर भी बीच-बीच में सुने गये हैं। उन्हें मेरा विशेष धन्यवाद, क्योंकि उन्होंने अपने स्वर वैचित्र्य से इस समरसता को और भी मधुर बना दिया है।

धार्मिक एकता की सर्वसामान्य भित्ति के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस समय मैं इस सम्बन्ध में अपना मत आपके समक्ष नहीं रखूँगा। किन्तु यदि यहाँ कोई यह आशा कर रहा है कि यह एकता किसी एक धर्म की विजय और बाकी सब धर्मों के विनाश से सिद्ध होगी, तो उनसे मेरा कहना है कि 'भाई, तुम्हारी यह आशा असम्भव है।' क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायँ। कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करे! क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायँ? ईश्वर इस इच्छा से बचाये!

बीज भूमि में बो दिया गया और मिट्टी, वायु तथा जल उसके चारों ओर रख दिये गये। तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है अथवा वायु या जल बन जाता है? नहीं, वह तो वृक्ष ही होता है, वह अपनी वृद्धि के नियम से ही बढ़ता है – वायु, जल और मिट्टी को अपने में पचाकर, उनको उद्भिज पदार्थ में परिवर्तित करके एक वृक्ष हो जाता है।

ऐसा ही धर्म के सम्बन्ध में भी है। ईसाई को हिन्दू या

शिकागो धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द

बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार-भाग को आत्मसात् करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

इस धर्म-महासभा ने जगत के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है – उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा – 'सहायता करो, लड़ो मत।'; 'पर-भाव-ग्रहण, पर-भाव-विनाश नहीं'; 'समन्वय और शान्ति, मतभेद और कलह नहीं!' ○○○

वैश्विक चिन्तन के क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द के शिकागो व्याख्यान का योगदान

स्वामी स्मरणानन्द

महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा

११ सितम्बर, १८९३ सभ्यता के प्राणकेन्द्र अमेरिका के शिकागो में आयोजित धर्मसम्मेलन में विश्व के विभिन्न भागों के विशिष्ट व्यक्तियों के समक्ष भारतीय एक युवा संन्यासी का केवल 'अमेरिका निवासी बहनो और भाइयो' कहने से वहाँ के सभी लोग अभिभूत हो गए, इस घटना को सभी लोग जानते हैं। किन्तु उन्होंने इन पाँच वैद्युतिक शब्दों से विश्व-मानस में एक मौन क्रान्ति कर दिया था, उसके सुदूर व्यापक विस्तार और प्रभाव से आज भी हमलोग अपरिचित हैं। उसी ऐतिहासिक दिन को विशेषरूप से स्मरण करने के लिए ठीक १२५ वर्ष बाद आज हमलोग शिकागो से कई हजार मील दूर रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के मुख्यालय बेलूड़ मठ की पवित्र भूमि में एकत्र हुए हैं।

एक प्रश्न उठ सकता है कि स्वामी विवेकानन्द अपनी पुण्यभूमि भारतवर्ष को छोड़कर अमेरिका क्यों गए? ये युवा संन्यासी जो बचपन से ही ध्यानसिद्ध थे, जिन्होंने श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में निर्विकल्प समाधि तक की अनुभूति की थी, उनका उस कर्मप्रवण देश में जाने की क्या आवश्यकता थी? ऐसा सोचना भूल होगी कि वे अपने अनुयाई मद्रास के शिष्यों या देश के विभिन्न राजाओं के अनुरोध पर गये थे।

वास्तव में उनके अमेरिका जाने में दो कारण थे – पहला लौकिक और दूसरा अलौकिक। पहला था, भूखे, अशिक्षा के अन्धकार में डूबे हुए असंख्य भारतवासियों के लिए आर्थिक और कारीगरी सहायता प्राप्त करना। क्योंकि वे जानते थे कि भूखे पेट में धर्म नहीं होता। लेकिन वे वहाँ किसी प्रकार का दान-दक्षिणा लेने के लिए नहीं गए थे। वे कहते हैं – "मैं तुमलोगों को भिक्षुक के रूप में नहीं, धर्माचार्य के रूप में इंगलैण्ड और अमेरिका जाने के लिए आह्वान कर रहा हूँ। कार्यक्षेत्र में आदान-प्रदान की विधि को यथोचित प्रयोग करना होगा। यदि हमलोगों को पाश्चात्यों से लौकिक जीवन में सुखी होने का उपाय सीखना है, तो क्यों नहीं हमलोग उन्हें अनन्त शाश्वत सुखी होने का उपाय और प्रणाली सिखाएँगे?"[१] दूसरा कारण है, संसार को प्रदान करने योग्य उनके पास कुछ वचन थे। वे कहते हैं – जैसे भगवान बुद्ध को भारत को देने के लिए संदेश था, वैसे ही पाश्चात्य को देने के लिए मेरे पास भी संदेश है।"[२] उस वाणी का प्रचार नहीं होने से श्रीरामकृष्ण का अवतार लेना व्यर्थ हो जाता।

विश्वधर्म-सम्मेलन में स्वामीजी ने भारतीय आध्यात्मिकता का कोई विकृत चित्र प्रस्तुत नहीं किया। सबसे

आश्चर्य की बात है कि अपने सनातन धर्म की उस व्याख्या में उन्होंने यहाँ तक कि श्रीरामकृष्ण का भी उल्लेख नहीं किया। क्योंकि वे जानते थे कि नाम नहीं विचार ही प्रमुख है। धर्म-सम्मेलन में स्वामीजी मानो भारतवर्ष के साक्षात् विग्रह थे। उनकी वहाँ उपस्थिति मानो सनातन हिन्दू धर्म की हजारों वर्षों की सभ्यता-संस्कृति की उपस्थिति थी। जैसाकि भगिनी निवेदिता कहती हैं – "भारत की धार्मिक चेतना ही उनकी वाणी के रूप में प्रस्फुटित हुई थी। उनकी वाणी भारत के सम्पूर्ण अतीत के द्वारा सुनिश्चित उनके सम्पूर्ण देशवासियों की वाणी थी।"[३]

सनातन धर्म की जिस शाश्वत वाणी को स्वामीजी ने शिकागो धर्म-सम्मेलन में विश्ववासियों को सुनाया था, उसका मूल स्वर था – 'समन्वय' और 'एकता'। अन्यान्य सभी धर्मों से भारतीय सनातन धर्म में भेद है कि सर्वप्रथम यही धर्म एकता की भूमि है, जो इस तत्त्व तक पहुँचा था – 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' – एक ही सत्य को ज्ञानी विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं। सभी धर्म ही उस सत्य तक पहुँचने के मार्ग हैं, जैसाकि स्वामीजी कहते थे – "विभिन्न नर-

शिकागो प्रदर्शनी का आर्कषक दृश्य

नारियों के विभिन्न अवस्था और परिस्थिति से होते हुए एक ही लक्ष्य तक पहुँचने की यात्रा या अग्रसर होने का प्रयास ही सभी धर्म हैं।"[४] स्वामीजी की इस व्याख्या में हमलोग श्रीरामकृष्ण के 'अनन्त मत, अनन्त पथ' की वाणी की प्रतिध्वनि सुनते हैं।

केवल धर्म ही नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखने और विचार करने की विशेष साधना स्वामीजी ने श्रीरामकृष्णदेव से सीखा था। आज विश्व धर्म, दर्शन और विज्ञान द्रुत गति से अग्रसर हो रहा है, किन्तु सभी शाखा को ही समझ रहे हैं, वे लोग निरपेक्ष रूप से कभी भी सत्य तक नहीं पहुँच सकेंगे। इसीलिए अभी बहुत-से विषय को एक साथ एक ही विषय के रूप में शिक्षा देना आरम्भ हुआ है। मेरा मत शास्त्रसम्मत है, तुम्हारा मत शास्त्रविरुद्ध है – समाज के इस प्रचलित स्वर के विरुद्ध तुलनात्मक धर्मशास्त्र जैसे विषय, जो पहले सचमुच अकल्पनीय था, अभी वही कई विश्वविद्यालयों में रुचि से पढ़ाया जा रहा है। क्या इसे विश्व के चिन्तन के क्षेत्र में स्वामीजी का योगदान कहना अत्युक्ति होगी?

सामान्य व्यक्ति के जीवन की दैनिक घटना देश-काल के अन्तराल में नष्ट हो जाती है, किन्तु यही महापुरुषों की विशेषता है कि देश-काल के अन्तराल में वे दूर नहीं चले जाते, बल्कि वे हमारे अधिक समीप आकर खड़े हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द की वाणी हमलोगों को उसी एकत्व में ले चले, आज इस विशेष दिन में उनसे यही हमारी प्रार्थना है।

सबको हमारी हार्दिक शुभकानाएँ व्यक्त करता हूँ।OOO

सन्दर्भ सूची – १. स्वामी विवेकानन्दः वाणी और रचना - ५/२७३ २. कम्प्लीट वर्क - ५/३१४, ३. वाणी और रचना - १/ भूमिका, पृ. १०, ४. वही।

स्वामी विवेकानन्द का भारत परिभ्रमण और शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन का तात्पर्य

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से मानव सभ्यता के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ है। वे विश्व को जो सन्देश देने के लिए आए थे, उसकी प्रस्तुति बहुत पहले से ही चल रही थी। श्रीरामकृष्ण के युगप्रवर्तन में उनके सहायक के रूप में स्वामीजी की तैयारी दक्षिणेश्वर में श्रीगुरुदेव के चरणों में प्रारम्भ हुई। श्रीरामकृष्ण में स्वामीजी ने धर्म के वास्तविक स्वरूप का अनुसन्धान किया था और अपने मनोवांछित धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त किया था। उनके चरणों में बैठकर ही अपने धर्म-जीवन की साधना को शत-धाराप्रवाह के समान विकसित किया था। श्रीरामकृष्ण सभी धर्मों के महामिलन-स्थल थे। ऐसा कोई धर्म-सम्प्रदाय नहीं है, जो उनमें सम्मिलित नहीं होता हो। उनके उदार विचार और परधर्म-सहिष्णुता ने समान रूप से स्वामीजी के जीवन को प्रभावित कर पूर्णता प्रदान किया था।

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं ही अपनी वाणी के संवाहक के रूप में स्वामी विवेकानन्द को चिह्नित किया था और उन्हें 'अखण्ड धाम' से नीचे उतार कर लाये थे। श्रीरामकृष्ण की भावराशि, जो जगत को धर्म का अभिनव रूप देगी, उसके रूपायन का महाव्रत स्वामीजी ने उनकी प्रेरणा से ग्रहण किया था। इसलिए उनके गुरुदेव ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें ठीक ढंग से गढ़ा था। स्वामीजी ने अपनी परिकल्पना से कोई कार्य आरम्भ नहीं किया, उन्होंने केवल प्रबल प्रेरणा का अनुभव किया था, जिसने उन्हें सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कराया था। इस परिक्रमा के फलस्वरूप स्वामीजी के मन में भारतवर्ष का एक पूर्णांग रूप – उसका अतीत, वर्तमान और भविष्य प्रस्फुटित हुआ था। भारतवर्ष के उज्ज्वल अतीत से लेकर वर्तमान दुर्दशा की वेदनात्मक अनुभूति ने उनके हृदय को मर्माहत किया था एवं वे मातृभूमि को पुनः जाग्रत कर उसके भविष्य को ऐसे एक समुज्ज्वल स्थिति में प्रतिष्ठित करना चाहते थे, जिसकी प्रभा उसकी अतीत के उज्ज्वल गौरव को भी मन्द कर देगी। ठीक उसी समय दैव निर्देशानुसार वे शिकागो के धर्म-महासम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अन्तर्प्रेरणा का अनुभव करते हैं। विदेश-यात्रा के प्रारम्भ में उन्होंने कहा था – "हरि भाई! वहाँ (शिकागो में) जो कुछ हो रहा है, सब (अपनी छाती पर हाथ रखकर) इसके लिए। इसके लिए ही सब कुछ हो रहा है।" उन्होंने और भी कहा था – "हरि भाई! मैं अभी भी तुम्हारे तथाकथित धर्म को कुछ भी नहीं समझता। किन्तु मेरा हृदय बहुत विशाल हो गया है और मैं दूसरों की व्यथा को अनुभव करना सीख गया हूँ।" स्वामीजी के इस भावावेग को देखकर स्वामी तुरीयानन्द जी को लग रहा था कि इन्होंने साधना समाप्त किया है और विश्व में गुरुजी की वाणी का प्रचार करने के लिए जा रहे हैं। हमलोग जानते हैं, स्वामीजी की विदेश-यात्रा की पृष्ठभूमि में श्रीरामकृष्ण का जैसा अनुमोदन और निर्देश था, वैसे ही श्रीमाँ सारदा का आदेश और आशीर्वाद था।

३१ मई, १८९३ को स्वामीजी ने शिकागो के लिए भारतवर्ष से प्रस्थान किया था। इतने दिनों बाद उनका स्वप्न वास्तविक रूप से साकार होनेवाला है – वे भारत की वाणी का प्रचार करेंगे, जो वाणी भारत और विश्व का कल्याण करेगी। उनके मन में द्वन्द्व भी था। वह द्वन्द्व था कि अज्ञात देश में एक अपरिचित परिवेश में पदार्पण कर रहे हैं, हो सकता है कि वहाँ उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़े।

स्वामीजी के जीवन की परवर्ती घटनाओं से सभी परिचित हैं। उन्होंने सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण कर धर्म महासम्मेलन में अपनी महिमा को स्वयं प्रतिष्ठित किया था। धर्म महासम्मेलन में वे सबके मुकुटमणि थे। उनके द्वारा प्रदत्त व्याख्यानों ने श्रोताओं के मन में नये भाव का संचार किया था और धर्म का वास्तविक स्वरूप उन्मुक्त हुआ था। विश्ववासियों के समक्ष उन्होंने धर्म की मंगलमयी वाणी का प्रचार किया था। उन्होंने कहा था – "साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय राज कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे देश को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक

उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।''(वि.सा.१/४)

स्वामीजी ने यह उदात्त विचार प्रथम दिन के अपने व्याख्यान में शिकागो धर्म सम्मेलन के अन्तर्राष्ट्रीय मंच से सम्पूर्ण विश्व को दिया था। उन्होंने कहा था – भारतवर्ष का पथ और आदर्श जगत मे स्थायी शान्ति की स्थापना के लिए नींव हो सकता है। भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन काल से 'परमत-सहिष्णुता' और 'सर्वमत स्वीकृति'; दोनों की शिक्षा जगत को देता चला आ रहा है। भारत में कैसे उस वाणी और आदर्श को वास्तविक रूप से साकार किया है, उसका इतिहास भी स्वामीजी ने इस संक्षिप्त व्याख्यान में स्पष्ट किया था। उन्होंने कहा था कि प्राचीन काल में यहूदी जब अपनी भूमि से निर्वासित होकर शरण लेने के लिए भारत में आए, तब भारत ने उन्हें सादर हृदय में स्थान दिया था। प्राचीन पारसी जरथूष्ट्र ने भी अपने देश में अत्याचार के शिकार होकर भारत में आकर शरण ली थीं। इस प्रकार जब भी पृथ्वी के किसी दूसरे भाग का कोई व्यक्ति जाति या धर्म-विद्वेष का शिकार होकर आश्रय हेतु निकला है, तो वह निश्चिन्त होकर भारत में आया है। क्योंकि वे लोग जानते थे कि भारत चिरकाल से सभी धर्मों और जातियों के उत्पीड़ित शरणार्थियों के लिए चिरविश्वस्त आश्रयस्थल है। स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में कहा था, भारत की पवित्र संस्कृत भाषा में अँग्रेजी शब्द 'एक्सक्लूशन' का अनुवाद नहीं किया जा सकता। भारत का परम्परा-वर्जन एवं बहिष्कार जो अस्वीकृत है, वही उनके द्वारा प्रमाणित है।

धर्म-महा-सम्मेलन में प्रदत्त प्रत्येक व्याख्यान में स्वामीजी ने भारत के उदात्त आदर्श, भारत की शान्ति, समन्वय और सौहार्द के सन्देश को ओजस्वी वाणी में प्रकट किया था। स्वामीजी ने कूपमंडूक जैसे संकीर्ण मनोभाव का त्याग कर उदार और मुक्त मनोवृत्ति से सभी मत और पथ को, सभी धर्ममत और सम्प्रदाय को समझने, देखने और स्वीकार करने का आह्वान किया था। स्वामीजी ने धर्म-महा-सम्मेलन के अन्तिम दिन के व्याख्यान में भी वही बात कही थी। अपने उस व्याख्यान में स्वामीजी ने सभी संकीर्णताओं को छोड़कर धर्म के महान आदर्श को स्थापित किया और उच्च स्वर से कहा था, ''यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतला देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा – 'सहायता करो, लड़ो मत।' 'परभाव-ग्रहण, परभाव विनाश नहीं। 'समन्वय और शान्ति, मतभेद और कलह नहीं।'

इतिहास की दृष्टि से विचार करने पर हम देखेंगे कि धर्म महा-सम्मेलन ही पहला था, जिसने जगत में एक धर्म के साथ दूसरे धर्म का सौहार्दपूर्ण संवाद या आधुनिक काल में जिसे 'तुलनात्मक धर्म' कहते हैं, उसकी चर्चा की भूमि का निर्माण किया था। किन्तु धर्म महा-सम्मेलन में इस विषय में सबसे सबल और लोकप्रिय प्रवक्ता के रूप में स्वामी विवेकानन्द ही उभरे हुए थे। आज सारे संसार में स्थायी शान्ति-स्थपाना के लिए चर्चा और आन्दोलन हो रहा है। किन्तु वह आन्दोलन और चर्चा कितनी आन्तरिक है, उसके विषय में संशय है। आज देश-विदेश में चिन्तक, मनीषी विश्वास कर रहे हैं कि स्वामीजी की इस वाणी का अनुसरण करने से शान्ति और समृद्धिमय विश्व का निर्माण सम्भव होगा। आज जाति-जाति में, धर्म-धर्म में, परिवार-परिवार में भयंकर संघर्ष चल रहा है, उसके समाधान के लिए सारा प्रयास व्यर्थ हो रहा है। क्योंकि दूसरे को सुधारने का हमारा जो प्रयास है, उसके लिये उससे अधिक अपना सुधार करना सबसे पहले आवश्यक है, इस सम्बन्ध में हमारी चेतना का जागरण अभी तक नहीं हुआ है। स्वामीजी ने आशा की थी कि उनके महाव्रत के आह्वान में भारतवासी अपनी लम्बी निद्रा त्यागकर उनके नवयुग के स्वप्न को सफल करने के लिए प्राण-पण से चेष्टा करेंगे और इस महाव्रत में सक्रिय रूप से योगदान करेंगे। उनकी यह आशा अभी भी सम्पूर्ण रूप से सफल नहीं हुई। किन्तु आज उनके आह्वान ने केवल भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण जगत में एक क्रान्ति ला दी है, उसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं ठाकुर-माँ-स्वामीजी के चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि इस महायुग के सन्धिक्षण में स्वामीजी के स्वप्न को साकार करने के लिए हम प्रेरणा का अनुभव करें और इस महान कार्य में अपने जीवन को समर्पित करने के लिए उत्साहित हों। ○○○

(परम पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के द्वादश अध्यक्ष थे। प्रस्तुत प्रबन्ध स्वामी ऋतानन्द जी द्वारा सम्पादित 'श्रीरामकृष्ण भावप्रवणता', पृष्ठ ३११ से साभार लिया गया है।)
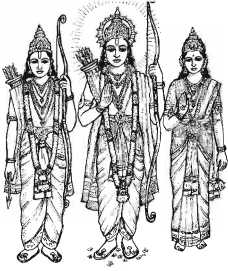
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (७/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

जाम्बवान तो ब्रह्मा के अवतार हैं। जहाँ कर्तृत्व है, जो कर्ता होता है, उसका अभिमान छूटना बड़ा कठिन होता है। जाम्बवानजी बन्दरों को सुनाने लगे – बन्दरों! सतयुग में मेरा इतिहास सुनो। क्या?

जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी।

तब मैं तरुन रहेऊँ बल भारी।।४/२८/८

जब भगवान ने बलि के यज्ञशाला में अपना विराट रूप प्रगट किया, तब मैंने सात बार प्रदक्षिणा की –

उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाई।४/२९

मैंने दो घड़ी में उस विराट भगवान की सात बार परिक्रमा किया। तो क्या भगवान वामन रूप में भगवान नहीं थे? वामन भगवान की परिक्रमा नहीं किया। विराट भगवान की परिक्रमा किया। क्यों? बोले वामन भगवान की परिक्रमा करेंगे, तो ये लोग कहेंगे, उसे कौन नहीं कर लेगा? जिसमें लगे कि हाँ, जो दूसरा कोई नहीं कर सकता, वह मैंने किया। यही सात्त्विक अभिमान की वृत्ति है। परिक्रमा तो भगवान की की, पर कितना आश्चर्यजनक कार्य मैंने किया, जो और कोई नहीं कर सकता। जाम्बवानजी ने बन्दरों को यह बात सुना दिया। यदि बाद में कोई राक्षस या कोई उन्हें कह देता था कि हम तो तुम्हें वृद्ध समझ कर छोड़ देते हैं, तो यह उन्हें असह्य लगता था। मेरे ऊपर कोई दया करे? मैं दिखा देता हूँ। पहले सतयुग का इतिहास आया, त्रेता युग में जिसने चुनौती दिया, उसको उन्होंने परास्त कर दिया। अब भगवान को उन पर दया आ गई। तीन अवतारों में जाकर तब इनका कल्याण हुआ। इनको वह अभिमान बना रहा कि जब वामन भगवान विराट हुए, तब मैंने भी दो घड़ी में सात परिक्रमा कर दी। भगवान राम के साथ आए, तो भी यह बात बनी रही कि सब युवक योद्धा हार गये, पर मैं तो कभी किसी से नहीं हारा। तब भगवान को दया आई कि भई, जब इनको कोई नहीं हरा पा रहे हैं, तो अब मुझे ही इनको हराना पड़ेगा। क्या करें, इसका कल्याण तो इसके बिना होगा नहीं। तब द्वापर युग आ गया। आपने श्रीमद्‌भागवत में कथा सुनी होगी कि जाम्बवान गुफा में सो रहे हैं। स्यमन्तक मणि की खोज में भगवान वहाँ पहुँच गये। जाम्बवान की पुत्री जाम्बवती उस स्यमन्तक मणि से खेल रही थी। जाम्बवान की नींद खुलती है। जाम्बवान सोते से जाग जाते हैं और तब लिखा हुआ है कि वे छब्बीस दिन तक भगवान से लड़ते रहे। कितना पराक्रम रहा होगा? भगवान से भी छब्बीस दिन तक युद्ध करते रहे, तब भगवान ने इतना कसकर प्रहार किया कि हड्डी-हड्डी में दर्द होने लगा। कितनी विचित्र बात है। जिसने भगवान की इतनी सेवा की हो, उस पर इतनी कठोरता से प्रहार करना कि सारा शरीर पीड़ा से सिहर उठे। पर कितनी सुन्दर बात? छब्बीस दिन के बाद अचानक दृष्टि खुल गई। यह तो हमारे प्रभु का ही रूप है। ये तो पूरी तरह से हमारे प्रभु ही प्रतीत हो रहे हैं। तब वे चरणों में गिर पड़े। तब बड़ी मीठी कथा आती है कि जाम्बवान ने अपनी कन्या जाम्बवती को अर्पण किया और भगवान ने जाम्बवती से विवाह किया। यह बड़ी सुन्दर कथा है।

जो पहले से ही हार स्वीकार कर ले, तो शीघ्रता से उसका कल्याण हो जाएगा। पर कोई बड़ा साधक, जो अपने आपको इतना बड़ा मान ले कि मैं उसे बताऊँगा, मैं उसे पाठ पढ़ाऊँगा कि कितनी सामर्थ्य है तुममें! इस अहंकार को भगवान तोड़ते हैं। असीम में अपनी असमर्थता को जान लेना, यह सबसे बड़ी सफलता है। ससीम संसार में जो दौड़ होती है, उसमें सबल पहले सफल होता है। दो मील की दौड़ हो, तो जिसके पैर में दौड़ने की शक्ति अधिक होगी, वह सफल हो जाएगा। पर एक सज्जन को लगा कि आकाश में दौड़ करावें और गरुड़ को भी निमंत्रण

दे दिया और मच्छर को भी निमंत्रण दे दिया कि आप लोग जाइए और आकाश की सीमा छूकर आइए। मच्छर बेचारा चार-छह घंटे उड़ा और लौट आया। किसी ने पूछा, क्या तुम आकाश की सीमा छूकर आ गये? बोला नहीं, मैंने देख लिया कि आकाश की कोई सीमा नहीं है। गरुड़जी चारों ओर खोजते रहे, बहुत चेष्टा की आकाश की सीमा पाने की। हजारों वर्ष बीत गये, गरुड़जी लौटकर ही नहीं आए। अन्त में लाखों वर्षों के बाद गरुड़जी आए और उनसे पूछा गया कि क्या आप आकाश की सीमा छूकर आ गये? उन्होंने कहा आकाश की कोई सीमा नहीं है। जो बात मच्छर ने छह घंटे में जान ली, उसको जानने में गरुड़जी को लाखों वर्ष लग गये। इसलिये असीम की सीमा नहीं जानना है, असीम में अपनी सीमा जानना है। साधना के साथ भी यही है।

जाम्बवती का अर्पण माने? अन्त:करण की वृत्ति जब पूरी तरह से भगवान के प्रति अर्पित हो जाती है, जब उसमें अपने कर्तृत्व का अभिमान रंचमात्र शेष नहीं रह जाता है, जब वह समझ लेता है कि मानो भगवान उनके अभिमान पर ही प्रहार कर रहे थे, उनके अभिमान को ही चोट पहुँचा रहे थे और जब अभिमान मिटते गया, तब अभिमान मिटते ही समर्पण हो गया।

इसलिए आप संकेत पायेंगे, महाराज जनक से यह कहा जा सकता था और कहा गया कि आप धनुष टूटने से पहले ही श्रीसीताजी को क्यों अर्पित नहीं कर देते? यही बात रामायण में जनकपुर की स्त्रियाँ कहती हैं। सबको यही लगता है, पर जनकजी यह जानते हुए भी कि श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, इस आग्रह पर स्थिर क्यों रहे, उसका एक सूत्र है। श्रीसीताजी का समर्पण माने? जब कोई व्यक्ति समर्पण करता है, तो माने उसने ममता का त्याग किया। अपनी कोई वस्तु है और जब उसे किसी को समर्पण कर दिया, तो मानो उस वस्तु के प्रति ममता को छोड़ दिया। बहुधा ममता तो छूट जाती है, पर अहंता बढ़ जाती है। त्याग का अभिमान है – मैंने इतना छोड़ दिया, लाख रुपये छोड़ दिया, मैंने लाखों को ठोकर मार दिया। मानो वह अहम् बढ़ गया। इसलिए रामायण में लिखा हुआ है कि सच्चे अर्थों में त्याग तो तब है, जब वस्तु के प्रति पहले ममत्व बुद्धि छूटे। उसके बाद जो त्याग होगा, उसमें व्यक्ति त्याग का गर्व थोड़े ही करेगा। श्रद्धेय स्वामीजी महाराज त्याग और वैराग्य की बात अभी आपके सामने सूत्र के रूप में कह चुके हैं। रामायण में जो दो पंक्तियाँ लिखी गई हैं, उसमें यही आता है -

सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
२/१४०

आप यहाँ कथा में आए हुए हैं, हजारों तिनके रास्ते में रहे होंगे, पर क्या आप बड़े गर्व से आकर घोषणा करेंगे कि आज तो मैं लाखों का त्याग करके आया हूँ। आप नाम न लें, केवल संख्या कहें कि मैं लाखों का त्याग करके आया हूँ और कोई पूछ दे, लाखों की वस्तु का नाम तो बताइए? तब आप कहें कि लाखों तिनके, घास, फूँस। तो सामने वाला हँसेगा कि घास-फूस की त्याग की बात भी मन में आ सकती है? इसका अभिप्राय है कि संसार के विषय-वस्तु तृण के समान लग रहा है, वह क्या त्याग का अभिमान करेगा कि मैंने यह छोड़ा? इससे भी बड़ा एक दृष्टान्त श्रीभरतजी के सन्दर्भ में दिया गया और वह सर्वश्रेष्ठ दृष्टान्त है। क्या है वह?

लखन राम सिय कानन बसहीं।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।।२/३२५/२
अवध राजु सुर राजु सिहाई।
दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
रमा बिलासु राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।२/३२३/६-८

आपने भोजन किया हो और उलटी हो जाय, तो क्या आप लोगों को बुलाकर दिखायेंगे कि मैंने कितना त्याग किया है, यह देखिए, लड्डू पेड़ा जो था, सबका मैंने त्याग कर दिया? व्यक्ति को तो संकोच लगेगा कि कोई देख न ले। वमन या तृण के सामान, इसका अभिप्राय है कि उसका भान ही नहीं है। जनकजी की वृत्ति का मानो तात्पर्य यह था कि धनुष के रूप में पहले अहंता टूटे, तब ममता का समर्पण ठीक रहेगा। जब 'मैं' नहीं रहेगा, तब समर्पण करने वाला मैं हूँ, यह वृत्ति भी नहीं रहेगी। यही परिपूर्णता है।

साधना के द्वारा व्यक्ति तमोगुण से रजोगुण में जाता है और रजोगुण से सतोगुण में जाता है। पर सत्त्व में स्थित

होकर, बिना सात्त्विक अभिमान का आश्रय लिए, तो आप कोई साधन नहीं कर सकते। अभिमान के बिना कोई नियम नहीं ले सकता। कोई नियम स्वीकार करने के लिए सात्त्विक अभिमान तो चाहिए ही। उसके बिना तो किसी नियम पर दृढ़ रहना सम्भव नहीं होगा। किन्तु अन्त में वह सात्त्विक अभिमान भी जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक व्यक्ति चरम लक्ष्य भगवान की कृपा को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए आवश्यकता इस बात की तो है कि साधना को पूरी दृढ़ता से किया जाये, पर अन्त में वह अनुभूति होनी ही चाहिए, व्यक्ति को यह भान हो जाय कि साधनाओं की सीमा है और इन साधनाओं के द्वारा हम केवल सीमित अर्थों में कभी सफलता प्राप्त कर सकते हैं, जैसाकि बन्दरों को अनुभव होता है। वह ठीक है हनुमानजी महाराज मूर्छित हो गये या लक्ष्मणजी मूर्छित हो गये, पर यह न भूलिएगा, इन लोगों की कथा से हमलोग यह न सोच लें कि इतने बड़े-बड़े लोग भी बुराइयों से हार गये और हम भी हार जाते हैं, तो उन्हीं की श्रेणी में हम भी हैं। यह मानने की भूल न कर बैठें हम लोग। उसमें एक अलग तत्त्व है, उसका एक अलग रहस्य है। वह रहस्य यह है कि लक्ष्मण जी हारते तो हैं मेघनाद से, लेकिन उसके बाद मेघनाद ने सोचा कि लक्ष्मणजी को उठाकर हम रावण के चरणों में डाल दें कि लीजिए, यह उससे बड़ा योद्धा आपके चरणों में पड़ा हुआ है। पर मेघनाद लक्ष्मणजी को नहीं उठा पाया और हनुमानजी लक्ष्मणजी को गोद में उठाकर प्रभु की गोद में पहुँचा देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि संसारी व्यक्ति हारता है, तो मोह के चरणों में गिर पड़ता है और भक्त के जीवन में जब हार दिखाई देती है, तब वह भगवान की गोद में ही पहुँचता है। वह रावण के चरणों में तो कभी पहुँचता ही नहीं है।

भक्तों को बड़ी प्रसन्नता होती है, जब हनुमानजी और भरतजी का संवाद होता है। हनुमानजी यह अनुभव करके नहीं लौटते कि मैं तो श्रीभरतजी से हार गया। हनुमानजी को भरतजी ने बिना फल के एक ही बाण से मूर्छित कर दिया था। जिन हनुमानजी को यह आर्शीवाद था कि तुम्हारे ऊपर ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र, किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, वे हनुमानजी एक बिना फल के बाण से नीचे गिरा दिये गये। हनुमानजी से श्रीभरत जी के अनेक संवाद हुए। हनुमानजी के स्थान पर कोई दूसरा होता, तो शायद वह अपने आपको हारा हुआ अनुभव करता। अपने आपमें ग्लानि या लज्जा का अनुभव करता। किन्तु ऐसा तो नहीं हुआ। हनुमानजी ने जो अर्थ लिया, वही अर्थ भक्त लेता है और उस अर्थ के कारण ही उसके जीवन में धन्यता आती है।

हर वस्तु को देखने की एक दृष्टि है। भगवान ने हनुमानजी से कहा कि यात्रा का अनुभव सुनाओ। बोले, महाराज, जब मैं अयोध्या के ऊपर था, तो श्रीभरत का बिना फल का बाण आया और मैं मूर्छित हो गया। प्रभु बोले, क्यों भरत ने बाण चला दिया? भरत तो ऐसी भूल नहीं कर सकता। उसको भ्रम हो गया होगा। तभी तो तुम्हारे ऊपर बाण चला दिया। हनुमानजी ने चरणों को पकड़ लिया। बोले – महाराज, यदि उनका भ्रम है, तो मैं चाहता हूँ कि ऐसा भ्रम संसार में प्रत्येक महापुरुष को हो। क्या? बोले उन्हें भ्रम न होता, तो मेरा भ्रम नहीं टूटता। उन्हें भ्रम नहीं हुआ, मेरा भ्रम तोड़ने के लिए आपने उनमें भ्रम उत्पन्न किया। हनुमानजी जानते हैं कि सारा खेल इन्हीं का है। ये ही ये सब खेल किया करते हैं। भरतजी जो कार्य करेंगे, उसकी प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिलती है? बोले –

भरत हृदयँ सिय राम निवासू। २/२९४/७

भरतजी ने बाण चलाया, तो लिखा हुआ है कि उनको भ्रम हो गया। वह भ्रम उत्पन्न करनेवाला कौन होगा? हृदय में तो श्रीराम बैठे हैं। उन्होंने ही कौतुक कर दिया कि चला दो बाण। हनुमानजी ने कहा, महाराज, उस बाण ने कितना बड़ा भ्रम दूर कर दिया, वह आवश्यक था ! उन्होंने कहा, महाराज आपने इतने एक-से-एक विलक्षण कार्य करा लिए – मैं वैद्य को घर सहित लंका से उठा लाया, यह भी आपने कराया। औषधि के लिए मुझे ही प्रेरित किया, तो मैं सामने आ गया और पूरे द्रोणाचल पर्वत को लेकर आ रहा था। यह भ्रम तो हो ही सकता था कि मैं न होता, तो इतने बड़े-बड़े कार्य कौन करता? पर एक ही बाण से भ्रम दूर हो गया। क्या? बोले, मुझे बाण लगा और मैं नीचे की ओर गिरा, पर आश्चर्य था कि वह जो पर्वत था, वह तो ऊपर का ऊपर ही रह गया। तब पता चला गया कि उसे अगर मैं उठाया हुआ होता, तो मेरे साथ वह भी गिरता, पर उठानेवाला तो कोई और था, इसलिये नहीं गिरा। तो महाराज, भ्रम भरतजी को नहीं हुआ, भ्रम मुझे होनेवाला था, जिसे भरतजी के द्वारा आपने तोड़ दिया। **(क्रमशः)**

विश्वधर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए विवेकानन्द कैसे प्रेरित हुए

स्वामी त्यागानन्द

मिनीस्टर इन्चार्ज रामकृष्ण वेदान्त सोसाइटी, बॉस्टन

अनुवाद- मातृचैतन्य, बेलूड़ मठ

विश्वधर्म-सम्मेलन १८९३ में शिकागो में आयोजित हुआ था। भारत का एक युवक, व्यावहारिक रूप से पूर्णतया अज्ञात हिन्दू संन्यासी, जिसने इसमें भाग लिया था, वह सम्मेलन में सबके विस्मय का कारण, सबसे महानतम, सबसे लोकप्रिय और प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। यह सब अब इतिहास का एक अंश है। विश्वधर्म-सम्मेलन एवं स्वामीजी का इसमें भाग लेना, इन दोनों के अभिप्राय अथवा महत्त्व को स्पष्ट समझने के लिये हमें अपने आप से प्रश्न पूछना होगा – किन परिस्थितियों ने स्वामी विवेकानन्द को विश्वधर्म-सम्मेलन में प्रथम स्थान प्राप्त कराया?

स्वामीजी की जीवनी के पाठकों ने इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न प्रकार से दिया है। उदाहरण के लिये, कुछ व्यक्तियों का कहना है कि विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेना स्वामीजी का पाश्चात्य देशों में जाने का मुख्य ध्येय नहीं था। यह तो गौण था। उनका पाश्चात्य देशों में जाने का प्रधान कारण था – भारतीय जनता के उत्थान के लिये धन एकत्र करना। स्वामीजी ने कन्याकुमारी में भारतीय द्वीप की अन्तिम चट्टान पर बैठकर तीन दिन एवं रात लगातार ध्यान किया था। उनके ध्यान का विषय ईश्वर या भगवान नहीं थे, बल्कि भारत, उसका भूत, वर्तमान और भविष्य था। अपनी परम प्रिय मातृभूमि पर किये गये ध्यान की प्रशान्त गहराईयों में उनका आमना–सामना भारत के प्राचीन गौरव एवं उसकी वर्तमान अवनति से हुआ। उन्होंने स्पष्ट देखा कि यदि भारत को भविष्य में विकास करना है, तो उसकी उच्चतम आध्यात्मिक चेतना द्वारा ही होगा, जिसने उसे सदैव से सभी देशों का और आस्था का आधार बनाया है।[१] भारत स्वामीजी के समय में दरिद्र था। यहाँ के लाखों लोग आर्थिक रूप से पिछड़े हुये थे, राजनीतिक रूप से यह स्वतन्त्र नहीं था और सामाजिक रूप से कठोर जातिवाद के नियमों से बँधा था। स्वामीजी के जीवनीकार हमें बताते हैं कि जब स्वामीजी ने कन्याकुमारी में समुद्र की ओर देखा, तो एक प्रकाश की किरण उनकी दृष्टि में आई और उन्होंने उसका आह्वान सुना – उन्हें भारत के लाखों लोगों के हितार्थ अमेरिका जाना होगा। वहाँ उन्हें अपनी बौद्धिक शक्ति द्वारा धन एकत्र करना होगा। भारत लौटकर उन्हें अपने देशवासियों के उत्थान हेतु स्वयं को समर्पित करना होगा या इस प्रयास में मर जाना होगा।[२]

अमेरिका में अपने यश एवं गौरव की ऊँचाइयों में विश्वधर्म-सम्मेलन के उस प्रथम रात्रि में यदि स्वामीजी ने कुछ सोचा था, तो वह भारतवासियों की दरिद्रता के विषय में ही था। उनकी अति दरिद्र मातृभूमि और धन–विलास से परिपूर्ण अमेरिका के बीच की विषमता को देख स्वामीजी सो न सके। भाव के आवेग में उन्होंने अपना बिस्तर छोड़ दिया और फर्श पर लेटकर रोने लगे – "हे माँ! क्या मैं नाम–यश की अपेक्षा करूँ, जबकि मेरी मातृभूमि सर्वाधिक दरिद्रता में डूबी हुई है। दरिद्र भारतवासियों की कितनी दुखद स्थिति है, वहाँ लाखों लोग एक मुट्ठी अन्न के लिये तरस रहे हैं, और यहाँ ये लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु लाखों रुपये खर्च कर रहे हैं! कौन भारत की जनता को ऊपर उठायेगा? कौन उन्हें रोटी देगा? मुझे मार्ग दिखाओ! हे माँ! मैं कैसे उनकी सहायता करूँ![३]

कुछ दिनों बाद उन्होंने एक शिष्य को लिखा – "मैं इस देश में अपने कौतूहल को शान्त करने नहीं आया और न ही नाम या यश के लिये, बल्कि इसलिये आया हूँ कि यदि मैं किसी भी प्रकार से भारत के दरिद्रों के लिये सहारा ढूँढ़ सकूँ।"[४]

---

१. Life of Sw. Vivekananda (eng) By his eastern and western disciples पृ.३४,

२. वहीं पृ.३४३, ३. वहीं पृ.३४९, ४. हरिपद मित्र को लिखा पत्र, दिस.२८, १८९३

जैसा कि बाद में ज्ञात हुआ स्वामीजी को सहायता नहीं मिली। विश्वधर्म-सम्मेलन के अपने व्याख्यानों में से एक में उन्होंने कहा – "मैं इस देश में अपने निर्धन भाइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था, पर मैं यह पूरी तरह समझ गया हूँ कि एक ईसाई राष्ट्र में ईसाइयों द्वारा मूर्तिपूजकों के लिये सहायता पाना कितना कठिन है।[५] यह सत्य है कि लोगों ने उन्हें बहुत पसंद किया और उनमें से कुछ ने बड़ी निष्ठा से उनका साथ दिया एवं मित्रवत् व्यवहार किया। किन्तु स्वामीजी की आशा के विपरीत उनके भारतीय कार्य के लिये उत्साहपूर्ण सहायता बड़े पैमाने पर कभी नहीं आयी। अपने 'प्रारम्भिक उद्देश्य' से हारे स्वामीजी भारत वापस आ जाते। परन्तु क्या वे आ सके?

हम उन्हें पाश्चात्य देशों में धन मिलने पर भी उसे न लेकर लगातार अपनी शिक्षाओं को फैलाते देख आश्चर्यचकित हो जाते हैं। एक पत्र में स्वामीजी ने लिखा है – मनु के अनुसार धन एकत्र करना, यहाँ तक कि किसी अच्छे कार्य के लिये भी संन्यासी के लिये अच्छा नहीं है और मुझे यह अनुभव होने लगा है कि प्राचीन ऋषि सही थे। मैं इन बचकाने विचारों में था कि यह करो और वह करो।... शायद ये विक्षिप्त इच्छायें मुझे इस देश में लाने के लिये आवश्यक थीं।[६]

आलासिंगा पेरुमाल

इस बात के कुछ विचारक यह मीमांसा करते हैं – यद्यपि स्वामीजी पाश्चात्य देशों में अपने भारतीय कार्य हेतु धन एकत्र करने आये थे, तदनन्तर उन्होंने जाना कि यह सम्भव नहीं है, तथापि वे विदेश में रुके रहे, क्योंकि या तो उनके विचार पहले से अधिक उच्चतर हुये थे या फिर उनकी प्राथमिकताएँ बदल गयी थीं या अपने कार्य के प्रति उनका दृष्टिकोण और भी बड़ा हो गया था। उनके अनुसार स्वामीजी को यह प्रत्यक्ष प्रतीत हुआ कि पाश्चात्य को आध्यात्मिक संदेश की उतनी ही आवश्यकता है जितना कि भारत को भौतिक उन्नति हेतु धन की। अत: तब से पाश्चात्य जगत में आध्यात्मिकता के बीज बोना स्वामीजी का प्राथमिक कार्य हो गया, उन्होंने एक पत्र में आलासिंगा को लिखा है – मेरा उद्देश्य है यहाँ पर स्थायी रूप से कुछ करने का और उसी प्रयोजन के लिये मैं दिन-पर-दिन कार्य करता जा रहा हूँ। प्रत्येक दिन ही मैं अमेरिकी लोगों का विश्वास प्राप्त कर रहा हूँ।[७] उसी समय लिमड़ी के एक मित्र को वे लिखते हैं – इस देश में बहुत अच्छा चल रहा है। इस बार मैं उनके अपने शिक्षकों में से एक हो गया हूँ।[८]

कुछ पाश्चात्यवादी स्वामीजी के इस कथन का कि 'मेरे पास पाश्चात्यों के लिये एक सन्देश है, जैसा कि बुद्ध के पास प्राच्य के लिये था'[९] उद्धरण देकर कहते हैं कि स्वामीजी का पश्चिम देशों को जाने का विशेष प्रयोजन पश्चिम देशों का आध्यात्मिक पुनरुत्थान करना ही था। जबकि यह भी आंशिक रूप से सच हो सकता है कि पश्चिमी देशों के लिये स्वामीजी का दार्शनिक के रूप में रहने का ऐकांतिक दावा किसी भी प्रकार से भारतीयों द्वारा उनके भारतीय देशभक्त संत होने के दावे से भिन्न नहीं है। कुछ भारतीय सभी को यह विश्वास दिलाना चाहेंगे कि स्वामीजी केवल भारत और हिन्दूधर्म के लिये पश्चिमी देशों को गये थे। उदाहरणस्वरूप – स्वामीजी ने मद्रास में अपने युवा प्रशंसकों के समूह से जो कहा था, वे उसे इंगित करते हैं – समय आ चुका है हमारे मत के प्रचार का, समय आ गया है ऋषियों के हिन्दुत्व के क्रियाशील होने का। क्या हम अपने प्राचीन मत की दृढ़प्राचीर को इन विदेशियों के हाथों नष्ट होता देखकर भी निष्क्रिय खड़े रहेंगे? क्या हम इसकी अपराजेयता अथवा अभेद्यता से संतुष्ट हैं? क्या हम यूँ ही निष्क्रिय बने रहेंगे या अतीत की तरह देश–विदेश में अपने धर्म की महिमा के प्रचार हेतु आक्रामक भी होंगे? क्या हम अभी भी अपनी सामाजिक दलों और अपनी प्रान्तीयता की संकीर्णताओं से जकड़े रहेंगे।[१०] या हम इनसे बाहर निकलकर अन्य लोगों के विचारसागर में से भारत का हित खोजने का प्रयास करेंगे। पुनरुत्थान हेतु भारत को पुन: शक्तिशाली और एकजुट होना पड़ेगा और

५. विवेकानन्द साहित्य, खंड १, पृ २२ ओलीबुल को लिखा पत्र – १४ फरवरी, १८९५ ६. आलासिंगा को लिखा पत्र–१८९४,U.S.A.

७. वेहेमिया चन्द लिम्बड़ी को लिखा पत्र – २३ अक्टूबर, १८९४ ८. विवेकानन्द साहित्य (प्रश्नोत्तर) बुक्रलिन नैतिक संस्था ९. वहीं १०, पृष्ठ ३८०, १०. Life of Sw. Viv. (i) 371

अपनी सभी जीवन्त शक्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

एक दार्शनिक को अपना कहकर दावा करने की इच्छा पूर्णरूपेण समझने योग्य है। किन्तु हमें इस तथ्य को कदापि नहीं भूलना चाहिये कि – विवेकानन्द जैसे व्यक्तित्व को किसी देश, क्षेत्र, यहाँ तक कि विश्व के किसी भी अन्य भाग में सीमित करना असम्भव है। वे प्रत्येक क्षेत्र में सार्वभौमिक हैं। वे इस या उस देश के नहीं, बल्कि पूरे विश्व के नागरिक हैं। वे सभी के हैं, किन्तु कोई भी उन पर अपना होने का विशेष दावा नहीं कर सकता है। अत: स्वामीजी की पश्चिम यात्रा का विशेष उद्देश्य न तो पश्चिम का आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है और न ही भारत का भौतिक उत्थान। किन्तु बहुत सम्भावना है कि ये दोनों ही किसी उच्चतर उद्देश्य में शामिल थे। जब भारत से किसी ने स्वामीजी से अपने काम को जारी रखने के लिये घर लौटने का आग्रह किया, तो स्वामीजी गरज उठे – "घर लौट आऊँ, कहाँ है घर! मैं भुक्ति–मुक्ति की परवाह नहीं करता, बल्कि झरने की तरह दूसरों के सुख के लिये मैं लाखों बार नरक जाने को भी तैयार हूँ" यही मेरा धर्म है।[११] वे आलासिंगा को लिखते हैं, सत्य ही मेरा ईश्वर है, यह चराचर ब्रह्माण्ड ही मेरा देश है...

मेरे पास शिक्षा हेतु यही सत्य है कि – मैं ईश्वर की सन्तान हूँ।[१२]

एक दूसरे पत्र में वे लिखते हैं, "मैं अपने जीवन का उद्देश्य जानता हूँ, मेरे लिये अन्धराष्ट्रीयता नाम का कुछ भी नहीं है, मैं भारत का जितना हूँ, उतना ही विश्व का भी हूँ, इसमें पाखण्ड कुछ भी नहीं है।"[१३]

और हाँ, "तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि मेरा कार्य अन्तर्राष्ट्रीय है, केवल भारतीय नहीं।"[१४]

स्वामीजी की जीवनी के कुछ दूसरे अध्येता इस बात से सहमत हैं कि स्वामीजी का संदेश केवल भारत अथवा पश्चिम के लिये नहीं, बल्कि पूरे विश्व के लिये था और उनका कार्यक्षेत्र पूर्व और पश्चिम दोनों के लिये समान था। किन्तु वे इस विचार से असहमत हैं कि जैसे–जैसे समय बीता स्वामीजी का पश्चिम जाने का उद्देश्य परिवर्तित होता, विकसित होता या बढ़ता गया। वे कहते हैं कि जो भी स्पष्ट कारण हों (जिनमें से कुछ उद्धृत किये गये हैं), प्रारम्भ से ही स्वामीजी अपने दिव्य उद्देश्य और विश्वधर्म-सम्मेलन में अपनी भूमिका के विषय में पूरी तरह से अवगत थे, इसे अस्वीकार करना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी जानते थे कि विश्वधर्म-सम्मेलन उनके कार्य की पहली प्रत्यक्ष सीमा चिन्ह के रूप में माना जायेगा। पश्चिम देश में जाने के लिये समुद्री-यात्रा से एक महीने पहले जब स्वामीजी स्वामी तुरीयानन्द से मिले, तो उन्होंने स्वामी तुरीयानन्द से उस विषय में स्पष्ट रूप से कहा – जो कुछ भी तुम सुन रहे हो, या वहाँ (विश्वधर्म-सम्मेलन की ओर इंगित करते हुए) जो हो रहा है, वह सब 'इसके लिये' ही हो रहा है, अपनी छाती पर प्रहार कर उन्होंने अन्तिम शब्दों पर जोर दिया, "इसके लिये (मानों 'मेरे लिये') ही सब कुछ व्यवस्था की गई है।"[१५]

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार यह एक विवादास्पद विषय है कि स्वामीजी अपने उद्देश्य की प्रकृति एवं परिणाम के विषय में पहले से ही जानते थे। यदि वे यह जानते थे, तो यह केवल एक आंशिक झलक थी, पर किसी प्रकार से स्वामीजी ने अत्यन्त सहज रूप से यह अनुभव किया कि उन्हें सागर पार जाना ही होगा। एक रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी जैसे असाधारण व्यक्तित्व के लिये विश्वधर्म-सम्मेलन में उपस्थित होने की इच्छा स्वाभाविक ही थी। उनके परिव्राजक जीवन के दौरान, कुछ विशिष्ट शक्तियों द्वारा जिनसे वे मिले थे, यह विचार उनके मस्तिष्क में बैठा दिया गया था। उदाहरण के लिये – पोरबन्दर के दीवान पंडित शंकर पांडुरंग ने उनसे कहा था – "स्वामीजी मुझे भ्रम है कि आप इस देश में कुछ अधिक नहीं कर सकेंगे। यहाँ कुछ व्यक्ति ही आपको पहचान पायेंगे, आपको पश्चिम में जाना चाहिये, जहाँ के लोग आपको और आपका मूल्य समझेंगे। निश्चय ही सनातन धर्म का प्रचार कर आप पश्चिमी सभ्यता पर एक महान प्रभाव डाल सकेंगे।"[१६]

मैसूर, रामनाद और खेतड़ी के राजाओं ने यात्रा का वित्तीय भार वहन करने का वादा किया और मद्रास के नवयुवक वह सब कुछ करने को अत्यन्त उत्साही थे, जो स्वामीजी के विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिये सम्भव हो सकता था। स्वामीजी जैसे उत्सुक व्यक्ति के लिये तो

११. स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित पत्र – १८९४, **१२.** आलासिंगा को लिखित पत्र–अगस्त,१८९५ अमेरिका, **१३.** आलासिंगा को लिखित पत्र–९ सितम्बर, १८९५ पेरिस, **१४.** आलासिंगा को लिखित पत्र – २० नवम्बर, १८९६ लंदन

१५. Life (i) 385, **१६.** वही पृ.२९५

मद्रासी शिष्यों के साथ स्वामी विवेकानन्द

किसी भी चुनौती का सामना करने के लिए, साहसपूर्वक किसी भी आपात परिस्थिति को झेलने के लिये, वह सब सीखने को जो जीवन उन्हें सिखाना चाहे और अभावग्रस्त की सेवा करने में, चाहे वह जैसे भी सम्भव हो, विश्वधर्म-सम्मेलन आदर्श था। उससे भी अधिक इसलिए कि कदाचित् उन्होंने देख लिया था कि विश्वधर्म-सम्मेलन ही वह उचित मंच है, जहाँ से वे अपने जीवनदायी आध्यात्मिक कोष और विचारों को बृहत्तर रूप में आदान-प्रदान कर सकते हैं, जो उनके हृदय में रहकर भी अभिव्यक्ति हेतु लालायित थे।

उल्लेखित इन सब दृष्टिकोणों के अनुसार कुछ कारक अथवा सामान्य कारक अवश्य थे, जिन्होंने स्वामीजी को विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने को प्रेरित किया। किन्तु स्वामीजी की जीवनी के कुछ अध्येता बताते हैं कि प्रमुख कारक, जो एक दार्शनिक अथवा पैगम्बर के जीवन को संचालित करते हैं वे हैं 'दैवीय कारक'। यदि हम इसकी उपेक्षा करें, तो हम कभी भी वास्तविक चित्रण की आशा नहीं कर सकते। 'दैव' एक दार्शनिक के लिये हम सबकी (साधारण मनुष्यो) अपेक्षा अधिक वास्तविक अथवा सत्य होता है।

एक मद्रासी शिष्य को लिखे पत्र में हम स्वामीजी को कहते हुए पाते हैं – "मैं मनुष्य, ईश्वर एवं शैतान से भी महत्तर शक्ति को अपने पीछे खड़ा देखता हूँ।?[१७] श्रीरामकृष्ण द्वारा स्वामीजी को 'माँ काली' को 'समर्पित' कर देने के बाद वे ही थीं, जिन्होंने उनके लिये सब कुछ किया। वे तो उन पर पूर्णतया निर्भर एक छोटे बालक मात्र थे। उन्होंने एक क्षण के लिये भी उन्हें कभी नहीं छोड़ा। स्वामीजी ने कहा था कि जहाँ भी उन्होंने मुड़कर देखा, माँ की उपस्थिति उन्होंने सदैव इस तरह अनुभव की मानों वे एक व्यक्ति की भाँति उस स्थान में विराजमान थीं।"[१८]

उन्होंने अनुभव किया कि वे ही थीं अथवा उनके अपने गुरुदेव जिनके हाथों ने मेरे हाथों को पकड़े रखा है और मेरा ऐसा पथ-प्रदर्शन करते हैं, मानो मैं कोई बालक हूँ।"[१९]

साधारणतया वे कुछ भी नहीं करते थे, जब तक वे इस विषय में निश्चिन्त नहीं हो जाते थे कि यह 'माँ की इच्छा है'। यहाँ तक कि पश्चिम जाने का विचार स्वामीजी के मस्तिष्क में कई बार उदित हुआ था, किन्तु वे तब तक इस विषय में अन्तिम निर्णय लेने में हिचकिचाते रहे, जब तक कि उन्हें दिव्य आश्वासन प्राप्त नहीं हुआ।

यहाँ तक कि वे अपने मद्रासी युवक प्रशंसकों द्वारा एकत्र धन को जो उनके पश्चिम जाने के मार्ग-व्यय हेतु था, उसे गरीबों में वितरित कर देने को तैयार हो गये, उनसे यह कहते हुये – "मेरे बच्चो, मैं माँ की इच्छा को ही बल देने के लिये कृतसंकल्प हूँ। उन्हें यह सिद्ध करना होगा कि यह उनकी ही इच्छा है कि मैं वहाँ जाऊँ, क्योंकि यह अँधेरे में रखा जानेवाला कदम है। यदि यह उनकी इच्छा है, तो धन पुनः अपने आप आ जायेगा, अतः यह धन ले जाओ और गरीबों में वितरित कर दो।"[२०]

उन्होंने व्याकुल होकर माँ से प्रार्थना की, "क्या मैं अपनी इच्छा से जा रहा हूँ? क्या मैं उत्सुकतावश जा रहा हूँ? या मैंने जो सोचा है अथवा जो योजना बनाई है, इसमें एक गहरा अर्थ छिपा है। हे माँ, मुझे बताओ कि तुम क्या चाहती हो। यह तुम ही हो जो कर्ता हो, मुझे अपना निमित्त ही बने रहने दो।"[२१]

जब हैदराबाद के नवाब ने स्वामीजी को उनकी पश्चिम यात्रा हेतु एक हजार रुपये देना चाहा, तो स्वामीजी ने इन शब्दों के साथ लेने से मना कर दिया – "महाराज, अभी समय नहीं आया है, जब ईश्वरादेश आयेगा, मैं आपको अवश्य सूचित करूँगा।"[२२]

'आदेश' कुछ ही दिन बाद मद्रास में एक आध्यात्मिक

१७. आलासिंगा को लिखित पत्र – ९ सितम्बर, १८९५ पेरिस, **१८.** Sis. Nivedita: The Master as I saw him, Calcutta, Udhbodhan office 1959, Pg no. 166.

१९. Life, ii 378–79, **२०.** वही, खंड १, पृष्ट ३७, **२१.** वही, पृ. ३७६, **२२.** वही, पृ. ३८०,

दर्शन के रूप में आया। स्वामीजी ने देखा कि उनके गुरु श्रीरामकृष्ण की आकृति, समुद्रतट से समुद्रीजल की ओर चलती हुयी जा रही है और उन्हें अपने पीछे आने के लिये इंगित कर रही है।[२३] इस तरह यह समस्या एक बार में ही सदा के लिये सुलझ गयी। यह स्वाभाविक ही है कि तब वे माँ श्रीसारदादेवी का आशीर्वाद चाहते थे।

वे भी जानती थीं कि यह श्रीरामकृष्ण की ही इच्छा थी कि उनकी प्राणप्रिय सन्तान सागर पार जाये और उस उद्देश्य को पूर्ण करे, जिसके लिये उसने जन्म लिया है। उन्होंने प्रसन्नता के साथ अपना आशीर्वाद एवं सहमति प्रदान की। जब स्वामीजी को माँ का पत्र मिला, तो वे आनन्दित होकर आँखों में आँसू भरकर नृत्य करते हुये स्वयं से कहने लगे, वाह! अब सब ठीक हो गया। यह माँ की ही इच्छा है। यदि स्वामीजी अपनी इच्छा से पश्चिम को नहीं गये, यदि यह माँ की ही इच्छा थी, यदि वे माँ के हाथों के यंत्रमात्र थे और यदि इतिहास की दुरदर्शिता को देखते हुये हम आज इस विषय की पुष्टि करने की स्थिति में हैं कि इस विषय में वास्तव में ऐसा ही हुआ प्रतीत होता है, तो अब इस प्रश्न का कि 'स्वामीजी विश्व-धर्म-सम्मेलन में भाग लेने को बाध्य क्यों हुये' का उत्तर आसान हो जाता है। इसका सीधा-सा उत्तर है कि वे माँ के हाथों के यंत्रस्वरूप थे और वे चाहती थीं कि स्वामीजी विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लें।
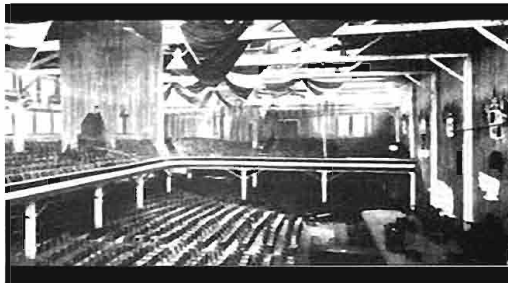
आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो का अन्तरंग चित्र

किन्तु माँ क्यों चाहती थीं कि स्वामीजी विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लें और पश्चिम को वेदान्त की शिक्षा दें? इसका उत्तर निःसंदेह केवल अनुमान लगाया जा सकता है और आपका अनुमान भी मेरे जैसा ही ठीक है।

आज विश्वधर्म-सम्मेलन के एक सौ पचीस वर्ष बीतने के बाद सटीक अनुमान लगाना कदाचित् यह बिलकुल भी कठिन नहीं है। किसी भी विषय में यहाँ एक सम्भावित उत्तर है।

यह उत्तर एक प्रश्न से शुरू होना चाहिये। किस बात ने स्वामीजी को विश्वधर्म-सम्मेलन का सबसे सफल प्रतिनिधि बनाया? निःसन्देह यह उनका सन्देश ही था – वह सन्देश, जो अप्रतिरोध्य, आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न था। ये वे ही थे, जिन्होंने अपनी बातों द्वारा विश्वधर्म-सम्मेलन की आत्मा नहीं, बल्कि आधुनिक युग की आत्मा को पूर्ण और स्पष्ट रूप से व्यक्त किया।

स्वामीजी का सुविख्यात 'शिकागो व्याख्यान' सबसे उत्कृष्ट था। क्योंकि वह सार्वभौमिकता एवं समन्वय की भावना से ओत–प्रोत था। जैसे कि कुछ दूसरे सम्बोधन भी थे। ऐसा नहीं कि विश्वधर्म-सम्मेलन में किसी अन्य प्रतिनिधि ने सार्वभौमिकता व सद्भाव की भावनाओं को व्यक्त नहीं किया, निस्संदेह अधिकतर ने किया, पर किसी कारण से उन लोगों का व्याख्यान जन-मानस पर उतना प्रभाव नहीं डाल सका, जितना प्रभाव स्वामीजी के व्याख्यान का पड़ा। ऐसा इसलिये क्योंकि प्रथमतः विश्वधर्म-सम्मेलन में अधिकांश वक्ताओं के शब्द उनके मुख से निकले थे, हृदय से नहीं। द्वितीयतः यद्यपि सार्वभौमिकता एवं सद्भाव के विचार अधिकांश लोगों ने स्पर्श किया, तथापि प्रत्येक जाने-अनजाने में यही सुझाव दे रहा था कि जिस धर्म का वह प्रतिनिधित्व कर रहा है, केवल उसके द्वारा ही इन दोनों को प्राप्त किया जा सकता है। तृतीयतः बहुत से धर्मप्रचारक सारूप्यता के साथ सार्वभौमिकता व समन्वय को लेकर भ्रमित थे और निश्चित ही उन्होंने संकीर्ण, साम्प्रदायिक तथा कट्टर विचारों को अपने मतानुसार प्रस्तुत कर उस विश्व–विख्यात धर्म-महासम्मेलन में अपनी वाणी को विराम दिया। चतुर्थतः कुछ सज्जन उदारवादी विचारों के प्रतिनिधियों ने गंभीरता एवं उत्साह के साथ सार्वभौमिकता एवं सद्भाव की पताका को पकड़े रखा, पर उनकी वह अपील या तो बौद्धिक थी या भावात्मक और उसमें आध्यात्मिक अनुभूतिजन्य शक्ति की कमी थी।

ये स्वामी विवेकानन्द ही थे, जो विश्वधर्म-सम्मेलन के मंच पर सार्वभौमिकता एवं सद्भाव की जीवन्त मूर्ति के रूप में खड़े थे, जो आधुनिक युग की दो प्रमुख आवश्यकताएँ

२३. विवेकानन्द साहित्य, विश्व के महान शिक्षक, पैरा – ७,

थीं। किन्तु शब्द तो गहन शक्ति एवं अनुभूति को व्यक्त करने के माध्यम मात्र थे, किन्तु उसकी प्रतिमूर्ति विवेकानन्द के रूप में वहाँ उपस्थित थी।

'मेरे अमेरिकी बहनो और भाईयो' यही वे पाँच साधारण शब्द थे, इनमें कुछ भी असाधारण नहीं था। स्वामीजी द्वारा इन शब्दों के उच्चारण के तुरन्त बाद जो तालियों की गड़गड़ाहट और हर्षध्वनि हुई, वह उन शब्दों की शक्ति के कारण नहीं, बल्कि उस शक्ति के कारण हुई, जो स्वामीजी

अमेरिका में के.आर. मजुमदार तथा अन्य के साथ स्वामी विवेकानन्द

के भीतर से निर्गत हुई और ११ सितम्बर, १८९३ को कोलम्बस हॉल में एकत्रित प्रत्येक पुरुष एवं महिला के हृदय में सीधे प्रवेश कर गई।

स्वामीजी ने एक बार कहा था – "इस जगत में है ही क्या, यदि इसके पीछे वह अद्भुत शक्ति न हो? प्रश्न यह है तुम्हारे पास कुछ देने के लिये है या नहीं ...। यदि है, तो दो।"[२४] स्वामीजी के पास 'देने' को बहुत कुछ था और उत्सुक श्रोता उस अनमोल कोष को प्राप्त करने के लिये भूखे बैठे थे, जिसे स्वामीजी ने उन्हें उदारतापूर्वक वितरित किया। उन सबके हृदय जीत लिये गये थे और अत्यन्त सहजता से उन्होंने अनुभव किया कि उनके सामने कोई खड़ा है, जिससे वे जुड़ सकते हैं और जिसने उन्हें समझा है। इसके बाद के दिनों में वे स्वामीजी के मुखारविन्द से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहते थे। आज हमें यह अपरिहार्य प्रतीत होता है, क्योंकि स्वामीजी के चमत्कारी व्यक्तित्व एवं आध्यात्मिकता के अतिरिक्त वास्तव में जिस चीज ने स्वामीजी की ओर उन लोगों को सबसे अधिक आकृष्ट किया था, वह थी – आधुनिक युग की जीवन्त उफान मारती हुयी सार्वभौतिकता और सद्भाव की विचारधारा, जिसका उन्होंने प्रतिनिधित्व किया। विश्वधर्म-सम्मेलन के समक्ष स्वामीजी का व्याख्यान विशेष रूप से उनका प्रसिद्ध 'हिन्दू धर्म पर लेख' जो १९ सितम्बर को प्रस्तुत किया गया था, आधुनिक जगत के लिये उनके संदेश का मार्ग अथवा मूल था।

आगामी वर्षों में उन्होंने जो कुछ भी शिक्षाएँ दीं, वे सब विश्वधर्म-सम्मेलन में दिये उनके व्याख्यानों की टिप्पणियाँ मात्र थीं। यद्यपि अन्य प्रतिनिधियों ने विभिन्न सम्प्रदायों और धर्मों का प्रतिनिधित्व किया, तथापि वे (स्वामीजी) वहाँ उन सब धर्मों और सम्प्रदायों के समन्वयक के रूप में प्रत्येक से यह आग्रह करते हुये खड़े हुये कि वे सभी अपनी कूपमण्डूक मानसिकता का त्याग करें और अपने दृष्टिकोण में भी सार्वभौमिक, विश्वजनीन बनें। मनुष्य को व्यापक, सार्वभौमिक होना ही पड़ेगा, उसके धर्म को भी सार्वभौमिक बनना पड़ेगा। यह सार्वभौमिक धर्म कैसा होना चाहिये? स्वामीजी ने महासभा में स्पष्ट किया – "यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होगा, तो वह किसी देश अथवा काल से सीमाबद्ध नहीं होगा, वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा, जिसका वह उपदेश देगा, जिसका सूर्य श्रीकृष्ण और ईसा के अनुयाइयों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेगा, जो न तो ब्राह्मण होगा, न बौद्ध, न ईसाई और न इस्लाम, वरन् इन सबकी समष्टि होगा, किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिये अनन्त अवकाश होगा, जो इतना उदार होगा कि पशुओं के स्तर से किंचित् उन्नत, निम्नतम घृणित जंगली मनुष्य से लेकर अपने हृदय एवं मस्तिष्क के गुणों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उच्चतम मनुष्य तक को, जिसके प्रति सारा समाज श्रद्धावनत हो जाता है, लोग जिसके मनुष्य करने में सन्देह करते है, अपनी बाहुओं से आलिंगन कर सके और उनको सबको स्थान दे सकें। वह धर्म ऐसा होगा, जिसकी नीति में उत्पीड़ित या असहिष्णुता का स्थान नहीं होगा, वह प्रत्येक स्त्री और पुरुष में दिव्यता को स्वीकार करेगा और उसका सम्पूर्ण बल और सामर्थ्य मानवता को अपनी सच्ची दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केन्द्रित होगा।[२५]

यह था 'धर्म' जो स्वामी विवेकानन्द ने विश्वधर्म-सम्मेलन

२४. वही, 'खंड १, पृ. ७, हिन्दू धर्म पर निबन्ध,

२५. वहीं पृ. २०-२१

में प्रस्तुत किया। यह था धर्म जो आकाश की भाँति विस्तृत और समुद्र की भाँति गहरा था। वास्तव में, यह धर्म सभी धर्मों से परे था।[२६] इसने सभी का आलिंगन किया और किसी को अस्वीकार नहीं किया। यह था 'धर्म' जो उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के पादपद्मों में रहकर सीखा था।

शिकागो का विश्वधर्म-सम्मेलन अपने प्रकार का पहला सम्मेलन नहीं था, जिसमें स्वामी विवेकानन्द ने भाग लिया था। स्वदेश में वे श्रीरामकृष्ण के साथ रह चुके थे, जो स्वयं में एक प्रकार के विश्वधर्म-सम्मेलन थे। एक अर्थ में शिकागो का विश्वधर्म-सम्मेलन उस महान विश्वधर्म-सम्मेलन का केवल स्थूल निरूपण था, जो दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण नामक व्यक्ति में आयोजित हो चुका था। अपनी आध्यात्मिक संघर्षों, साधना और तपस्या के माध्यम से श्रीरामकृष्ण ने परम सत्य की उपलब्धि केवल उस धर्म द्वारा ही नहीं जिसमें वे जन्में थे, बल्कि दूसरे धर्मों और पन्थों द्वारा भी की थी। उस सर्वोच्च अनुभव के श्रेष्ठ बिन्दु पर पहुँचकर उन्होंने पाया कि सभी धर्म उस एक ही लक्ष्य 'ईश्वर' तक पहुँचने के विभिन्न मार्ग मात्र हैं, जो यद्यपि एक ही है, तथापि उन्हें विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।

दक्षिणेश्वर काली मन्दिर, कलकता

श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन के माध्यम से प्राचीन और व्यापक रूप से भुलाये जा चुके इस सत्य की पुन: पुष्टि की – "धर्म अनुभव की वस्तु है, केवल श्रद्धा और विश्वास की नहीं।"

श्रीरामकृष्ण की जीवनी के गहन चिन्तनशील अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वह समय आ चुका है, जब सभी संकीर्ण मानसिकता को दूर करना ही होगा। प्रत्येक को विस्तृत, उदार होना ही होगा। आधुनिक युग का आदर्श वह सार्वभौमिक व्यक्ति है, जो उन सभी जंजीरों को तोड़ देगा, जो उसे विभिन्न स्तरों पर सीमित करती हैं। सारी सृष्टि में एक मूलभूत सामंजस्य है। व्यक्ति को इसे ढूँढ़ निकालना होगा और स्वयं को इसके अनुकूल बनाना होगा। इसी बात को वर्तमान समाज के प्रति उद्घोषित करने के लिये स्वामीजी को नियुक्त किया गया था और उनसे इस लौकिक प्रयोजन का प्रारम्भ विश्वधर्म-सम्मेलन में उनके द्वारा किये गये उद्घोष के साथ हुआ। यही वह कार्य था, जो स्वामीजी को श्रीरामकृष्ण से विरासत में मिला था। स्वामीजी के अपने शब्दों में – "मैं श्रीरामकृष्ण का दास हूँ, जिन्होंने अपना कार्य मुझसे करवाने के लिये छोड़ दिया है और तब तक मुझे विश्राम नहीं देंगे, जब तक मैं इसे पूरा नहीं कर लेता।"[२७] श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी को समाधि-अवस्था का आनन्द देने के बाद कहा था, "अब माँ ने तुम्हें सब कुछ दिखा दिया, जैसे एक खजाना संदूक में बंद कर दिया जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा यह अनुभव भी संदूक में बंद कर दिया गया है और उसकी चाबी मेरे पास रहेगी। तुम्हें मेरा कार्य करना होगा। जब तुम मेरा कार्य समाप्त कर लोगे, तो यह खजाना पुन: खुल जायेगा, और तब तुम्हें सब कुछ वैसी ही अनुभूति होगी, जैसी अभी हुई है।"[२८]

परवर्तीकाल में श्रीरामकृष्ण ने अपने अन्य शिष्यों से कहा था – "नरेन अपनी इच्छा से ही मृत्यु का वरण करेगा। जिस क्षण वह जानेगा कि वह कौन है, वह इस शरीर में एक पल भी रहने से अस्वीकार कर देगा। वह समय आयेगा, जब वह अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों के बल पर इस संसार को इसकी जड़ों तक हिला कर रख देगा। मैंने माँ से प्रार्थना की है कि माँ सर्वोच्चज्ञान के इस अनुभव को नरेन से छुपा कर रखना। उसके द्वारा बहुत-सा काम होना है। किन्तु यह आवरण बहुत पतला है, इतना पतला कि किसी भी समय उसे मार्ग दे सकता है।[२९]

यह आवरण हटा सन् १९०२ में, पर तब तक नहीं जब तक कि स्वामीजी ने स्वयं को सौंपे गये कार्य को पूरा नहीं

२६. For a discussion on Swamiji's concept of Madras Sri Ramakrishna Math Dec 1991, PP. 403 - 14.

२७. Life (ii) 253, २८. वही, खंड १, पृ. १७८ २९. वही, खंड १, पृ. १७८-१७९

कर लिया। विश्वधर्म-सम्मेलन वह मंच था, जहाँ से स्वामीजी अपने कार्य-क्षेत्र में उतर पड़े थे। अब विश्वधर्म-सम्मेलन के महत्त्व और उपलब्धियों के साथ ही स्वामीजी के उद्देश्य के आकलन हेतु भी समय परिपक्व हो चुका है।

विश्वधर्म-सम्मेलन का महत्त्व किसी भी प्रकार से कम नहीं आंका जा सकता। यह सत्य है कि ऐसे धार्मिक समारोह पहले भी आयोजित हुये थे, पर वे अत्यन्त छोटे, कम महत्त्वपूर्ण विषयों वाले थे, यद्यपि वे कुछ अच्छा जरूर कर सके हों, किन्तु वे समाज पर एक स्थायी छाप छोड़ने में असफल रहे। किन्तु १८९३ का विश्वधर्म-सम्मेलन अलग ही था। इसमें विश्व के प्रत्येक कोने से आये हुये प्रतिनिधियों ने सम्पूर्ण के धर्म-सम्प्रदायों का एक विशाल दृश्य प्रदर्शित किया। इसके अलावा उस विश्वधर्म-सम्मेलन की कार्यवाही का वृत्तांत लाखों लोगों तक पहुँचा और उसने अभूतपूर्व प्रतिक्रिया का सृजन किया। अपने विशाल आकार, जनता की प्रतिक्रिया की विशालता और संप्रेषण की व्यापकता ने संसार के धार्मिक इतिहास में इस विश्वधर्म-सम्मेलन को एक अनूठी घटना बना दिया। किन्तु विश्वधर्म-सम्मेलन वास्तव में जिसके कारण महत्त्वपूर्ण और विश्वविख्यात् हुआ, वे थे दार्शनिक 'स्वामी विवेकानन्द', जो एक विशेष उद्देश्य, 'नव युग अरुणोदय' का संदेश लेकर आए थे और सार्वभौमिकता व सद्भाव ही जिनका नारा था। अपने गुरुभाइयों को लिखित एक पत्र में स्वामीजी लिखते हैं – "यदि आवश्यकता हो, तो प्रत्येक वस्तु का बलिदान करना होगा, उस एक भाव सार्वभौमिकता हेतु।"[३०]

अतीत के सभी दार्शनिकों की भाँति ही स्वामीजी धीरे-धीरे चैतन्यता के साथ और लगभग अलक्षित रूप से अपने उद्देश्य की ओर बढ़े। विश्वधर्म-सम्मेलन में अपने व्याख्यान द्वारा और परवर्ती काल में अपने प्रवचनों, व्याख्यानों, पत्रों, साक्षात्कारों, कथोपकथनों और अनौपचारिक वार्तालाप के द्वारा स्वामीजी ने मानवता की समष्टि-चेतना को सार्वभौमिकता और सद्भाव के आदर्शों में रंजित कर दिया। यह संदेहास्पद है कि विश्वधर्म-सम्मेलन में जिन्होंने भी उन्हें सुना या प्रशंसा की, वे यह जानते थे या नहीं कि ये सुन्दर युवा संन्यासी केवल दैवी अधिकार से सम्पन्न एक वक्ता ही नहीं, बल्कि आधुनिक युग के अवतार ही हैं। यह प्रश्न किया जा सकता है कि "यदि स्वामीजी ने सार्वभौमिकता और सद्भाव के बीज, एक सौ पचीस वर्ष पहले बोये थे, तो क्या उनसे कोई अंकुर फूटा है?" इसका उत्तर निस्सन्देह 'हाँ' है। यह सत्य है कि इसमें समय लगा, क्योंकि स्वामीजी को केवल बीज नहीं बोने थे, जो अपेक्षाकृत सरलतर कार्य था, बल्कि उनकी पौधशाला तैयार करनी थी। आज सार्वभौमिकता बनी हुई है, भौतिक स्तर पर हम इसे अनुभव भी कर रहे हैं। कहीं भी कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना, चाहे वह युद्ध के रूप में हो, बड़े उद्योगों की शुरूआत या समापन के रूप में हो, वैज्ञानिक आविष्कारों अथवा तकनीकी सफलताओं के रूप में हो और यहाँ तक कि बाह्य अंतरिक्ष निकायों के रूप में ही क्यों न हो, पूरे विश्व में इसके ही प्रभाव से है। हम इसे पसन्द करें या न करें, आधुनिक जगत में अपने राजनीतिक, सामाजिक, औद्योगिक और आर्थिक मामलों में हम परस्पर आश्रित हैं। स्वैच्छिक अथवा अनैच्छिक अलगाव के दिन शेष हो चुके हैं। मानसिक स्तर पर वैश्विक समुदाय के एक हिस्से के रूप में व्यक्ति की चेतना धीरे-धीरे बढ़ रही है। ऐसा नहीं कि – राष्ट्रवाद, जातिवाद, वर्गवाद और धार्मिक कट्टरवाद के नकारात्मक पक्ष अनुपस्थित हैं। वे पर्याप्त मात्रा में हैं, पर आज उनमें बहुमत की स्वीकृति और अनुमोदन की कमी है।

सामंजस्य को प्रतिष्ठित किया जा सकता है, किन्तु सार्वभौमिकता से अलग नहीं किया जा सकता। दोनों एक साथ चलते हैं। विश्व में उतना सामंजस्य हो सकता है, जितनी सार्वभौमिकता होगी। आज संसार में सामंजस्य है,

३०. वही, खंड १, पृ. ५४१
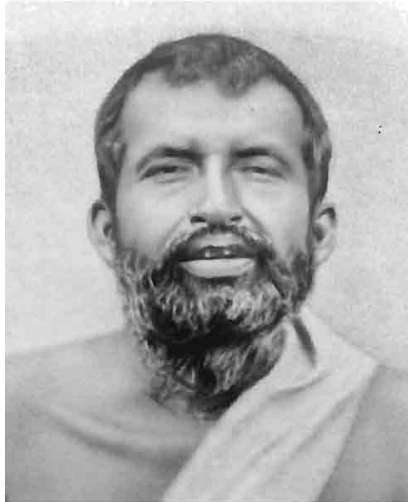
किन्तु तनावपूर्ण, पीड़ादायक संतुलित अवस्था में है और क्षणभंगुर सामंजस्य है। यह बहुधा असंतुलित हो जाता है, जिसका परिणाम अशान्ति, बीमारी और हिंसा होती है। व्यक्तिगत और सामूहिक शान्ति अभी भी एक दुर्लभ वस्तु है। सार्वभौमिकता व सद्भाव के पौधे आज भी बहुत छोटे हैं और उन्हें अनन्त संरक्षण और पोषण की आवश्यकता है।

इन छोटे पौधों के पोषण और संरक्षण की कौन परवाह करता है? आप, मैं या हममें से प्रत्येक का यह दायित्व है। यदि यह पौधा आगामी एक सौ पचीस वर्षों में पर्याप्त मात्रा में बड़ा और शक्तिशाली नहीं हुआ है, तो वह केवल इसलिये कि हमने अपने हिस्से की भूमिका पूर्णरूपेण और उत्तम रूप से नहीं निभाई, जैसी हमें निभानी चाहिये थी। स्पष्ट तथ्य यह है कि सार्वभौमिकता एवं सौहार्द की वृद्धि इस जगत के कम-से-कम उन लोगों की एक बड़ी संख्या के हृदयों में पहले आरम्भ करनी होगी, 'जो इस दुनिया के हैं।'

आज इस प्रकार के प्रबुद्ध लोगों की संख्या विश्व के अन्य भागों की दिशा और गति को प्रभावित करने के लिये बहुत कम है। शीघ्र ही अथवा कुछ बाद में यह लहर अवश्य मुड़ेगी। वास्तविकता यह है कि यह पहले से ही मुड़नी शुरू हो गई है, पर इसकी गति या बदलाव के प्रकट होने में कुछ समय लग सकता है। आज हम इस गति को मुख्यतः सार्वभौमिकता व सौहार्द की आवश्यकता को लगभग विश्वव्यापी मान्यता के रूप में देखते हैं। यह मान्यता पुरुषों और स्त्रियों को धीरे-धीरे कार्य हेतु प्रेरित कर रही है। उनकी बढ़ती संख्या अपनी-अपनी सीमा के भीतर सार्वभौमिकता व सौहार्द के आदर्शों को प्राप्त करने का प्रयास कर रही है। वे कितनी दूर तक सफल रहे हैं, यह स्वाभाविक रूप से उनकी नियुक्ति के तरीकों की दृढ़ता पर निर्भर करता है।

यहीं वेदान्त चित्र रूप में सामने आता है। यह एक जीवन्त दर्शन है, जो हमें अस्तित्वगत वास्तविकताओं का सामना करने के लिये लचीला ढाँचा प्रदान करता है। वेदान्त को स्वीकारने के लिये किसी भी उन परम्पराओं, प्रतीकों अथवा संस्कारों को त्यागने की आवश्यकता नहीं है, जिनके बीच वह पला-बढ़ा है। वेदान्त के द्वारा ही जीवन के हर महत्त्वपूर्ण पहलू को सही स्थान पर निर्दिष्ट करना, समझना है कि आखिर यह जीवन है क्या? हमारा इसमें स्थान क्या है और किस प्रकार हम ब्रह्माण्ड की अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित हैं, आदि सम्भव हुआ है। वेदान्त उस पौधशाला का वह आवश्यक घटक है, जिसमें सार्वभौमिकता और सद्भाव के बीज बढ़ते और पनपते हैं। 'शरीर और मन से परे स्वयं की खोज, जो कि अविनाशी, मुक्त, और आनन्दस्वरूप है' जगत के दार्शनिकत्व के प्रति वेदान्त की देन है।

यदि यह विचार प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन में समाविष्ट हो जाये, तो वह व्यक्ति चाहे जिस भी धार्मिक परम्परा से सम्बन्धित क्यों न हो, सार्वभौमिकता और सौहार्द के आदर्शों को अधिक आसानी से प्राप्त कर सकता है। इसीलिए स्वामीजी ने सर्वत्र वेदान्त का उपदेश दिया था। उनका उद्देश्य लोगों को हिन्दू धर्म में परिवर्तित करना नहीं था। वे प्रत्येक सीमित सत्ता को असीमित सत्ता में परिवर्तित करना चाहते थे। उन्होंने दिखाया कि किस प्रकार व्यक्ति अपने ओछेपन को निकाल फेंककर सार्वभौमिक बन सकता है और साथ ही किस प्रकार से वह अपने जीवन से असामंजस्यता को लुप्त कर एक सामंजस्यपूर्ण व्यक्ति बन सकता है। स्वामीजी ने वेदान्त के प्राचीन सत्यों को एक मुहावरे के रूप में पढ़ाकर उस सार्वभौमिकता व सौहार्द के बीज बोये, जिससे आधुनिक विश्व उसे आसानी से हृदयंगम कर सके। अब यह हमारे ऊपर है कि हम इन बीजों का पोषण करें और सबसे पहले अपने आपको सार्वभौमिकता व सौहार्द का केन्द्र बनायें। जिस सीमा तक हम अपने प्रयास में सफल होंगे, उतनी ही सीमा तक हम विश्व में सार्वभौमिकता एवं सौहार्द फैलाने के योग्य होंगे। आज हमें यही संदेश प्राप्त होता है, जब हम एक सौ पचीस वर्ष पहले आयोजित विश्वधर्म-सम्मेलन की ओर दृष्टि फेरते हैं।

इस दृष्टि से देखने पर विश्वधर्म-सम्मेलन इतिहास में घटित घटना मात्र है। यह मानव जाति के इतिहास में एक नये युग का प्रारंभिक बिन्दु बन जाता है। विश्वधर्म-सम्मेलन को उन बीस सम्मेलनों में से एक माना गया है, जो कि जगत के समक्ष कोलम्बियन व्याख्या (अर्थात् सभ्यता प्रदर्शन) के लिये आयोजित किया गया था। अन्य सम्मेलन तो स्त्रियों की उन्नति, सार्वजनिक प्रेस, दवा एवं शल्य चिकित्सा, आत्मसंयम, वाणिज्य और वित्त, संगीत, शासन एवं कानून आदि विषयों पर थे। किन्तु विश्वधर्म-सम्मेलन ने स्वामी विवेकानन्द के कारण लगभग पूरी प्रसिद्धि को हड़प लिया। उन्होंने विश्वधर्म-सम्मेलन के समक्ष ऐसे धर्म को प्रस्तुत किया, जो जीवन के साथ एक था। स्वामीजी ने जिस धर्म की शिक्षा दी, उसकी व्यापकता में अन्य सभी सम्मेलनों के

विषयों को समायोजित किया जा सकता था। उन्होंने धर्म के परम्परागत मूल को व्यापक किया। अब यह मात्र इतने तक ही सीमित नहीं था कि हमने मन्दिर, गिरिजाघर अथवा मस्जिद में क्या किया अथवा हम किस धार्मिक ग्रन्थ पर विश्वास करते हैं या किस ईश्वर की पूजा करते हैं। उसमें किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

उन्होंने बार-बार इस बात पर बल दिया कि हम वही हैं, जो वास्तव में हम केवल सार्वभौमिक होने पर होते हैं और स्वयं के साथ प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु का सामंजस्य रखते हैं। उन्होंने बताया कि यह सार्वभौमिकता केवल तभी प्राप्त की जा सकती है, जब व्यक्ति अपने हृदय में स्थित देवत्व का अनुभव कर उसे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रगट करे। इस संदेश को प्रसारित करना और आधुनिक विश्व की नसों में इसे भीतर तक प्रवेश करा देना ही कार्य था, जिसके लिये स्वामीजी को महामाई के हाथों यंत्रस्वरूप बनाया गया था। १८९३ में आलासिंगा को लिखे पत्र में स्वामीजी ने लिखा है – "दिन पर दिन मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि ईश्वर मेरे साथ हैं और मैं उनके निर्देशों का पालन करने का प्रयास कर रहा हूँ। उनकी इच्छा पूर्ण हो..."।[३१] स्वामीजी ने माँ के निर्देशों का पूर्णरूपेण अनुसरण किया। माँ ने उन्हें अपना 'दास' बना लिया था। स्वामीजी ने एक बार कहा था – "कैसे मैं माँ काली और तद्विषय सम्बन्धी सभी धारणाओं से घृणा करता था। वह मेरे ६ वर्षों के संघर्ष का कारण था कि मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा, किन्तु अन्त में मुझे स्वीकार करना ही पड़ा। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने मुझे उन्हें सौंप दिया और अब मुझे विश्वास है कि मैं जो भी करता हूँ, उसमें वे मेरा मार्गदर्शन करती हैं और वे मुझसे सब करवाती हैं, जो वे चाहती हैं...।"[३२]

हाँ, वे माँ ही थीं, जिन्होंने स्वामीजी के माध्यम से यह सब किया। यह उनकी ही इच्छा थी कि स्वामीजी विश्वधर्म-सम्मेलन में जायें और वर्तमान युग के असंतुलन को संतुलित करने के लिए आवश्यक सन्देश दें। जब 'माँ' का कार्य पूरा हो गया, तब उस खजाने के खुलने का समय आया, जिसे स्वामीजी ने १८८६ में काशीपुर में एकत्र किया था। ४ जुलाई, १९०२ की सुबह बेलुड़ मठ के मन्दिर में स्वामीजी ने प्रवेश किया, सारे दरवाजे व खिड़कियाँ बंद कर उनमें कुंडी लगाई और एक लम्बा गम्भीर ध्यान लगाकर बैठ गये। वास्तव में वहाँ क्या घटित हुआ, यह कोई कभी नहीं जान सका। एक अनुमान है कि उनके गुरुदेव ने जिस खजाने का ताला बन्द कर दिया था और कुंजी अपने पास रख ली थी, वह कुंजी उन्होंने पुनः वापस दे दी, क्योंकि उनका 'कार्य समाप्त हो चुका था'।

स्वामीजी का कार्य भौतिक शरीर द्वारा वास्तव में पूरा हो चुका था। किन्तु उन्होंने अपना कार्य बंद नहीं किया। स्वामीजी आज भी जीवित हैं। यहाँ उनके अपने शब्दों में — यह हो सकता है कि एक पुराने पहने हुये परिधान की तरह मुझे इस शरीर से अलग होकर अच्छा लगे। पर मैं अपना कार्य बंद नहीं करूँगा! मैं प्रत्येक स्थान पर लोगों को प्रेरित करता रहूँगा, जब तक विश्व यह जान न जाये कि वह ईश्वर के साथ एक है!"[३३] OOO

सन्दर्भ सूत्र –३१.वही, खंड १, पृ. ५२८ ३२. वि.सा. ३३.Life (ii) 661.

मन की एकाग्रता बढ़ाने से नैतिक धरातल पर खतरा है– किसी वस्तु पर मन एकाग्र कर लेना और फिर इच्छानुसार उससे हटा लेने में असमर्थ होना खतरा है। इस अवस्था से बड़ा कष्ट होता है। हमारे प्रायः सभी क्लेशों का कारण हममें अनासक्ति के सामर्थ्य का अभाव है। अतएव मन की एकाग्रता के सामर्थ्य का विकास के साथ-साथ हमें अनासक्ति के सामर्थ्य का विकास अवश्य करना चाहिए। सब ओर से मन को हटाकर किसी एक वस्तु में उसे आसक्त करना ही नहीं, वरन् एक क्षण में उससे अनासक्त कर किसी अन्य वस्तु में स्थापित करना भी हमें अवश्य सीखना चाहिए। इसे निरापद बनाने के लिए इन दोनों का अभ्यास एक साथ बढ़ाना चाहिए। – स्वामी विवेकानन्द

सारगाछी की स्मृतियाँ (८१)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

५-११-१९६१

प्रश्न – हम लोग ये सब जो कर्म करते हैं, क्या वे आध्यात्मिक जीवन के निर्माण में सहायता करते हैं?

महाराज – स्वामीजी ने हमें जो परोपकार करने की शिक्षा दी है, वह हमारी संकीर्ण दृष्टि को कम करने के लिए है। हम लोग आत्मकेन्द्रित हैं, परोपकार करने से दूसरों के सुख-दुखजनित अनुभव का आत्म-प्रसार होगा, इससे देहात्म-भाव कम होता है। देहात्म-भाव कम होते-होते तीव्र परानुभूति होकर सम्भवत: मुक्ति तक हो सकती है, जैसे नफर कुंडू। वास्तव में उस समय वह अपनी बहादुरी से वैसा नहीं था, उसमें देहात्मबुद्धि का लोप हो गया था।

साधु क्या है, उसका लक्ष्य क्या है, ये सब ज्ञात नहीं रहने से साधु का केवल तपस्या का भान और गृहस्थों की तरह तीर्थ-भ्रमण होता है। एक व्यक्ति ने कहा था – उत्तरकाशी में कई शिक्षित साधु हैं। शिक्षित का अर्थ विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त। किन्तु साधु जीवन के साथ इसका कितना मूल्य है? अपितु उलटा ही कहा जा सकता है – विश्वविद्यालय में सांसारिक विषय के बारे में तथ्य जुटाना है और साधु जीवन में आध्यात्मिक क्षेत्र में पढ़ी हुई विद्या की अभिव्यक्ति है। जो तीर्थाटन करके आया है, बात करके देखो, उसकी कितनी उन्नति हुई है ! एक व्यक्ति ने लिखा है – मन शान्त नहीं रहता, अभी भी विषय-भोगों की ओर मन है, आत्मज्ञान की ओर दृष्टि नहीं जाती।

६-११-१९६१

महाराज – हृदय में भाव उमड़ने पर ही नृत्य होता है। ठाकुर का नृत्य – भाव का नृत्य है, मानो मानव-शरीर नहीं है। ठाकुर-स्वामीजी का भजन इतना स्वत:स्फूर्त और प्राणस्पर्शी है, कि सुनने से फिर उसे जीवन भर भूल नहीं सकोगे।

एक व्यक्ति है, जिसे काम-कांचन का मोह नहीं है, किन्तु कोई उच्च चिन्तन नहीं है। अरे, क्या वह ऐसे ही आता है! विज्ञापन देखते-देखते ही तो कहीं जाने की इच्छा होती है। श्रवण-मनन-निदिध्यासन, एक-के-बाद एक अवस्था आती है। किन्तु एक-के-बाद एक अवस्था नहीं होने से विद्या का अहंकार आ जाता है। ठाकुर ने दिखा दिया है – नहीं पढ़ने पर भी किस प्रकार ज्ञान होता है। वे थे क्षर-अक्षर पुरुषोत्तम – पूर्णब्रह्म। इस जगत में सभी कार्य तीन नौकर करते हैं – सत्त्व, रज और तम। वे पूर्णब्रह्म कुछ भी नहीं करते। सभी कहते हैं, बाबू ने तालाब खोदवाया, बाबू ने तालाब बनवाया। किन्तु खोदते तो मजदूर हैं, वे तो केवल आदेशकर्ता हैं। उसी तरह भगवान भी स्वयं कुछ नहीं करते।

१३.११.१९६१

महाराज – देखो, इस भोग-विलास में अत्याचार, दुख-कष्ट नहीं रहता, तो हम उन्हें भूल जाते! हमारे वैराग्य के लिए ही उनकी ये सारी सृष्टि है।

स्वामी चंडिकानन्द – मैंने तो किसी की भी सेवा नहीं की। अखण्डानन्द स्वामी ने ही एक बार रात में मेरे सिर पर पंखे से हवा की थी। तब मुझे बुखार हुआ था। उन्हें अमेरिका जाने के लिए कहने पर उन्होंने एक पत्र लिखा था। उसमें लिखा था – "गाँव का अरवी पौधों का वन मेरा नन्दन वन है, मच्छरों की भनभनाहट किन्नर कंठ है, गाँव के किसान मेरे देव-देवी हैं।" बाबूराम महाराज ने मुझसे कहा, "इन्द्रदयाल (स्वामी प्रेमेशानन्द) तुम्हारे गुरु हैं। उनके आदेश के अनुसार चलना।" उन गुरु को उस समय मैंने बड़ा अंगूठा दिखा दिया था। अब वही बड़ा अंगूठा मेरे गले को छू रहा है।

महाराज – देखो, इस संसार से सहायता-प्राप्ति की आशा करने से ही ठगे जाओगे। माँ की ओर देखते रहो, हम लोगों के हाथ छोड़ देने पर भी, वे नहीं छोड़ती हैं। माँ ने मुझसे तीन बार कहा था, "बाबा, ठाकुर हैं, बाबा, ठाकुर हैं, बाबा, ठाकुर हैं!" मैं तो उसी के भरोसे पड़ा हूँ।

स्वामी चंडिकानन्द – फिर तो मैं भी उसी प्रकार रहूँगा।

महाराज – कठोर साधना की एक मधुरता और शक्ति है। साधु बैठा है, कोई बाहरी ऐश्वर्य नहीं है, किन्तु आन्तरिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण, प्रशान्त है। एक बार देखने से ही आजीवन उसकी स्मृति बनी रहती है। किन्तु साधारण मनुष्य इसे पसन्द नहीं करता। गीता में है –

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

इसे करने के लिए अर्थात् मन को वश में करने के लिए तीन शर्त चाहिए, एक भी कम होने से काम नहीं होगा। १. भोगों को समाप्त करना ही होगा। २. इसके साथ-ही-साथ ईश्वर के प्रति आकर्षण भी होना चाहिए ३. इसके साथ तीक्ष्ण विवेक-विचार भी होना चाहिए। विचार करके विषयों के प्रति उपेक्षाभाव भी लाना होगा।

१९-११-१९६१

प्रश्न – क्या छोटी-छोटी वासनाओं को भोग लेना चाहिए?

महाराज – अनेक जन्मों के संस्कारों को हटाना क्या सहज काम है? इसीलिए बचपन से ही सैन्य-प्रशिक्षण की जरूरत है – गुरुगृह-वास, उपनयन, गायत्री-ध्यान। यह सब अभ्यास करते-करते इस ओर मन की एक सहज प्रवृत्ति हो जाती है। काम-क्रोध-लोभ पर विजय नहीं पाने से शक्ति-संचय नहीं होता तथा उसी शक्ति से निदिध्यासन में बैठने पर तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है, लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

संन्यासी को अपने कितने जन्मों का संस्कार मिटाना होगा। यदि कोई तीक्ष्ण विचार कर सके, तो वह उत्तम है। किन्तु ठाकुर ने कहा है कि छोटी-छोटी इच्छाओं का स्वाद लेकर त्याग कर दो। किन्तु हमें सावधान रहना होगा – कौन इच्छा छोटी है, कौन बड़ी है, इसे समझना चाहिए! सर्वप्रथम, सम्भवत: अनेक साध्य-साधना करके हमें थोड़ा वैराग्य हुआ है, किन्तु भोग की वस्तु सामने देखने से लोभ भी होता है। तब उसे चखने हेतु सक्रिय होने पर पूर्व संस्कार जाग्रत होकर साधक को गिरा देंगे। इसीलिए प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक छोड़ने का अभ्यास करते-करते छोड़कर रहने का अभ्यास ही स्वाभाविक हो जाएगा। विशेषकर, काम, क्रोध और लोभ के विषय के सम्मुख रहने पर किसी भी तरह चखने का साहस मत करना। किन्तु, किसी एक कार्य का चिन्तन या बात, बार-बार सन्ध्या के समय मन में आ जाता है, तो एक बार उसे कर दो। फिर निश्चिन्त हो गए।

सदा कठोर सतर्कता चाहिए जिससे शक्ति की रंचमात्र भी हानि न हो। पश्चिम के साधु कठोरता करते हैं, वे प्राय: विकर्म – विभिन्न प्रकार के कर्म करते हैं, – जिससे आगे नहीं बढ़ पाते। किन्तु यदि मान-यश का उद्देश्य न रहे, तो शायद अच्छा संस्कार होगा। बाद में काम आएगा। **(क्रमशः)**

माँ ! भक्ति, ज्ञान, प्यार दो !

कुसुम वर्मा, दुर्ग

मातृसिन्धु तुम असीम, बिन्दु को सँवार दो।
नेह से पवित्र कर बन्ध से उबार दो।।
प्रेमसिन्धु तुम अमर, पवित्र शान्तिवान हो,
दिव्य ज्ञान सिन्धु तुम, परम गुण निधान हो,
मैं तुम्हें पुकारती, भक्ति-ज्ञान-प्यार दो।।मातृ ...
कर्मबद्ध जीव मैं, जन्म चक्र में बँधी,
पूर्व कर्म बोझ से, विकार ग्रस्त हो फँसी,
जगत-कीच में गिरी, तुम मुझे सँभार लो।।मातृ ..
करुणा की मूर्त रूप, अनन्त सुखस्वरूप तुम,
अन्तर में हर जन के, हर क्षण प्रविष्ट तुम,
मैं तुम्हीं को ताकती, मुझे भी तुम निहार लो।मातृ..
आदिशक्ति रूप तुम सर्वशक्तिमान हो,
जड़-चेतन हर कण में, तुम विद्यमान हो,
मम करुण पुकार सुन, तुम मुझे दुलार दो।।
मातृसिन्धु तुम असीम, बिन्दु को सँवार दो ...

बड़े पुण्य से सत्संग मिलता है

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

अच्छे कर्म का अच्छा फल मिलता है। हमेशा सत्कर्म करते रहो। सत्कर्म से सद्बुद्धि मिलती है, विवेक मिलता है। विवेक से व्यक्ति संसार में बहुत आनन्द से रहता है। यदि हम अपने सम्पूर्ण जीवन का विचार करके देखें, प्रत्येक व्यक्ति के जन्म में उसके पूर्वजन्म का प्रभाव है। पूर्वजन्म में कुछ अच्छा किया था, तभी हम इस जन्म में ऐसा सत्संग कर रहे हैं। आश्रम में रहकर साधु संग हो रहा है। सत्संग, सच्चर्चा हो रही है।

भौतिक वस्तुओं का जितना आवश्यक है, उतना ही उपयोग करो। सन्तुष्ट रहो। संसार की हर इच्छा पूरी नहीं होती, भगवान की इच्छा ही पूर्ण होती है। इसलिये मन को भगवान में लगाओ। अपनी इच्छा को भगवान की इच्छा में मिला दो।

वर्तमान में जीना सीखो। अपने शुभ-अशुभ कर्मों को देखो। उनका नित्य निरीक्षण करो। गलतियों का सुधार करो। पूर्वजन्म में किए गए कृत्यों से हमारे संस्कार बनते हैं। उन विषयों के प्रति बहुत आकर्षण होता है। इसलिए अच्छे कर्म करें, अच्छे संस्कार बनाएँ।

मनुष्य को शारीरिक कष्ट से अधिक मानसिक कष्ट होता है। उसके मन में मान-अपमान, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष आदि के कारण अत्यधिक पीड़ा होती रहती है। इसलिए एकान्त में रहकर अपने मानसिक दोषों का निरीक्षण कर उन्हें दूर करने के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए।

यदि हम अपनी दिनचर्या देखें, तो पाएँगे कि हमारा मन झंझटों से बचना चाहता है, अर्थात् वह संसार से हटना चाहता है, एकान्त में रहना चाहता है। इसलिए एकान्त में रहने की आदत डालनी चाहिए। पशु झुंड में रहना पसन्द करता है। हम पशु नहीं हैं, हम मनुष्य हैं। भगवान ने हमें कृपा करके मनुष्य जन्म दिया है। यदि हम मनुष्य जन्म पाकर भी पशु के समान जीवन यापन करते रहें, तो अगला जन्म पशु का ही मिलेगा। इसलिये भगवान के करुणावश दिए गए मानव जन्म को भगवान की भक्ति कर और उनकी सन्तानों की सेवा कर धन्य करें।

चली जा रही है उमर धीरे-धीरे। हमारी उम्र बढ़ रही। उम्र के साथ-साथ शरीर की सभी इन्द्रियाँ धीरे-धीरे शिथिल होने लगती हैं। मन में उतना उत्साह नहीं रहता। तब भजन-सेवा कैसे होगी? इसलिए स्वस्थ शरीर में अभी से ही भगवान की भक्ति, जप-ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

वृद्धावस्था में हाथ-पैर कमजोर हो जाने से काम नहीं हो पाता। हमारा मन सौ में नब्बे बार बेहोश हो जाता है और साधना सफल नहीं होती। इसलिए अच्छे सद्ग्रंथ पढ़ने की आदत डालनी चाहिए। कभी भी अपने मन को खाली मत रखो। अधिकांश लोग अपने मन के दास रहते हैं। मन बहुत चंचल होता है। मन को भगवान में लगाओ। स्वाध्याय में लगाओ।

जब भी हमें समय मिले, हम भगवान का नाम लेते रहें। इस संसार में एकमात्र भगवान ही हमारे हैं। भले ही हमारी विवशता है, लेकिन भगवान के बिना हमारी कोई अन्य कोई गति नहीं है। सबसे पहले भगवान ही हमारी सहायता करने आएँगे। सभी व्यक्तियों के हृदय में ईश्वर बैठे हैं, तो सबसे प्रेम से बात करो। उनकी सहायता करो। आवश्यकता पड़ने पर उनकी सेवा करो, तब देखना भगवान जल्दी प्रसन्न होंगे।

बिना चित्तशुद्धि के भगवान की अनुभूति नहीं होती। इसलिये चित्तशुद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिए। इसीलिए आध्यात्मिकता की, आध्यात्मिक जीवन की, आध्यात्मिक सत्संग की बहुत आवश्यकता है। संसार में जो कुछ, जब कभी गर्हित कार्य हो गया है, तो पुनः वैसा कार्य न करें और न ही उसका चिन्तन करें। जब भी समय मिले भगवान का नाम जप करें। अपने एक मन से भगवान को सतत पकड़ के रखना है। संसार का विकर्षण बहुत ज्यादा रहता है। शाम को जो समय मिलता है, उसका सदुपयोग करना चाहिए। कुछ देर के लिए अकेले रहने का अभ्यास करना चाहिए। हमारा मन जन्म-जन्मान्तरों से अन्य विषयों में बिखरा हुआ है, उसे समेटकर शान्तिपूर्वक भगवान में लगाना चाहिए। ○○○

विश्वधर्म-सम्मेलन और पाश्चात्य यात्रा हेतु स्वामी विवेकानन्द को प्रेरित करनेवाले व्यक्ति

स्वामी तन्निष्ठानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

अनुवाद- मीनल जोशी, नागपुर

१८९३ ई. के विश्वधर्म-सम्मेलन से स्वामी विवेकानन्द के जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। गैरिक वस्त्रधारी इस संन्यासी की प्रतिभा और चरित्र से विदेशी विद्वान आश्चर्यचकित हो गए। गुरु श्रीरामकृष्णदेव ने स्वामी विवेकानन्द के ऊपर दैवी कार्य का भार सौंपा था। विश्वधर्म-सम्मेलन का यश उनके गुरुदेव के निर्देश की सफलता थी।

जगद्विख्यात स्वामी विवेकानन्द की विश्वधर्म-सम्मेलन तक की यात्रा बहुत रोचक है। श्रीरामकृष्णदेव की महासमाधि के पश्चात् स्वामीजी ने अपने गुरु-भाइयों के साथ संन्यास-व्रत ग्रहण किया। कलकत्ता के वराहनगर के मकान में वे अपने गुरु-भाइयों के साथ तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। बाद में स्वामीजी के मन में दैवी कार्य को समझने की प्रेरणा जागृत हुई, जिसका निर्देश उन्हें श्रीरामकृष्णदेव से मिला था। अत: वे परिव्राजक संन्यासी के रूप में भारत-भ्रमण करने के लिये निकल पड़े।

भ्रमणकाल में स्वामीजी का भारतीय और पाश्चात्य तत्त्वों का प्रगाढ़ ज्ञान, इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन, अनेक भाषाओं पर प्रभुत्व, प्रखर मुग्धकारी वाणी, इन गुणों से राजा-महाराजा, पंडित, विद्वान उनकी ओर आकर्षित हुए। स्वामीजी के बहु-आयामी व्यक्तित्व और चरित्र को देखकर अनेकों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। इन्हीं में से कुछ लोगों ने स्वामीजी को अमेरिका में आयोजित विश्वधर्म-सम्मेलन की जानकारी दी, उन्हें उसमें सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया और शिकागो की यात्रा के लिए उनकी सहायता की। इस लेख में हम इस प्रेरणा और सहायता की रोचक यात्रा का अनुभव करेंगे।

गाजीपुर के जिला न्यायाधीश पेनिंग्टन और उनकी धर्मपत्नी

स्वामीजी ने दक्षिणेश्वर में रहते समय गाजीपुर के पवहारी बाबा का नाम सुना था। उनके दर्शन के लिए स्वामीजी १८९० के जनवरी माह में गाजीपुर गये। गाजीपुर में निवास करते समय स्वामीजी से कई अँग्रेजों की बातचीत हुई। एक दिन अफ़ीम विभाग के उच्च पदाधिकारी रॉस साहब ने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न कर उनसे हिन्दूधर्म के अनेक तत्त्वों को जान लिया एवं होली के सम्बन्ध में उनसे एक लेख लिखने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने उन्हें इस विषय में लेख लिखकर दिया। स्वामीजी की विद्वत्ता से प्रसन्न होकर रॉस साहब ने स्थानीय जिला जज पेनिंग्टन साहब से उनका परिचय करा दिया। उनके साथ हुए वार्तालाप में स्वामीजी ने हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान और आज के विज्ञान से होनेवाले परिवर्तन की गहन मीमांसा की। आधुनिक मनोविज्ञान के आधार पर योगियों की अवधारणा, उनकी प्रेरणा तथा मनोनिग्रह पर तर्कपूर्ण विवेचन किया। स्वामीजी के विवेचन से प्रभावित होकर पेनिंग्टन साहब ने कहा, "आपको हिन्दू धर्म और उसके सामाजिक आचार पर इंग्लैण्ड जाकर विद्वानों के सामने अपने विचार प्रस्तुत करना चाहिए।" पाश्चात्य देश में जाकर हिन्दूधर्म का प्रसार करने का यह प्रथम अनुरोध था। पेनिंग्टन दाम्पत्य की इच्छा थी कि स्वामीजी को उच्च शिक्षा हेतु भी इंग्लैण्ड जाना चाहिए। उसके लिए वे सम्पूर्ण व्यय देने के लिए तैयार थे।

१८९२ के आरम्भ में स्वामीजी गुजरात राज्य के लिमड़ी में पहुँचे। लिमड़ी के राजा ठाकुर साहब जसवंतसिंह से उनका महाबलेश्वर में परिचय हुआ था। स्वामीजी के दर्शन से ठाकुर

साहब बहुत प्रसन्न हुए और स्वामीजी की राजभवन में निवास की व्यवस्था की। ठाकुर साहब ने इंग्लैण्ड, अमेरिका की यात्रा की थी। वे आधुनिक विचारों से परिचित थे। तथापि भारतीय सनातन धर्म का स्वाभिमान था। स्वामीजी के विचार और उनकी प्रस्तुत करने की शैली ने उन्हें सम्मोहित कर लिया। अत: वे स्वामीजी को वहीं रखना चाहते थे। सम्भवत: तभी ठाकुर साहब ने पाश्चात्य देशों में जाने का सुझाव दिया होगा। ठाकुर साहब के गुजराती भाषा में प्रसिद्ध चरित्र में इसका निर्देश है। उसमें लिखा है – वेदान्त प्रसार करने हेतु स्वामीजी को पाश्चात्य देशों में जाना चाहिए, यह सुझाव सर्वप्रथम ठाकुर साहब ने दिया था।

शंकर पाण्डुरंग

स्वामीजी प्रभासतीर्थ से थोड़े ही दिनों बाद जूनागढ़ लौट आए। वहाँ कुछ दिन विश्राम करने के बाद पोरबन्दर पहुँचे। सुदामाजी के मन्दिर का दर्शन किया। जूनागढ़ से ही स्वामीजी को परिचय-पत्र मिला था। अत: पोरबन्दर में उनकी सारी व्यवस्था हो गयी। उन दिनों पोरबन्दर के राजा अल्पवयस्क थे। इसलिए दीवान श्रीयुत शंकर पाण्डुरंग राज्य का संचालन करते थे। पंडित पाण्डुरंगजी प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने स्वयं अथर्ववेद का भाष्य प्रकाशित किया था। दीवानजी उन दिनों वेद का अनुवाद करने में लगे थे। स्वामीजी के पाण्डित्य का परिचय पाकर वे उनकी सहायता लेने लगे। स्वामीजी पंडितजी के साथ संस्कृत में वार्तालाप का अभ्यास कर थोड़े दिनों में ही परिपक्व हो गए। इसके अतिरिक्त स्वामीजी को वहाँ पाणिनि के पातंजल-भाष्य का अध्ययन करने का सुयोग मिला। पाण्डुरंग महोदय के परामर्श पर उन्होंने फारसी तथा फ्रेन्च भाषा का अभ्यास किया।

शंकर पाण्डुरंगजी ने यूरोप के अनेकों देशों की यात्रा की थी। फ्रेंच और जर्मन भाषायें उन्हें ज्ञात थीं। स्वामीजी की मेधा, उदारता और मौलिक विचारधारा का परिचय पाकर पाण्डुरंगजी ने कहा था, "मुझे लगता है कि आप इस देश में कुछ अधिक नहीं कर पाएँगे। बल्कि आपके लिए पश्चिमी देशों में जाना उचित है। वहाँ के लोग आपके विचारों एवं आपके व्यक्तित्व की वास्तविक मर्यादा समझ पाएँगे। सनातन धर्म का प्रचार कर निश्चय ही आप पाश्चात्य संस्कृति को प्रचुर आलोक प्रदान कर सकेंगे।" ये बातें सुनकर स्वामीजी प्रसन्न हुए, क्योंकि स्वयं उनके मन में भी इस प्रकार की परिकल्पना प्रस्फुटित हो रही थी। स्वामीजी ने उनसे कहा, "मैं एक संन्यासी हूँ। मेरी दृष्टि में पूर्व और पश्चिम समान है। समय आने पर मैं पश्चिम (पाश्चात्य देशों में) जाऊँगा।" पाश्चात्य देशों में जाने की उत्सुकता दर्शानेवाला स्वामीजी का यह प्रथम उद्गार है।

१८९२ के जुलाई महीने में स्वामीजी खण्डवा के स्थानीय बंगाली हरिदास चटर्जी के यहाँ आए। खण्डवानिवासी बंगाली समाज के लोग स्वामीजी का शास्त्रज्ञान और अँग्रेजी साहित्य में पाण्डित्य देखकर सहज ही उनकी ओर आकृष्ट हुए। एक दिन एकत्रित लोगों के साथ उन्होंने उपनिषद् पर चर्चा की। उनमें से एक संस्कृतज्ञ वकील ने हरिदास बाबू के कानों से सटकर कहा, "स्वामीजी को देखकर ही लगता है, समय आने पर ये एक विश्वविख्यात व्यक्ति होंगे।" यह बात जब स्वामीजी को बतायी गयी, तब उनके मुखमण्डल पर एक दिव्य ज्योति फैल गई और उन्होंने कहा, "मैं स्वयं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता, लेकिन मेरे गुरुदेव ठीक यही बात दृढ़तापूर्वक कहते थे।"

हरिदास चटर्जी

स्वामीजी ने सुना था कि अगले वर्ष (१८९३ ई.में) शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन का अधिवेशन होगा और विश्व के विविध धर्मों के प्रतिनिधि उसमें भाग लेंगे। इस विषय की चर्चा के क्रम में उन्होंने हरिदास बाबू को एक दिन कहा, "कोई यदि मेरे यातायात का खर्च दे, तो सब ठीक हो जाएगा

और मैं जाने को तैयार हूँ।'' विश्वधर्म-सम्मेलन में जाने की सहमति दर्शानेवाला स्वामीजी का यह प्रथम उद्गार है।

हरिदास बाबू के मित्र मुम्बई में रहते थे। वे बैरिस्टर रामदास छबिलदास से स्वामीजी का परिचय करा देंगे और उनकी सहायता से स्वामीजी का विश्वधर्म-सम्मेलन में जाने का मार्ग सुलभ होगा, ऐसा हरिदास बाबू को लगता था। उन्होंने स्वामीजी को पत्र देकर मुम्बई का टिकट निकालकर दिया। स्वामीजी मुम्बई में दो महीने थे। छबिलदासजी आर्यसमाजी थे। उन्हें उनका अवतार-कल्पना, साकार ईश्वर पर विश्वास न था। उन्होंने स्वामीजी से कहा, ''इन कल्पनाओं को वेदों का आधार नहीं है। यदि आपने खोजकर दिखा दिया, तो मैं आर्य समाज छोड़ दूँगा।'' आश्चर्य की बात यह है कि स्वामीजी ने वेदों के आधार पर अवतार तथा साकार ईश्वर को प्रमाणित किया। और छबिलदास जी ने आर्यसमाज का त्याग कर दिया। किन्तु स्वामीजी की विश्वधर्म-सम्मेलन में जाने के लिये शिकागो की यात्रा में छबिलदासजी ने कुछ विशेष प्रयास किया, ऐसा नहीं लगता।

कोल्हापुर से बेलगाँव आकर स्वामीजी हरिपद मित्र के घर नौ दिन ठहरे थे। हरिपद बाबू वन विभाग में सबडिविजनल ऑफिसर थे। उन्होंने लिखा था, ''बेलगाँव १८ अक्तूबर, १८९२ मंगलवार। सन्ध्या हुए लगभग दो घंटे हुए हैं। एक स्थूलकाय प्रसन्नमुख युवा संन्यासी मेरे एक परिचित महाराष्ट्रीय वकील के साथ मेरे घर पधारे। मेरे वकील मित्र ने कहा, ''ये एक विद्वान बंगाली संन्यासी हैं, आपसे मिलने आए हैं।'' घूमकर देखा – प्रशान्त मूर्ति, नेत्रों से मानो विद्युत-प्रकाश निकल रहा हो, दाढ़ी– मूँछ मुड़ी हुई, शरीर पर गेरुआ अँगरखा, पैर में कोल्हापुरी चप्पल, सिर पर गेरुआ पगड़ी। संन्यासी की उस भव्य मूर्ति का स्मरण होने पर अभी भी जैसे, उनको अपनी आँखों के सामने देखता हूँ। कुछ देर बाद प्रणाम कर पूछा, ''महाशय, क्या आप तम्बाकू का सेवन करते हैं? मैं कायस्थ हूँ। मेरे पास दूसरा कोई हुक्का नहीं है। आपको यदि मेरे हुक्के में तम्बाकू पीने में कोई आपत्ति न हो, तो तम्बाकू तैयार करने को कहूँ।' उन्होंने कहा, 'तम्बाकू, चुरुट, जब जो मिलता है, उसका सेवन करता हूँ और आपके हुक्के से पीने में कोई आपत्ति नहीं है।' तम्बाकू सजाकर मैंने दिया।

एक दिन स्वामीजी ने कहा, ''कुछ दिन तुम्हारे साथ जंगल में तम्बू डालकर रहने की मेरी इच्छा है। किन्तु शिकागो में विश्वधर्म-सम्मेलन होगा, यदि वहाँ जाने की सुविधा हुई, तो वहीं जाऊँगा।'' हरिपद बाबू ने आनन्द व्यक्त कर तुरन्त चन्दा इकट्ठा करने का प्रस्ताव रखा। किन्तु स्वामीजी ने कहा, नहीं ! अभी नहीं ! पहले मुझे रामेश्वर जाना है, क्योंकि मैंने वैसा संकल्प किया है।''

स्वामीजी बेलगाँव से गोवा, धारवाड़, बंगलोर मार्ग से ७ नवम्बर, १८९२ को मैसूर पहुँचे। मैसूर के महाराजा चामराजेन्द्र वडियार से स्वामीजी का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। एक दिन महाराजा, दीवानजी और स्वामीजी ही कमरे में थे। महाराजा ने पूछा, ''स्वामीजी मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?'' स्वामीजी प्रत्यक्ष उत्तर न देते हुए ज्वलन्त शब्दों में अपने जीवन के उद्देश्य की बात बोलने लगे। उन्होंने भारत की तत्कालीन अवस्था के प्रति ध्यान खींचकर कहा, युग-प्रयोजन के अनुरूप उन्हें पाश्चात्य विज्ञान का अर्जन एवं सामूहिक समाज सुधार की दिशा में शीघ्र तत्पर होना होगा। भारत को आज इसके विनिमय के द्वारा अपनी विशेष सम्पदा को विश्वमानव के कल्याण के लिए वितरित कर देना होगा। उपयुक्त सुयोग पाने पर वे स्वयं अमेरिका जाकर वेदान्त का प्रचार करेंगे। महाराजा ने तत्क्षण प्रतिज्ञा की कि वे समुचित सहायता करने को तैयार हैं, किन्तु कुछ सोचकर स्वामीजी तत्काल धन-ग्रहण करने को सहमत नहीं हुए।

चामराजेन्द्र वडियार

मैसूर से स्वामीजी त्रिशुर और त्रिवेन्द्रम् गए। वे दिसम्बर, १८९२ में कन्याकुमारी पहुँचे। देवी कुमारी का दर्शन कर समुद्र तट पर गए। तैरते हुए दूरवर्ती समुद्र में स्थित शिलामय द्वीप पर पहुँचे। जगन्माता के चरणचिन्ह से शोभित उस शिला पर उन्होंने तीन दिन और तीन रात तक ध्यान किया। उनके ध्यान का विषय था – अनेक धर्मों की जन्मभूमि और मिलनस्थल पुण्यतीर्थ भारतवर्ष, भारत का गौरवमय अध्यात्म–महिमोज्ज्वल अतीत, दुःख–दरिद्रता, हतवीर्य, गौरवहीन, अध्यात्मसम्पदाहीन वर्तमान

एवं तिमिराच्छन्न अनिश्चित भविष्य! उनके चित्त में वाणी ध्वनित हुई, "जिस प्रगाढ़ आध्यात्मिक अनुभूति के प्रभाव से भारतवर्ष एक दिन विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न धर्मों की जन्मभूमि और मिलन–स्थल में परिणत हुआ था, एकमात्र उसी अनुभूति के बल पर पुनरुत्थान और पुन:प्रतिष्ठा सम्भव है।" जनसाधारण की उन्नति के उपाय के बारे में उन्होंने विचार किया। परवर्तीकाल के पत्र में उन्होंने लिखा, "देश की दरिद्रता और अज्ञता देखकर–मुझे नींद नहीं आती। मैंने एक योजना सोची तथा उसे कार्यान्वित करने का दृढ़ संकल्प लिया। कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारत की अन्तिम चट्टान पर बैठकर, मैंने सोचा कि हम जो इतने संन्यासी घूमते–फिरते हैं और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निराला पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव नहीं कहा करते थे कि खाली पेट धर्म नहीं होता। वे गरीब, जो पशुओं जैसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उसका कारण अज्ञान है। दुष्टों ने युग–युग से उनका खून चूसकर पीया है और उन्हें पैरों से कुचला है। .... भारतवर्ष के लोग भला धन देंगे !!! ... इसीलिए मैं अमेरिका आया हूँ; स्वयं धन कमाऊँगा, और तब देश लौटकर अपने जीवन के इस एकमात्र ध्येय की सिद्धि के लिए अपना शेष जीवन निछावर कर दूँगा।"(विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-२, पृ. ३३८)

भास्कर सेतुपति

शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होकर पाश्चात्यों को भारत की आध्यात्मिक संस्कृति के तत्त्वों का प्रचार करने तथा वहाँ से धन इकट्ठा कर भारत में पद-दलितों की सेवा करने का संकल्प कर स्वामीजी २७ दिसम्बर, १८९२ को कन्याकुमारी से निकले। २८ दिसम्बर, १८९२ को स्वामीजी रामनाद पहुँचे। राजा भास्कर सेतुपति विद्वान, उच्च शिक्षित और धार्मिक थे। शिक्षा और कृषि कार्यों में सुधार के विषय में दोनों में चर्चा हुई। राजा ने स्वामीजी का शिष्यत्व ग्रहण किया। राजा ने स्वामीजी से शिकागो धर्मपरिषद में जाने का आग्रह किया और यात्रा हेतु यथासाध्य आर्थिक सहायता करने का भी आश्वासन दिया। किन्तु स्वामीजी उस समय रामेश्वर दर्शन के लिए व्यग्र थे, अतएव राजा से विदा लेकर रामेश्वर के लिए चल पड़े।

परवर्तीकाल में आलासिंगा पेरुमल ने रामनाद के राजा को आर्थिक सहायता की अपेक्षा से पत्र लिखा। उत्तर में राजा ने लिखा, "वे एक पैसा भी नहीं दे सकते तथा स्वामीजी को हिन्दूधर्म का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं है।" अनुमान है कि राजा ने राजकीय परिणामों से घबराकर ऐसा लिखा हो, किन्तु इससे स्वामीजी को गहरा धक्का लगा।

रामेश्वर से पाण्डिचेरी जाकर ७ जनवरी, १८९३ को स्वामीजी मद्रास पहुँचे। वहाँ उनसे मिलने मंडयाम चक्रवर्ती, आलासिंगा पेरुमल, जी. व्यंकरंगा राव आदि युवक आने लगे। मद्रास में स्वामीजी तीन सप्ताह ठहरे। इस बीच उन्होंने कितनी बार कहा कि वे सनातन धर्म के प्रचारार्थ पश्चिमी देश जाने को प्रस्तुत हैं। स्वामीजी का अभिप्राय जानकर उत्साही भक्तगणों, आलासिंगा और मित्रों ने घर–घर जाकर चंदा इकट्ठा किया। वे प्राय: पाँच सौ रुपये एकत्र कर ले आये। किन्तु इतनी छोटी धनराशि में अमेरिका जाना असम्भव था। स्वामीजी के मन में संदेह हुआ कि संभवत: भगवान की इच्छा न हो। स्वामीजी ने कहा, "मैं माँ की इच्छा उनसे जानने के लिए कटिबद्ध हूँ। माँ को प्रमाण देना होगा कि यह उन्हीं की इच्छा है। यदि उनकी इच्छा हो, तो धन अपने आप आ जाएगा। अत: ये रुपये ले जाओ और गरीबों में बाँट दो।" शिष्य उनका आदेश सुनकर विस्मित हो गए, किन्तु उनका आदेश पालन किया।

११ फरवरी, १८९३ को स्वामीजी मद्रास से हैदराबाद पहुँचे। वहाँ उन्होंने १३ फरवरी को एक हजार श्रोताओं के सामने 'पाश्चात्य देशों में जाने का मेरा उद्देश्य' इस विषय पर व्याख्यान दिया। स्वामीजी के व्याख्यान से श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो गए। हैदराबाद के महाराजा के साले नवाब बहादुर सर खुर्शीदजाह ने स्वामीजी को राजप्रासाद में आमंत्रित किया। नवाब खुर्शीदजाह धर्म के सम्बन्ध में अत्यन्त उदार विचार के थे तथा वे हिमालय से कन्याकुमारी तक हिन्दुओं के सभी प्रमुख तीर्थों का श्रद्धापूर्ण हृदय से दर्शन कर आए थे। उन लोगों में दो घण्टों तक हुई बातचीत के क्रम में स्वामीजी ने हिन्दू, ईसाई और इस्लाम धर्मों के सारतत्त्व के सम्बन्ध में सारगर्भित चर्चा की। साकार–उपासना विरोधी नवाब

को उन्होंने ईश्वर के सगुण और साकार रूप की सार्थकता प्रतिपादित की तथा वेदान्त–मत व्यक्ति–निरपेक्ष तथ्य पर निर्भर करता है और उसी की नींव पर वह विश्वधर्म होने का दावा करता है। इस तत्त्व को समझाया। स्वामीजी ने अपना मत बताते हुए कहा, "सभी आदर्श सत्य हैं और विभिन्न धर्म उन्हीं आदर्शों की प्राप्ति के विलक्षण उपायों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इनमें से किसी एक मार्ग का तीव्रता से अनुसरण करने पर मनुष्य में अन्तर्निहित देवत्व की निश्चय ही अभिव्यक्ति होगी।" अन्त में उन्होंने पाश्चात्य देश जाकर सनातन सार्वजनीन धर्म के प्रचार की अभिलाषा व्यक्त की।

नवाब बहादुर ने स्वामीजी की वाग्मिता और कथनों से मुग्ध होकर कहा, "स्वामीजी, मैं आपके इस प्रयत्न के लिए एक हजार रुपये देने को तैयार हूँ।" किन्तु स्वामीजी ने तत्काल वह धन लेना स्वीकार नहीं किया और कहा कि जब वे सचमुच ही यात्रा के लिए प्रस्तुत होंगे, तब उसे ले लेंगे।

२८ फरवरी १८९३ को स्वामीजी हैदराबाद से मद्रास आये। भक्तगणों ने अमेरिका जाने के लिए धन-संग्रह करने की इच्छा प्रकट की। तब स्वामीजी ने अनुमति देते हुए कहा, "यदि माँ की इच्छा होगी कि मुझे जाना होगा, तो मेरे लिए आवश्यक धन गरीबों से आए, क्योंकि मैं तो भारतीय जनता के लिए ही, भारतीय जनता और दरिद्रों के लिए ही विदेश जा रहा हूँ।" स्वामीजी ने अपने शिष्यों के पूर्ण प्रयत्न और किंचित् सफलता का परिचय पाया। उन्होंने सोचा, "इन लोगों की तत्परता ही सम्भवत: माँ की इच्छा का प्रथम संकेत है।" वे स्पष्ट रूप से ईश्वर–निर्देश की अपेक्षा करते रहे और जगन्माता एवं श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करते रहे।

कई दिनों के बाद वे अर्धनिद्रित अवस्था में बिस्तर पर लेटे हैं, उसी समय सामने फैले हुए विशाल महासागर के इस किनारे से श्रीरामकृष्ण समुद्र में अवतरण कर पैदल दूसरे किनारे की ओर चले जा रहे हैं। तथा उन्हें भी आगे बढ़ने के लिए संकेत कर रहे हैं। उस अलौकिक दर्शन को उन्होंने ईश्वर–निर्देश के रूप में ही ग्रहण किया। उनकी शंका और अनिश्चितता दूर हो गई।

उन्हें परिव्राजक जीवन आरम्भ करते समय श्रीमाँ सारदादेवी के आशीर्वाद प्राप्त हुए थे। उसी प्रकार सुदूर यात्रा करने के पूर्व उनका आशीर्वाद प्राप्त करने की इच्छा से स्वामीजी ने श्रीमाँ को पत्र लिखा और विश्वधर्म-सम्मेलन में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। पत्र पाकर श्रीमाँ के मन में सुख-दुखमिश्रित भावों का द्वन्द्व उपस्थित हो गया। स्नेहपात्र सुपुत्र का समाचार बहुत दिनों बाद प्राप्त हुआ था। किन्तु नरेन्द्र तो सुदूर जाने को व्यग्र है ! क्या होगा, कब लौटेगा? ऐसी बातें सोचकर पहली प्रतिक्रिया हुई – "नहीं।" परन्तु नरेन्द्र के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की भविष्यवाणी का स्मरण कर, इस विदेश–यात्रा में एक विराट सम्भावना का आभास पाकर तथा नरेन्द्र का अपना आग्रह देखकर उन्होंने अपनी व्यक्तिगत भय–भावना, दु:ख–विषाद आदि भूलकर आशीर्वादपूर्ण एवं मातृसुलभ उपदेशयुक्त एक सुन्दर पत्र प्रेषित किया। पत्र पाकर स्वामीजी आनन्द से उत्फुल्ल हो उठे।

आलासिंगा पेरुमल के नेतृत्व में भक्तों ने मैसूर, बंगलोर, हैदराबाद आदि स्थानों पर जाकर धनसंग्रह किया। मैसूर के राजा ने बड़ी दानराशि दी। मन्मथनाथ भट्टाचार्य ने पाँच सौ रुपये दिये। सरकारी कर्मचारियों को रुपये देते देखकर रामनाद के राजा ने केवल पाँच सौ रुपये भेज दिये। आलासिंगा पेरुमल की धर्मपत्नी ने अपने गहने बेचकर

आलासिंगा पेरुमल और उनकी धर्मपत्नी रंगाम्मा

स्वामीजी की यात्रा के लिए धन दिया। इस प्रकार सम्भवत: चार हजार रुपये इकट्ठा हुए।

यात्रा के सारे आयोजन प्राय: पूरे हो रहे थे। अकस्मात् खेतड़ी नरेश राजा अजित सिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी मुंशी जगमोहन लाल मद्रास में उपस्थित हुए। स्वामीजी के आशीर्वाद से राजा को पुत्रप्राप्ति हुई थी। राजा ने एक उत्सव का आयोजन किया था। इस अवसर पर अपने गुरुदेव की उपस्थिति के लिए स्वामीजी को निमंत्रित करने

अजित सिंह और उनके पुत्र जय सिंह

हेतु जगमोहनजी को भेजा था। जगमोहन के अपना अभिप्राय व्यक्त करने पर स्वामीजी ने कहा, "देखो जगमोहन, मैं ३१ मई को अमेरिका जाने के लिए तैयारी कर रहा हूँ, इस समय मैं महाराजा से मिलने कैसे जाऊँगा?" फिर भी जगमोहन ने हठ करते हुए कहा, "स्वामीजी कम-से-कम एक दिन के लिए भी आपको अवश्य खेतड़ी आना होगा। आपके नहीं आने से राजाजी निराश हो जाएँगे। पश्चिमी देश में जाने के निमित्त तैयारी को लेकर आप उद्विग्न मत होईये, महाराजा स्वयं सारी व्यवस्था कर देंगे। परन्तु आपको आना ही होगा।" अन्ततोगत्वा स्वामीजी ने सहमति प्रदान कर दी। स्वामीजी २१ अप्रैल, १८९३ को खेतड़ी पहुँचे। महोत्सव में सम्मिलित हुए। राजा को बहुत आनन्द हुआ। राजा ने स्वामीजी के विदेश गमन के लिए धन दिया था, यह शोध का विषय है। किन्तु मुंशी जगमोहन लाल ने राजगुरु के नाते रेशमी कपड़े की पोशाक–अलखल्ला और पगड़ी बनवा दी तथा द्वितीय श्रेणी का टिकट बदलकर प्रथम श्रेणी कर दिया।

३१ मई, १८९३ को स्वामीजी मुंशीजी के साथ मुम्बई पहुँचे। 'पेनिनसुलर' नामक जहाज पर चढ़े। भक्तों ने समुद्र तट पर साष्टांग प्रणाम करते हुए विदाई दी। स्वामीजी भी रेलिंग के किनारे खड़े होकर जब तक देखा जा सकता था, तब तक उन लोगों की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखते रहे। यहाँ से उनके जीवन में एक नया पर्व शुरू हुआ।

मुंशी जगमोहन लाल

१४ जुलाई, १८९३ को स्वामीजी जापान के याकोहामा शहर से निकले। वे 'एम्प्रेस ऑफ इंडिया' जहाज पर चढ़े। एशिया के भू-भाग को पीछे छोड़ते हुए उनकी यात्रा शुरू हुई। प्रशान्त महासागर से यात्रा करते हुए उन्हें बहुत कष्ट हुआ। क्योंकि ठंड से बचने के लिये उनके पास ऊनी कपड़े नहीं थे।

२५ जुलाई शाम को स्वामीजी दक्षिण कनाडा के वैंकुअर पहुँचे। इस छोटे से गाँव में रात बीताकर दूसरे दिन वे रेल से शिकागो के लिये रवाना हुए। बीच में 'विनोपेग' स्थान पर उन्हें गाड़ी बदलनी पड़ी। यहाँ से वे अमेरिका में प्रवेश किए।

स्वामीजी जिस रेल से यात्रा कर रहे थे, उसमें शिकागो जानेवाले भिन्न-भिन्न देशों के यात्री थे। उनमें एक थी कॉथरिन अथवा केट सेनबोर्न। लगभग पचास वर्ष से थोड़े अधिक उम्र की यह महिला अमेरिका के पूर्व भाग के मैसच्युसेट्स राज्य के मेटकाफ में रहती थीं। उन्होंने स्मिथ कॉलेज में ललित वाङ्मय का अध्यापन किया था तथा कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं। अपनी वक्तृता के कारण वे काफी लोकप्रिय थीं। लेखकों, चिन्तकों आदि को वे अपने घर आमंत्रित करती थीं। उनसे वार्तालाप करना केट सेनबॉर्न का शौक था। रेलयात्रा में स्वामीजी का उनके साथ परिचय हुआ।सेनबॉर्न ने स्वामीजी को अपने घर आमंत्रित किया।

स्वामीजी को सेंट पॉल स्थान पर फिर गाड़ी बदलनी पड़ी। ३० जुलाई को रात ११ बजे स्वामीजी शिकागो पहुँचे। रेलगाड़ी से उतरने के बाद कहाँ जाना है, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वे विदेश में अकेलापन का अनुभव करने लगे। नयी जगह कोई खतरा मोल लेना उचित नहीं। यह सोचकर स्वामीजी ने एक अच्छे हॉटल में निवास किया। स्वामीजी को वहाँ पहुँचने पर पता चला कि विश्वधर्म-सम्मेलन आरम्भ होने में पाँच महीने बाकी हैं। उसमें भाग लेने के लिए किसी संस्था का प्रतिनिधि के रूप में अधिकृत प्रमाण पत्र अनिवार्य है। इतना ही नहीं, प्रतिनिधि के रूप में आवेदन करने की अन्तिम तिथि भी बीत गई थी।

इतनी लम्बी यात्रा कर वे शिकागो पहुँचे थे। किन्तु उनके लिए सारे दरवाजे बंद हो चुके थे। वस्तुस्थिति जानकर स्वामीजी का मन निराशा से भर गया। उनके शिष्यों, हितचिंतकों के परिश्रम पर पानी फिर गया। इसके अलावा स्वामीजी के सामने पैसे का बहुत बड़ा प्रश्न था। अमेरिका में बहुत महँगाई थी। उनके पैसे समाप्त होने लगे। ठंडी से बचने के लिए कपड़े खरीदने के लिए भी सौ डॉलर की जरुरत थी। निराश मन से स्वामीजी ने आलासिंगा को तार

भेजा "starving All money spent send Money to retrun at least" – भूखा रहना पड़ रहा है। सारे पैसे समाप्त हो गये। वापस आने के लिये कम-से-कम कुछ पैसे भेजो। यह तार मद्रास में आलासिंगा को मिलने के बाद उन्होंने तुरन्त भाग दौड़कर दान-राशि इकट्ठी की और तीन सौ रुपये भेज दिए। श्री मन्मथनाथ भट्टाचार्य को भी पता चलने बाद उन्होंने पाँच सौ रुपये भेज दिये। स्वामीजी को ये पैसे सात सितम्बर को मिले।

शिकागो में १२ दिन रहने के बाद स्वामीजी ने बोस्टन जाने का निर्णय लिया। क्योंकि बोस्टन शिकागो शहर से सस्ता था। केट सेनबॉर्न भी इसी प्रदेश में रहती हैं, ऐसा उनके दिये हुए पते से स्वामीजी को पता चला। इसलिए स्वामीजी शिकागो से रेलयात्रा कर बॉस्टन पहुँचे और ब्रॅटल स्ट्रीट के क्वीसी हाऊस नामक विश्राम गृह में रहने लगे। वहाँ से उन्होंने सॉनबोर्न को अपने बोस्टन पहुँचने की तार भेजी। सैनबोर्न ने तत्काल तार भेजा – 'दोपहर की गाड़ी से चले आइए।'

स्वामीजी दोपहर सवा चार बजे के बाद की गाड़ी से वहाँ से निकले। बोस्टन से चालीस किलोमीटर दूर गूसव्हिल रेलवे स्टेशन था। वहाँ वे शाम को पहुँचे। सेनबोर्न स्वामीजी को लेने वहाँ आयी थीं। वह स्वामीजी को लेकर मेटकॉफ के पास खेत में स्थित ब्रीजी मेडोज नाम के अपने निवास स्थान ले गयीं। सेनबोर्न को भय था कि स्वामीजी की वेषभूषा, पहनावा देखकर रेलवे स्टेशन पर खलबली मच जाएगी। किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। यात्री केवल विस्मित होकर नि:स्तब्धता से उन्हें देखते रह गये।

ब्रीजी मेडोज में स्वामीजी के कई विषयों पर व्याख्यान हुए। प्रो. जॉन हेनरी राइट ने स्वामीजी के विषय में बहुत ख्याति सुनी थी। अत: वे उनसे मिलना चाहते थे। बोस्टन में स्वामीजी से मुलाकात करने का प्रो. राइट ने बहुत प्रयास किया। किन्तु भेंट नहीं हो सकी। प्रो. राइट ने स्वामीजी को ॲनिस्वॅचम में, जहाँ वे अपने परिवार के साथ छुट्टी मना रहे थे, शनिवार-रविवार को अपने यहाँ रहने का निमंत्रण दिया।

स्वामीजी २५ अगस्त को बोस्टन से साठ किलोमीटर दूर ॲनिस्वॅचम पहुँचे। प्रो. राइट का निवास स्थान छोटा था। इसलिए उनके रहने की व्यवस्था मिस लेन के यात्री निवास में की गई। ॲनिस्वॅचम में स्वामीजी की प्रो. राइट तथा उनके अतिथि अभ्यागत मित्रों से दीर्घ और गंभीर चर्चाएँ हुई। स्वामीजी की विद्वत्ता, तथा व्यक्तित्व से प्रो. राइट प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामीजी को समझा दिया कि अमेरिकी जनता के समक्ष आत्मपरिचय देने के लिए विश्वधर्म-सम्मेलन ही उपयुक्त स्थान है, "इस विराट जाति से परिचित होने का आपके लिए यही अवसर है।" स्वामीजी ने स्पष्ट रूप से अपनी असुविधाओं की बात कही – परिचय पत्र का न होना, धन का अभाव आदि। यह सुनकर प्रो. राइट ने कहा, "आपसे परिचय–पत्र की माँग करना वैसा ही है मानो सूर्य से पूछना कि उसे प्रकाश फैलाने का अधिकार किसने दिया है।" उन्होंने प्रतिनिधि निर्वाचन समिति के सचिव के नाम अपने पत्र में लिखा, "ये इतने बड़े विद्वान हैं कि हमारे समस्त प्राध्यापक एकत्र होकर भी इनकी बराबरी नहीं कर सकेंगे।" प्रो. राइट ने शिकागो तक का एक रेल टिकट खरीद दिया और प्राच्य प्रतिनिधियों के निवास आदि की व्यवस्था करने-वाली कमेटी के नाम भी एक पत्र लिखा। ईश्वरेच्छा से सारी व्यवस्था हो जाने पर स्वामीजी सानन्द और निश्चिन्त मन से शिकागो की ओर प्रस्थान किए।

प्रो. जॉन हेनरी राइट

९ सितम्बर को शाम को ट्रेन शिकागो स्टेशन पर पहुँची। स्वामीजी गाड़ी से उतरे। वे विश्वधर्म-सम्मेलन के जनरल कमेटी के सभापति डॉ. बैरोज का पता पूछने के लिए अपनी जेब से चिट्ठी निकालने लगे। स्वामीजी को पता चला कि बैरोज महाशय का पता खो चुका है। उन्होंने पथिकों से पूछा, परन्तु जर्मन बहुल प्रदेश के लोगों को उनका प्रश्न समझ में नहीं आया। रात होने लगी, किन्तु उनको किसी होटल की जानकारी तक नहीं मिली। अन्त में उन्होंने रेलवे के मालगोदाम के पास एक खाली मालगाड़ी के डब्बा में आश्रय लिया। भगवान पर निर्भर हो वे निद्रामग्न हो गये।

अगले दिन नींद टूटने पर वे 'लेवशोर ड्राइव' के

किनारे से राजपथ पर चलने लगे। वे उस समय भूख से परेशान थे। अत: संन्यासी के समान द्वार–द्वार पर अन्न और विश्वधर्म-सम्मेलन के कार्यालय का पता जानने के लिए भटकने लगे। उनके गन्दे कपड़े, सांवला वर्ण तथा थका हुआ शरीर देखकर अनेकों ने उन्हें निर्ममतापूर्वक भगा दिया और कहीं-कहीं नौकरों ने उनकी हँसी उड़ाते हुए द्वार बन्द कर लिये। अन्त में थककर और हताश होकर वे सड़क के किनारे बैठ गये और भगवान के निर्देश की प्रतीक्षा करने लगे।

उसी समय सामने के एक धनाढ्य गृह का द्वार खुला। मिसेस जार्ज डब्ल्यू. हेल घर से बाहर आईं। स्वामीजी के निकट जाकर उन्होंने मृदु स्वर में विनम्रता से स्वामीजी से पूछा, 'महाशय, क्या आप विश्वधर्म-सम्मेलन के प्रतिनिधि हैं?' स्वामीजी ने अपनी समस्या बताई। मिसेज हेल उन्हें अपने घर ले गईं। जलपान और विश्राम के बाद वे स्वामीजी को लेकर महासभा के कार्यालय पहुँची। वहाँ प्रो. राइट का परिचय–पत्र दिखाने के बाद स्वामीजी प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृत हुए। परवर्ती काल में स्वामीजी का हेल परिवार के साथ अत्यन्त आत्मीय का सम्बन्ध रहा। स्वामीजी की निवास व्यवस्था श्रीयुत जे.बी. ल्योन के घर हुई। ल्योन पति-पत्नी उदार विचार और अतिथिसेवी थे। उन्होंने स्वामीजी के निवास की उत्तम व्यवस्था की।

११ सितम्बर, १८९३ ई. को सोमवार के दिन प्रात:काल शिकागो आर्ट इन्स्टीट्यूट में विश्वधर्म-सम्मेलन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। अपराह्न में स्वामीजी का विश्वप्रसिद्ध व्याख्यान हुआ। डॉ. बैरोज ने लिखा था, ''श्रीयुत विवेकानन्द ने जब श्रोताओं को 'बहनो और भाइयो' कहकर सम्बोधित किया था, तो उस समय तुमुल करतलध्वनि कई मिनट तक बजती रही।'' स्वामीजी के शब्दों ने सभी में आत्मिक एकता का बोध जाग्रत किया था।

यही आत्मिक एकता विश्व के सारे मानवों में जाग्रत करने हेतु हम स्वामीजी के उस भाषण की सार्धशताब्दी मना रहे हैं। स्वामीजी के विचार हम सभी को विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा देंगे। हम इस लेख द्वारा उन महनीय व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उन्हें अभिवादन करते हैं, जिन्होंने स्वामीजी को विश्वधर्म सम्मेलन में सहभागी होने के लिए सहायता की।○○○

प्रेरक लघुकथा

कबीर कुसंग न कीजिए, कबहुँ न होय कल्याण

शरत चन्द्र पेंढारकर

महात्मा गाँधी को बचपन में सब मोहन कहकर पुकारते थे। बुरी संगति में पड़ने से उन्हें चोरी की लत लग गई। उनके कुछ मित्र घर से पैसे चुराकर अपने मित्र मोहन को भी फल-मिठाई आदि देने लगे। उनकी देखा-देखी बालक मोहन भी पिता करमचंदजी के कोट की जेब से पैसे निकालकर मित्रों को खिलाने लगा। पिता को जेब में दो-तीन बार पैसे कम दिखाई देने पर उन्होंने कोट में पैसे रखना बन्द किया। तब मोहन दोस्तों से पैसे उधार लेने लगा। पैसे मिलने का मार्ग बंद हो जाने से उधार की रकम बढ़ने लगी। पैसे लौटाने की उसे चिन्ता सताने लगी। उसे एक उपाय सूझा उसने सुनार से अपने हाथ के सोने का कड़ा छोटा करवाया और उधार ली हुई रकम चुका दी। लेकिन रात को उसे नींद नहीं आई। उसका कोमल मन उसे अपराधी मान रहा था। पश्चात्तापदग्ध हृदय पिताजी को सारी बात बताने के लिए उकसाने लगा। लेकिन प्रत्यक्ष रूप से बताने का साहस वह जुटा नहीं पा रहे थे। अन्त में उसने पत्र में सारी बात लिखकर उसे क्षमा करने की विनती की। पत्र पढ़ते ही करमचंद जी क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गए। पुत्र के अपराध-बोध से उन्हें प्रसन्नता हुई। साश्रुनयन उन्होंने पुत्र को क्षमा कर दिया। बालक मोहन ने भविष्य में ऐसी कोई गलती न करने का वचन दिया, जिसे उसने जीवन भर निभाया।

अपने बच्चों को कुसंग से बचाने के लिये अभिभावकों को चाहिए कि वे उन पर निगरानी रखें और देखें कि उनके बालक मित्र, अध्यापक, सेवक अथवा जिनके भी ज्यादा सम्पर्क अथवा सान्निध्य में वे रहते हैं, उनका स्वभाव व चाल-चलन कैसा है। किशोरावस्था में बच्चों पर कुप्रभाव जल्दी पड़ता है। पश्चात्ताप बालकों को सन्मार्ग पर जाने को प्रेरित करता है। ○○○

भैंसा ने मन्त्र उच्चारित किया

स्वामी पद्माक्षानन्द

महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिला में गोदावरी नदी के उत्तर किनारे पर पैठण के पास आपेगाँव में एक धार्मिक दम्पती रहते थे। उनका नाम था श्रीविट्ठलपंत और उनकी पत्नी श्रीमती रखुमाबाई। वे दोनों ईश्वर की आराधना में तल्लीन रहते थे। विट्ठलपंत अपने गुरु की आज्ञा से संन्यास आश्रम से पुनः गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट हुए थे। लेकिन समाज ने इसे स्वीकार नहीं किया। ब्राह्मण वर्ग ने उनका बहिष्कार किया तथा उनके ऊपर अनेक लांछन लगाने लगे। भगवान की कृपा से बारह वर्ष के बाद उनके यहाँ दो-दो वर्षों के अन्तराल में क्रमशः चार सन्तानों का जन्म हुआ। उनके नाम हैं – श्री निवृत्तिनाथ, श्री ज्ञानेश्वर, श्री सोपानदेव और मुक्ताबाई। उनके द्वितीय पुत्र श्री ज्ञानेश्वर का जन्म सन् १२७५ ई. (शक संवत ११९७) श्रावण कृष्ण अष्टमी, दिन गुरुवार, मध्यरात्रि में आपेगाँव में हुआ। (भगवान श्रीकृष्ण का जन्म भी श्रावण कृष्ण अष्टमी मध्यरात्रि में ही हुआ था।) विट्ठलपंत अपने बच्चों का उपनयन-संस्कार कराना चाहते थे। लेकिन समाज इसकी अनुमति नहीं दे रहा था। विट्ठलपंत ने अपने ऊपर से बहिष्कार हटाने के लिए ब्राह्मणों से कई प्रकार से विनती की, किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। समाज के निर्णयानुसार श्री विट्ठलपंत और श्रीमती रखुमाबाई ने अपने बच्चों के सुखमय उज्ज्वल भविष्य के लिए अपने देह को गंगा में प्रवाहित कर दिया।

अब चारों छोटे बालक अनाथ हो गये। वे भिक्षा के अन्न से गुजारा करने लगे। उनको अपना कहकर प्रेम से गले लगाने वाला कोई नहीं था। उन्हें समाज की ओर से घोर कष्ट, अपमान और छल का सामना करना पड़ा। जनता उन्हें 'संन्यासी की सन्तान' कहकर निन्दा किया करती थी। ज्ञानेश्वर अपने भाई-बहन के साथ आपेगाँव को छोड़कर नाना के गाँव आलंदी में आकर रहने लगे। आलंदी के ब्राह्मणों ने उनलोगों के पवित्र जीवन को देखकर उनको शुद्धि-पत्र दे दिया। अब ये भाई-बहन पैठण के ब्राह्मणों से शुद्धि-पत्र लेने के लिए आलंदी से पैठण आये। ज्ञानेश्वर ने ब्राह्मणों से शुद्धि-पत्र देने के लिए बहुत अनुनय-विनय किया। ब्राह्मणों की एक सभा बुलाई गयी और बहुत विचार-विमर्श के बाद ब्राह्मणों ने इन चारों बच्चों को शुद्धि-पत्र देने से मना कर दिया। सभा-विसर्जन के समय एक सदस्य ने उपहास के साथ इनके नाम का अर्थ बतलाने के लिए कहा। ज्ञानेश्वर ने कहा 'मैं सब आगमों का ज्ञानदेव हूँ। त्रिवेदों का ज्ञाता हूँ।' छोटे बालक के मुँह से ज्ञानेश्वर नाम का गम्भीर अर्थ सुनकर सारी सभा पेट पकड़कर हँसने लगी। उनमें से एक व्यक्ति बीच में ही बोल पड़ा, वह सामने जो भैंसा चला आ रहा है, उसका नाम भी ज्ञानेश्वर है। यह सुनकर बाल ज्ञानेश्वर ने शान्ति से उत्तर दिया, 'हाँ, आपका कहना त्रिवार सत्य है, उस भैंसा में और मुझमें अंशमात्र भी भेद नहीं है। वह मेरी ही आत्मा है। एक ही परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं।' वह दुष्ट व्यक्ति ज्ञानेश्वर का उपदेश सुनकर भैंसा की पीठ पर लाठी से प्रहार करने लगा। किन्तु आश्चर्य से भी आश्चर्य यह हुआ कि भैंसा की पिटाई से ज्ञानेश्वर की पीठ पर मारने के लक्षण दिखने लगे तथा उनसे खून बहने लगा। यह देखकर सभी स्तम्भित हो गये।

एक दिन ज्ञानेश्वर गोदावरी नदी के तट पर बैठे हुए थे। कुछ दुष्ट व्यक्ति उनका मजाक उड़ाने के लिए आस-पास घूम रहे थे। उनमें से एक ने बालक ज्ञानेश्वर को लज्जित करने के लिए कहा - 'यदि तुम अपने साथ अपने कुल को पवित्र करना चाहते हो, तो सामने खड़े भैंसा के मुख से वेद-उच्चारण करवाकर दिखलाओ।'

ज्ञानेश्वर तुरन्त उठकर नम्रता से बोले - 'आप जैसे भूदेव की इच्छा कैसे निष्फल हो सकती है?' इतना कहकर ज्ञानेश्वर ने भैंसा के मस्तक पर अपना हाथ रख दिया। उसी क्षण भैंसा के मुख से वेदों का उच्चारण होने लगा। वह

भैंसा विद्वान ब्राह्मणों की तरह एक भी स्वर न भूलते हुए अनेक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने लगा। यह देखकर पैठण गाँव की जनता आश्चर्यचकित हो गयी। इसके पहले कभी किसी ने न तो ऐसा देखा था और न ही सुना था। भैंसा के मुख से वेदोच्चारण सुनकर पैठण के ब्राह्मणों ने शर्म से अपने-अपने मस्तक नीचे कर लिये। सन् १२९७ ई. में पैठण के ब्राह्मणों ने एकमत से ज्ञानेश्वर को शुद्धि-पत्र देकर उनको पावन किया।

नेवासे गाँव में निवास करते समय उनके गुरु (बड़े भाई) निवृत्तिनाथ ने ज्ञानेश्वर को श्रीमद्-भगवद्-गीता पर प्रवचन करने के लिए कहा। ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा में सरल उदाहरण और उपमा देकर गीता पर टीका करना आरम्भ किया, जिससे गाँव के लोग सहजता से समझ सकें। उनके साथ रहनेवाले सच्चिदानन्द बाबा टीका सुनकर लिखते जा रहे थे। आगे चलकर इस भावार्थदीपिका (भाव-अर्थ-दीपिका अर्थात् भावों का अर्थ बतलानेवाता ग्रन्थ) को 'ज्ञानेश्वरी' नाम दिया गया। ज्ञानेश्वर महाराज ने 'अमृतानुभव' या 'अनुभवामृत' तथा 'चांगदेव पासष्टी' जैसे ग्रन्थ भी लिखे हैं। ऐसा माना जाता है कि 'ज्ञानेश्वरी' का सार 'अमृतानुभव' में और 'अमृतानुभव' का सार 'चांगदेव पासष्टी' में है।

सन्त ज्ञानेश्वर

सन्त-शिरोमणि श्री ज्ञानेश्वर महाराज को काशी में यज्ञ के समय अग्रपूजा (सबसे प्रथम जिसकी पूजा की जाती है) करके सम्मानित किया गया।

ज्ञानेश्वर महाराज ने सन् १२९६ ई. को पंढरपुर में कार्तिक दशमी के दिन सन्तों के सामने भगवान विठ्ठल से समाधि लेने के लिए प्रार्थना की। भगवान विठ्ठल प्रकट हुए और कहा 'इस ज्ञानांजन का स्वार्थ कारण अब मुझे पता चल गया है। तुझे निरन्तर समाधि प्राप्त हो। अब निरन्तर मेरा स्मरण करते हुए सुख से प्रस्थान करो।' ऐसा कहकर भगवान विठ्ठल अदृश्य हो गये। पूणे से १४ किलोमीटर दूर, भगवान शिव का स्थान, आलंदी गाँव स्थित है। वहाँ पर सन् १२९६ ई. २५ अक्तूबर, कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को ज्ञानेश्वर महाराज संजीवन-समाधि (जीवित अवस्था में ही) लेंगे, यह बात चारों ओर फैल गयी। इसे देखने के लिए अनेक लोग आये हैं। सबकी आँखें भरी हुई हैं, किन्तु किसी के मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा है। मुक्ताबाई तो फूट-फूटकर रो रही है। ज्ञानेश्वर महाराज के गुरु और भाई निवृत्तिनाथ और भगवान पाण्डुरंग ज्ञानेश्वर को समाधि-स्थल की ओर ले आये। अब वे अन्दर उतर रहे हैं। एक सीढ़ी, दूसरी सीढ़ी, तीसरी सीढ़ी, बस हो गया। श्री ज्ञानेश्वर महाराज अब आसन पर बैठ गये हैं। सामने श्रीसार्थ ज्ञानेश्वरी रखी है। प्रसन्नवदन ज्ञानेश्वर महाराज भगवान की ओर देखकर बोले, 'ज्ञानदेव म्हणें, सुखी केलें देवा। पादपद्मीं ठेवा, निरंतरा।।' भावार्थ – 'हे परमेश्वर, जन्मभर अपूर्व सुख-भोग दिया, अब अपने चरणों में जगह दीजिए।' श्री भगवान् पाण्डुरंग ने ज्ञानेश्वर के मस्तक पर अभयहस्त रखा। श्री ज्ञानेश्वर ने तीन बार प्रणाम किया और फिर उन्होंने अपने कमल जैसे बड़े-बड़े नेत्र बन्द कर लिये। श्री ज्ञानेश्वर के समाधिस्थ होने पर पाण्डुरंग के साथ निवृत्तिनाथ गुफा के बाहर आये और उन्होंने समाधि पर शिला रखके उसे बन्द कर दिया।

बाल-सन्त श्री ज्ञानेश्वर को 'ज्ञानदेव' या 'ज्ञानोबा' के नाम से भी जाना जाता है। सन्त शिरोमणी श्री ज्ञानेश्वर महाराज केवल २१ वर्ष ३ महीने ५ दिन तक इस धराधाम में सशरीर थे, लेकिन महाराष्ट्र में भक्तों का विश्वास है कि ज्ञानेश्वर महाराज मानो आज भी जीवित ही हैं और उनके जीवन काल में जिस प्रकार यात्रा चलती थी, उसी प्रकार आज भी सात सौ साल से लगातार उनकी पालकी निकाल रहे हैं। वैष्णव वारकरी-सम्प्रदाय में सन्त-अग्रगण्य ज्ञानेश्वर महाराज को उनके माँ के समान हृदय के कारण 'माउली' (माता) कहकर बुलाते हैं। धन्य है वह देश! धन्य है वह स्थान! धन्य है वह समाज! धन्य है वे माता-पिता! जहाँ पर ऐसे स्वनाम-धन्य सन्त जन्म ग्रहण करते हैं। इस बाल-सन्त का जीवन हम सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४५)

स्वामी भूतेशानन्द

– महाराज! ईश्वर-दर्शन के सम्बन्ध में कैसी धारणा होनी चाहिए? ईश्वर-दर्शन का क्या अर्थ है?

महाराज – कह रहा हूँ। सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य, एकत्व और अद्वैत का कैवल्य, ऐसी बातें हैं। सालोक्य का अर्थ है – (ईश्वर के) साथ एक लोक में निवास करूँगा। जैसे – शिवलोक, विष्णुलोक इत्यादि। सार्ष्टि – भगवान जैसा ऐश्वर्यशाली होना। केवल सृष्टि, स्थिति और लय, ये तीन क्षमताएँ मनुष्य में नहीं होतीं। ये होने से सभी लोग स्वेच्छानुसार सृष्टि, स्थिति और लय करने लगेंगे और सृष्टि में विशृंखलता हो जायेगी। सामीप्य – उनके समीप अर्थात् निकट रहूँगा। सारूप्य – उनके जैसा रूप होगा। एकत्व – यह वेदान्तोक्त ब्रह्म के साथ एक हो जाना नहीं है, यहाँ एकत्व का अर्थ है कि मैं उनका अंश हूँ। अर्थात् अंश-अंशी सम्बन्ध है। ये सब द्वैतवादी भाव हैं, दूसरा है – अद्वैतवादी का कैवल्य या मुक्ति। ईश्वर-दर्शन के सम्बन्ध में यही सब कई प्रकार की धारणाओं का उल्लेख है।

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर कह रहे हैं – **"हरि से लागि रहो रे भाई। तेरी बनत बनत बनि जाई।"** यह मुझे अच्छा लगता है।

महाराज – वे किसके लिये कह रहे हैं? जिसको वैसी व्याकुलता हुई है – मुझे अभी भगवान का दर्शन चाहिए, अब विलम्ब असह्य हो रहा है, उसके लिए कह रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं, वैसे पुकारने से क्या होता है? इतना कहकर वे धरती पर हाथ-पैर पटकते हुए व्याकुल होकर रोने लगे। वे दिखा रहे हैं कि कैसी व्याकुलता होने पर उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। उनमें थोड़ी-सी भी कृत्रिमता नहीं है।

– किन्तु महाराज ! स्वामीजी ने कहा है कि रोना-धोना आदि स्नायविक दुर्बलता है।

महाराज – क्या स्वामीजी ने क्रन्दन नहीं किया? क्या वृन्दावन में तीन दिन धरती पर गिरकर स्वामीजी ने रुदन नहीं किया? किसने हँस-हँसकर भगवान का दर्शन किया है? बिना रोये किसने भगवान को प्राप्त किया है? एक बात हम लोगों को याद रखनी होगी, जिस दुर्लभ वस्तु को हम चाहते हैं, जिस अमूल्य वस्तु को हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसके लिये एक जन्म क्या, कई जन्म भी कुछ नहीं है। अमूल्य उद्देश्य हेतु अमूल्य मूल्य चुकाना होगा। सबको इसी पथ से ही जाना होगा।

प्रश्न – महाराज! अहंकार और गौरव में क्या भेद है?

महाराज – आकाश-पताल का अन्तर है। 'मैं' 'मैं' कर्त्तापन का भाव अंहकार है। वह मिथ्याभिमान है। गौरव है महत्त्व का बोध होना। एक है Boasting (घमंड) और दूसरा है pride (गर्व)। घमंड का अर्थ है व्यर्थ अभिमान करना। गर्व है गौरव करना। हमें अपने संघ, अपने गुरु, अपने कुल, वंश पर अवश्य गर्व करना चाहिए। उसमें कोई दोष नहीं है। ठीक है न?

– हाँ महाराज, Vanity और pride है?

महाराज – हाँ।

– Vanity अर्थात् जो नहीं है, उसके होने का मिथ्या अभिमान करना। एक श्लोक में है –

अहंकारं सुरापानं गौरवं घोर रौरवम्।
प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा तस्मात् एतत त्रयं त्यजेत्।।

यहाँ गौरव का भी त्याग करने को क्यों कह रहे हैं?

महाराज – यहाँ पर गौरव का प्रयोग अहंकार के अर्थ में किया गया है।

– यह श्लोक वैष्णवों में बहुत प्रचलित है।

महाराज – दूर ! वैसा क्यों? प्रत्येक संन्यासी को ही इन सबका त्याग करना चाहिए। ठीक न? हम लोग सोचते हैं कि निरहंकार भाव केवल वैष्णवों के लिये ही है। यह तो प्रत्येक संन्यासी का आदर्श है।

प्रश्न – भगवान सत्यस्वरूप हैं। पुन: कहा गया है कि वे 'सत्यस्य सत्य' हैं। इसका क्या अर्थ है?

महाराज – सत्य का सत्य, अर्थात् एक आपेक्षिक सत्य

शेष भाग पृष्ठ ४३७ पर

दृग्-दृश्य-विवेकः (४)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यतः 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.।)

अन्तःकरण का स्वरूप

अन्तःकरण-वृत्तिश्च चितिच्छायैक्यमागता।
वासनाः कल्पयेत् स्वप्ने बोधेऽक्षैर्विषयान् बहिः ॥११॥

अन्वयार्थ – **अन्तःकरण-वृत्तिः** अन्तःकरण एक वृत्ति है **च** और (वह) **चिति-छाया-ऐक्यं** चैतन्य-आभास के साथ तादात्म्य को **आगता** प्राप्त करके **स्वप्ने** स्वप्न में **वासनाः** विचारों की **कल्पयेत्** सृष्टि करती है (तथा) **बोधे** जाग्रत अवस्था में **अक्षैः** इन्द्रियों के साथ **बहिः** बाह्य **विषयान्** विषयों की **(कल्पयेत्** सृष्टि करती है)।

भावार्थ – अन्तःकरण एक वृत्ति है और (वह) चिदाभास या चैतन्य की छाया के साथ तादात्म्य को प्राप्त करके – स्वप्न में विचारों की सृष्टि करती है (तथा) जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों के साथ बाह्य विषयों की (सृष्टि करती है)।

सूक्ष्म शरीर

मनोऽहंकृत्युपादानं लिङ्गमेकं जडात्मकम्।
अवस्थात्रयमन्वेति जायते म्रियते तथा ॥१२॥

अन्वयार्थ – **मनो-अहंकृति-उपादानं** मन तथा अहंकार का उपादान (कारण), जो **एकं** एक **जडात्मकं** जड़-स्वरूप **लिङ्गं** सूक्ष्म शरीर है, (वही) **अवस्था-त्रयं** (जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति – इन) तीन अवस्थाओं को **अन्वेति** प्राप्त करता है, (और) **तथा** वैसे ही **जायते** जन्म लेता है (तथा) **म्रियते** मृत्यु को प्राप्त होता है।

भावार्थ – मन तथा अहंकार का उपादान (कारण), जो एक जड़-स्वरूप सूक्ष्म शरीर है, (वही जाग्रत-स्वप्न तथा सुषुप्ति – इन) तीन अवस्थाओं को प्राप्त करता है; और वैसे ही जन्म लेता है तथा मृत्यु को प्राप्त होता है।

माया की दो शक्तियाँ

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृति-रूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि-ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत् ॥१३॥

अन्वयार्थ – (इस) **मायायाः** माया की **हि** (निश्चित रूप से) **विक्षेप-आवृति-रूपकं** आवरण तथा विक्षेप के रूप में **शक्ति-द्वयं** दो शक्तियाँ (**अस्ति** होती हैं,) **विक्षेप-शक्तिः** विक्षेप-शक्ति – **लिङ्ग-आदि-ब्रह्माण्ड-अन्तं** सूक्ष्म शरीर से लेकर स्थूल ब्रह्माण्ड तक **जगत्** जगत् की **सृजेत्** सृष्टि करती है।

भावार्थ – (इस) माया की, निश्चित रूप से, आवरण तथा विक्षेप के रूप में, दो शक्तियाँ हैं, (इनमें से) विक्षेप-शक्ति सूक्ष्म शरीर से लेकर स्थूल ब्रह्माण्ड तक – (सम्पूर्ण) जगत् की सृष्टि करती है।

विक्षेप-शक्ति से सृष्टि

सृष्टिर्नाम ब्रह्मरूपे सच्चिदानन्द-वस्तुनि।
अब्धौ फेनादिवत् सर्व-नामरूप-प्रसारणा ॥१४॥

अन्वयार्थ – **ब्रह्मरूपे** ब्रह्म-स्वरूप-वाली **सच्चिदानन्द-वस्तुनि** 'सत्-चित्-आनन्द' नामक वस्तु में; **अब्धौ** समुद्र में **फेन-आदिवत्** फेन, झाग आदि के समान, **सर्व-नाम-रूप-प्रसारणा** समस्त नाम-रूप की अभिव्यक्ति या विस्तारण को **सृष्टिः** सृष्टि **नाम** कहते हैं।

भावार्थ – ब्रह्म-स्वरूप-वाली 'सत्-चित्-आनन्द' नामक वस्तु में; समुद्र में फेन, तरंग आदि के समान, समस्त नाम-रूप की अभिव्यक्ति या विस्तारण को सृष्टि कहते हैं।

माया की आवरण शक्ति

अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्म-सर्गयोः।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम् ॥१५॥

अन्वयार्थ – (माया की) **अपरा शक्तिः** दूसरी (आवरण) शक्ति (शरीर के) **अन्तः** भीतर **दृक्-दृश्ययोः** द्रष्टा और दृश्य (विषयों) का **भेदं** भेद **च** और (शरीर के) **बहिः** बाहर (संसार में) **ब्रह्म-सर्गयोः (भेदम्)** ब्रह्म तथा सृष्टि (के भेद को) **आवृणोति** आच्छादित कर (छिपा) देती है; **सा** यही **संसारस्य** संसार (आवागमन) का **कारणं** कारण (**भवति** बनती है)।

भावार्थ – (माया की) दूसरी (आवरण नामक) शक्ति (शरीर के) भीतर द्रष्टा और दृश्य (विषयों) का भेद और बाहर (संसार में) ब्रह्म तथा सृष्टि (के भेद को) आच्छादित करके (छिपा) देती है और (इस प्रकार) यही संसार (अर्थात् आवागमन) का कारण बनती है। **(क्रमशः)**

शिकागो के पथ पर स्वामी विवेकानन्द

स्वामी चेतनानन्द

मीनीस्टर इन्चार्ज, वेदान्त सोसाइटी, सेन्ट लुइस

अनुवाद- मातृचैतन्य, बेलूड़ मठ

विवेकानन्द अब इतिहास के पन्नों में शामिल हैं। एक महान व्यक्ति हमारी दृष्टि से ओझल हो सकता है, किन्तु इतिहास उसकी जीवन-गाथा को, उसके संघर्ष और उपलब्धियों को अपने में संजो लेता है। विवेकानन्द केवल ३९ वर्ष जीवित रहे, किन्तु मानवता का उल्लेख करते हुये उन्होंने कहा था, "मैंने १५०० वर्षों के लिये उन्हें पर्याप्त दिया है।"

आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो

श्रीरामकृष्ण जानते थे कि विवेकानन्द सनातन धर्म के संदेशकाप्रसार करेंगे, इसलिये उन्होंने सारी शक्तियाँ स्वामीजी को हस्तान्तरित कर एक कागज पर लिखा, 'नरेन शिक्षा देगा'।[२] बाद में, जब श्रीरामकृष्ण के शिष्य वाराहनगर मठ में तपस्याओं में दिन गुजार रहे थे, तब विवेकानन्द जी ने अपने संन्यासी भाइयों से कहा था, "तुम लोग देखना, 'हमारा नाम इतिहास में अंकित होगा'।[३] जॉन हेनरी बेरोज की विशाल पुस्तक The World's Parliament of Religions and Neely's History of the Parliament of Religions. ये दोनों विवेकानन्द के इस कथन को सिद्ध करती हैं। सन् १९६४ में कार्ल थॉमस जैक्शन को उनके विषय "द स्वामी इन अमेरिका : अ हिस्ट्री Ph.D ऑफ द रामकृष्ण मूवमेंट इन द यूनाइटेड स्टेट्स" के लिये लॉस एंजिलिस की कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी ने पुरस्कृत किया। Smithsonian Institute of Washington, D.C. ने वर्ष १९७६ में अमेरिकी स्वतन्त्रता के द्विशतवार्षिकी समारोह में उन ३१ विदेशियों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया, जिन्होंने अमेरिकी संस्कृति, विरासत और इतिहास में योगदान दिया था, उस प्रदर्शनी में स्वामी विवेकानन्द ही एकमात्र भारतीय थे।

धर्म महासभा के आयोजन का समाचार

अमेरिका में कोलम्बस के अभियान की ४००वीं वर्षगाँठ मनाने के लिये १८९३ ई. में शिकागो में कोलंबियाई प्रदर्शनी आयोजित की गई थी। प्रदर्शनी का प्राथमिक उद्देश्य था – १९वीं शताब्दी में मनुष्य की भौतिक उन्नति का प्रदर्शन करना। जो हो, प्रदर्शनी को व्यापक रूप देने के लिये नारियों की उन्नति, सार्वजनिक संप्रेषण, दवा एवं शल्य चिकित्सा, वित्त एवं वाणिज्य, संगीत, सरकार और कानून–सुधार, अर्थ-विज्ञान और धर्म आदि विषयों को केन्द्र में रखकर २० सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। इन सम्मेलनों में से विश्वधर्म-सम्मेलन ही अब तक की सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रचारित और प्रशंसित हुआ था।

स्वामी विवेकानन्द ने इस विश्वधर्म-सम्मेलन के विषय में प्रथम बार १८९२ में सुना था। जब वे पश्चिम भारत के जूनागढ़ की यात्रा पर थे। उस समय पोरबन्दर में, दीवान

१. Life (ii) P. 590, २. Life (i) 182, ३. उद्बोधन (बांग्ला) Vo ix, P. 454,

शंकर पाण्डुरंग जो कि स्वामीजी की विद्वत्ता और व्यक्तित्व से प्रभावित हुये थे, ने स्वामीजी से कहा था, "स्वामीजी, मुझे डर है कि आप इस देश में कुछ विशेष नहीं कर सकेंगे।" यहाँ कुछ व्यक्ति ही आपकी प्रशंसा करेंगे। आपको पश्चिमी देशों में जाना चाहिये, जहाँ लोग आपको और आपके मूल्य को समझेंगे। निश्चित ही आप सनातन धर्म का प्रचार कर पश्चिमी सभ्यता पर महत्तर प्रकाश डाल सकेंगे।"[४] ये विचार स्वामीजी के मस्तिष्क में अचेतन रूप से सक्रिय हो गए। १८९३ ई. के प्रारम्भ में पश्चिम और दक्षिण भारत घूमकर स्वामीजी मद्रास पहुँचे। मद्रास में 'द हिन्दू' पत्र के सम्पादक जी.एस.अय्यर ने विश्वधर्म-सम्मेलन पर कुछ लेख लिखे और इसका समाचार पूरे भारत में फैल गया। स्वामीजी के क्रान्तिकारी विचार, चुम्बकीय व्यक्तित्व और व्यापक पाण्डित्य ने बहुत जल्द ही मद्रास के एक जन-समूह को आकर्षित कर लिया। उन लोगों ने इस बात पर बल दिया कि स्वामीजी शिकागो जाएँ और विश्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करें। जब पाण्डिचेरी के एक रुढ़िवादी हिन्दू ने इस विषय को सुना, तब वह चिल्ला उठा – 'कदापि न! कदापि न!"[५] उस पण्डित के अनुसार, हिन्दू लोग पश्चिमी देशों को नहीं जाते थे, क्योंकि ऐसा माना जाता था कि वह म्लेच्छों की भूमि है।

स्वामीजी की अमेरिकी शिष्या (मिस लारा ग्लेन) देवमाता ने मद्रास के अग्रणी कॉलेज के प्रोफेसर (सम्भवत:) आलासिंगा की निम्नलिखित स्मृतियों का उल्लेख किया है –"दूसरे दिन, मुझे याद है स्वामीजी प्राच्य और पाश्चात्य की बातें कर रहे थे और कह रहे थे – 'तुम लोगों को (हिन्दुओं को) और अधिक कठोरता और पश्चिम को और अधिक सौम्यता की आवश्यकता है।' "

मैंने उनसे पूछा, 'आप शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने क्यों नहीं जाते हैं?' उन्होंने कहा, 'मुझे जाने में कोई आपत्ति नहीं है, यदि कोई मुझे कहे तो।' हममें से एक ने उन्हें कुछ (दो रुपये) रुपये दिये। यह प्रथम बार था, जब उन्होंने पैसे ले लिये। वे हँसे और बोले, 'मैं यह रुपये उस भिखारी को दूँगा, जो मुझे सर्वप्रथम मिलेगा' और सचमुच ही उन्होंने वह धन कुछ लाचार भिखारियों को दे दिया। जब उनकी यात्रा के लिये पहला अंशदान (ढाई सौ रुपये) आया, तो उन्होंने वह ले लिया और दुकानों पर जाकर एक गाड़ी और कुछ खिलौने उन बच्चों के लिये खरीदे जिन्हें वे बहुत प्यार करते थे।"[६]

मुझे भगवान का आदेश मिला है

२० अगस्त, १८९३ को स्वामीजी ने अमेरिका से आलासिंगा को लिखा, "मुझे भगवान का आदेश मिला है।"[७] स्वामीजी का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह कथन सिद्ध करता है कि स्वामीजी अमेरिका न तो अपने किसी व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति हेतु और न ही अपने अनुयायियों के दबाव के कारण गये थे।

आर.ए. नरसिम्हाचारियर

भारत में स्वामीजी ने प्रत्यक्ष निर्देश हेतु ईश्वरीय मार्गदर्शन की भरपूर प्रार्थना की थी। उन्हें निर्देश इस प्रकार मिला – "एक रात जैसे ही वे सोये, एक प्रतीकात्मक स्वप्न के रूप में आदेश आया। उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण की आकृति देखी, जो समुद्र-तट पर से समुद्रीजल की ओर जाते हुये अपने पीछे आने को इंगित कर रही थी। उनका हृदय शान्ति और आनन्द से भर गया, क्योंकि जब वे सचेत हुए, तो 'जाओ' इस आदेश की छाप उनके मस्तिष्क में ज्यों-की-त्यों विद्यमान थी। उस दृश्य ने उन्हें आश्वस्त किया। उन्होंने इसे एक दिव्य आदेश माना। उनके संदेह और भ्रम दूर हो गए।"[८]

रामकृष्ण संघ के ७वें अध्यक्ष 'स्वामी शंकरानन्द जी ने स्वामी तेजसानन्द को एक बार स्वामीजी के विषय में यह घटना बताई – "अभी भी स्वामीजी के विषय में ऐसी बहुत-सी चीजे हैं, जिसे लोग नहीं जानते। मैं तुम्हें एक घटना सुनाता हूँ, जो मैंने स्वयं आर.ए. नरसिम्हाचारियर से सुनी थी। स्वामीजी विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिये संकोच कर रहे थे, किन्तु उनके मद्रासी अनुयायी बड़े

४. Life (i) Ps. 295, ५. Life P. 360,

६. Sister Devamata, Sri Ramakrishna and his disciples, California : Anada Ashrama, 1928 P. 360, ७. आलासिंगा को लिखा पत्र, अगस्त २०, १८९३, ८. Life, (i) P. 380

उत्साह से उनके इस कार्य हेतु व्यवस्था कर रहे थे। मद्रास में, नरसिम्हाचारिअर स्वामीजी के बगल वाले कमरे में सोते थे। कई बार रात में उन्होंने सुना कि स्वामीजी किसी से बातें कर रहे हैं और वह बातचीत कुछ देर तक चलती रही। कुछ दिनों के बाद, नरसिम्हाचारिअर ने पूछा, "स्वामीजी! आप रात में किसके साथ बातें कर रहे थे?" पहले तो स्वामीजी ने उनके प्रश्न का उत्तर देने में आनाकानी की, किन्तु बाद में, नरसिम्हाचारिअर के लगातार पूछने वर वे बोले – शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी। मैंने यह विचार मानसिक रूप से लगभग त्याग दिया था। किन्तु पिछली कुछ रातों से श्रीरामकृष्ण मुझे यह कहते हुये जोर दे रहे हैं – 'तुम मेरे कार्य के लिये ही आये हो, तुम्हें जाना ही होगा। निश्चित रूप से जान लो

कि यह सम्मेलन तुम्हारे लिये ही है। तुम चिन्ता मत करो, लोग तुम्हारी वाणी सुनकर चकित हो जायेंगे। जितनी ही मैंने अपनी अनिच्छा व्यक्त की, उतना ही गुरुदेव ने मुझे जाने के लिये बलपूर्वक कहा। अन्त में मैंने उनका आदेश स्वीकार कर लिया है और शिकागो जाने की तैयारी कर रहा हूँ।"[९]

हालाँकि स्वामीजी अब अपने कर्त्तव्य के विषय में निश्चिन्त थे, फिर भी उन्होंने माँ सारदा की अनुमति एवं आशीर्वाद लेना आवश्यक समझा। स्वामीजी ने स्वामी सारदानन्द को लिखा – मैंने एक स्वप्न देखा है, जिसमें गुरुदेव मुझे पश्चिमी देशों में जाने को कह रहे हैं। मेरा मन अत्यन्त विचलित है। कृपया, तुम माँ को सब कुछ बताओ, मैं इस विषय में उनकी राय जानना चाहता हूँ। स्वामी सारदानन्द, माँ सारदा के पास गये और स्वामीजी का पत्र उन्हें पढ़कर सुनाया। माँ ने तुरन्त अपनी राय न देकर सारदानन्द से प्रतीक्षा करने को कहा। कुछ दिनों के बाद, माँ ने सारदानन्द जी से कहा – "नरेन को लिख दो कि उसे पश्चिमी देशों में जाना चाहिये।"[१०]

स्वामी तुरीयानन्द

अपनी अनुमति देने के पहले, माँ को एक स्वप्न दिखाई दिया। उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण समुद्र की लहरों पर चले जा रहे हैं और नरेन को अपने पीछे आने को कह रहे हैं। माँ का अनुमोदन एवं आशीर्वाद प्राप्त कर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुये।

अमेरिका के लिये जहाज पर चढ़ते समय स्वामीजी ने स्वामी तुरीयानन्द से कहा था – "विश्वधर्म-सम्मेलन का आयोजन इसके लिये (स्वयं को इंगित करते हुये) किया जा रहा है। मेरा मन मुझे ऐसा कहता है। तुम इसे निकट भविष्य में ही सत्यापित होते देखोगे।[११]

प्रस्थान की तैयारी

पश्चिमी देशों को जाने के लिए अपनी इच्छा की घोषणा करने के बाद, स्वामीजी ने अपने मद्रासी अनुयायियों से कहा – "समय आ चुका है, हमारे मत के प्रचार का, समय आ गया है ऋषियों के हिन्दुत्व के क्रियाशील होने का। क्या हम अपने प्राचीन मत की दृढ़प्राचीर को इन विदेशियों के हाथों नष्ट होता देखकर भी निष्क्रिय खड़े रहेंगे? क्या हम इसकी अपराजेयता अथवा अभेद्यता से संतुष्ट हैं? क्या हम यूँ ही निष्क्रिय बने रहेंगे या अतीत की तरह देश-विदेश में अपने धर्म की महिमा के प्रचार हेतु आक्रामक भी होंगे? क्या हम अभी भी अपनी सामाजिक समूहों और प्रांतीयता की संकीर्णताओं से जकड़े रहेंगे या हम इनसे बाहर निकलकर अन्य लोगों के विचारसागर में से भारत का हित खोजने का प्रयास करेंगे। पुनरुत्थान हेतु भारत को पुनः शक्तिशाली और एकजुट होना पड़ेगा और अपनी सभी जीवन्त शक्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।"[१२] इस प्रेरक भाषण से मद्रास में उनके मित्रों में प्रबल उत्साह पैदा हुआ, उन्होंने उत्तर दिया – "ऐसा ही होना चाहिये स्वामीजी और आप अकेले ऐसा करनेवाले व्यक्ति हैं। आप अद्भुत कार्य करेंगे।"[१३]

---

९. Sandipan, Belur B.T. College Saradapeeth, 1966, **१०.** Swami Omkarananda, Sri Ramakrishna, Swami Vivekananda O Dharma Prasanga (Bangla) Howrah, Ramakrishna Vivekananda Ashrama - 1974 p. 127,

११. New Discoveries, 1983 (i) 37, **१२.** Life (i) Pa. 371, **१३.** वही

इन युवाओं ने तब घर-घर जाकर पैसे जुटाने शुरू किये।

उन्होंने इसके लिये रामनाद के राजा को लिखा, जिन्होंने एक बार स्वामीजी को उनकी यात्रा हेतु १०,०००/ (दस हजार) रुपये देने चाहे थे। हालाँकि, बाद में उन्होंने इस सहयोग से इंकार कर दिया, क्योंकि उन्हें डर था कि स्वामीजी जैसे एक उच्च शिक्षित बंगाली राजनीति में शामिल हो सकते हैं और उनकी परेशानी का कारण बन सकते हैं। बाद में जब राजा को पता चला कि कुछ उच्च सरकारी अधिकारी भी स्वामीजी की यात्रा हेतु धन से सहयोग कर रहे हैं, तब उन्होंने भी ५००/- (पाँच सौ) रुपये दिए थे।

मद्रासी भक्तों ने ४,०००/- (चार हजार) रुपये जुटाये। उन लोगों ने पैसिफिक और ओरिएन्ट प्रायद्वीप स्टीमर के द्वितीय श्रेणी की सीट बुक करवा दी और १७९ पाउण्ड (२,६८५ रुपये) स्वामीजी को दे दिये। बाद में, जब स्वामीजी के शिष्यों में एक खेतड़ी के राजा अजीत सिंह ने स्वामीजी की व्यवस्थाओं का उत्तरदायित्व लिया, तो उन्होंने अपने व्यक्तिगत सचिव मुंशी जगमोहन लाल से उस टिकट को द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी में बदलवाने को कहा। तब जगमोहन लालजी स्वामीजी के साथ बम्बई गये और उनके लिये रेशम के वस्त्र, पगड़ी और अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीदीं।

पूर्वोक्त मद्रासी अध्यापक स्वामीजी को विदा करने बम्बई गये। उन्होंने बाद में स्मरण करते हुये बताया कि स्वामीजी के पास उनके बम्बई में सिलाये हुये यूरोपीयन वस्त्र थे। जब वे वस्त्र लाये गये और स्वामीजी ने स्वयं ही उन वस्त्रों को धारण किया, तो अत्यन्त सुन्दर दीख पड़े। तत्पश्चात् हम साख-पत्र की प्राप्ति हेतु कुक कम्पनी की ओर चल पड़े और तदुपरान्त नयी घड़ी खरीदने गए। साख–पत्रों और Gladstone (चमड़े के बैग की कम्पनी) के बैग के साथ स्वामीजी का यह प्रथम अनुभव था। स्वामीजी द्वारा लायी गयी नयी पोशाक की पतलून थोड़ी लम्बी थी और गन्दी हो रही थी। मेरे साथ का एक व्यक्ति बार-बार इस विषय पर उनका ध्यान आकृष्ट करा रहा था। अन्त में वे बोल उठे, "तुम मुझे बार-बार मेरे पतलून की याद क्यों दिलाते हो? वे लोग हमें गवाँरों की एक टोली समझ बैठेंगे। क्या तुम नहीं जानते कि मैं इस पोशाक से भलीभाँति परिचित हूँ।"[१४]

१४. Life, Sri Ramakrishna and his disciples. Page 167,

नाम 'विवेकानन्द'

जिस 'विवेकानन्द' नाम से स्वामीजी प्रसिद्ध हुए, इस पर कुछ चर्चा करना, अतिशयोक्ति नहीं होगी। यद्यपि नाम-यश साधु-जीवन की अन्तिम बाधायें हैं। एक साधु को नाम-रूप को लांघकर ब्रह्म में लीन हो जाना चाहिये। नरेन्द्रनाथ ने संन्यास-दीक्षा के समय अपने पूर्वाश्रम नाम को त्यागकर 'स्वामी विविदिषानन्द' नाम ले लिया था। (विविदिषा माने ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा) अपने परिव्राजकावस्था के दिनों में स्वामीजी बहुधा अपना नाम बदलते रहते थे, ताकि वे अज्ञात रह सकें। वे कभी 'विविदिषानन्द' तो कभी 'सच्चिदानन्द' हो जाते थे। शास्त्र कहते हैं, यदि तुम ब्रह्म को जानना चाहते हो, तो सर्पों की तरह (लोगों) से दूरी बनाकर रहो।

'विवेकानन्द' इस नाम के पीछे का इतिहास मुंशी जगमोहन लाल द्वारा पंडित झाबरमल शर्मा को बताया गया था, जिसे उन्होंने अपनी हिन्दी पुस्तक 'खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द' (१९२७) में उल्लेखित किया है – "स्वामीजी के

प्रथम खेतड़ी आगमन के दौरान एक दिन स्वामीजी राजा अजीत सिंह के साथ बैठे थे। राजा ने स्वामीजी से मुस्कुराते हुये कहा, "महाराज आपका नाम (विविदिषानन्द) अत्यन्त कठिन है। एक समीक्षक अथवा व्याख्याता की सहायता के बिना साधारण लोग इसका अर्थ नहीं समझेंगे और आपके जीवन में विविदिषा (जानने की इच्छा) का समय भी पूरा हो चुका है। राजाजी का यह तर्कसंगत सुझाव सुनकर, स्वामीजी ने पूछा, "आप किस नाम का सुझाव देते हैं?" राजा ने उत्तर दिया, "मुझे लगता है आपका सही और सार्थक नाम है 'विवेकानन्द', (वह जो सत्य और असत्य के भेदमूलक तत्त्व में आनन्द पाता

१५. Benishankar Sharma, Swami Vivekananda A Forgotten Chapter of his life, Calcutta : Oxford Book & Stationery Co. 1963 PP. 55-57

हो)। तब से राजा के अनुरोध पर स्वामीजी 'विवेकानन्द' नाम प्रयोग करने लगे।"[१५]

अब प्रश्न उठता है – स्वामीजी ने यह नाम कब पाया? मुंशी जगमोहन के अनुसार स्वामीजी ने यह नाम अपने प्रथम खेतड़ी आगमन के समय पाया। हालाँकि स्वामीजी के सभी प्रमुख जीवनीकार इस बात से एकमत हैं कि उन्होंने यह नाम अपने अन्तिम खेतड़ी आगमन के समय पाया। खेतड़ी में अपनी प्रथम यात्रा के बाद स्वामीजी ने स्वामी सच्चिदानन्द के रूप में पूरे दक्षिण भारत की यात्रा की। थियोसाफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष कर्नल ऑलकाट और यहाँ तक कि आलासिंगा पेरुमल भी स्वामीजी को सच्चिदानन्द नाम से ही जानते थे। इससे संकेत मिलता है कि स्वामीजी ने यह नाम अपनी अंतिम खेतड़ी यात्रा के दौरान प्राप्त किया। अन्यथा यह अनुचित प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने प्रिय शिष्य राजा अजीतसिंह द्वारा दिये नाम को पहले स्वीकारा हो और बाद में छोड़ दिया हो।

उपर्युक्त मद्रासी प्राध्यापक का वृतांत बताता है कि स्वामीजी ने 'विवेकानन्द' नाम का प्रयोग पहली बार कब किया – "जब हम बॉम्बे में उनके साथ थे, तब हमने उनसे कहा, "स्वामीजी आप अमेरिका जा रहे हैं, वहाँ समय अत्यन्त मूल्यवान है, आपके पास एक घड़ी होनी चाहिये। ठीक है, 'मेरे लिये एक घड़ी खरीद दो'। यही उनका त्वरित उत्तर था। आपके पास कुछ परिचय–पत्र भी होने चाहिये। बहुत अच्छा एक सौ छपवा दो'। उस समय वे सच्चिदानन्द से जाने जाते थे, पर जब मैंने पूछा, "कार्डों पर मैं क्या नाम दूँ? उन्होंने उत्तर दिया 'स्वामी विवेकानन्द'। यह प्रथम बार था, जब उन्होंने इस नाम का प्रयोग किया।"[१६]

विश्व–मंच पर

३१ मई, १८९३ को स्वामीजी बॉम्बे से 'पेनिन्सुलर' नामक स्टीमर पर सवार हुये। जगमोहन और आलासिंगा के साथ स्वामीजी प्रथम श्रेणी के कक्ष में गये, जिसकी व्यवस्था उन लोगों द्वारा की गई थी और अपने व्यक्तिगत सामान आदि की जाँच की। फिर उन लोगों ने दूसरे यात्रियों के साथ रात्रिभोज किया जो कि पश्चिमी थे। स्वामीजी अपने रेशमी चोले और पगड़ी में राजकुमार जैसे लग रहे थे। रात्रिभोज के बाद जब जहाज छूटने की घंटी बजी, तो जगमोहन और आलासिंगा ने स्वामीजी को प्रणाम किया और जहाज से उतर पड़े। धीरे-धीरे इसे बंदरगाह से बाहर निकाला गया। जिन्हें स्वामीजी प्यार करते थे और जो स्वामीजी को प्यार करते थे, उन लोगों को आशीर्वाद करते हुये वे जहाज के डेक से धरती की ओर अपलक, तब तक देखते रहे, जब तक दृष्टि धुँधली न पड़ गयी। अपने प्रिय गुरुदेव का स्मरण कर उनकी आँखें आँसुओं से भरी थीं।

जहाज ने श्रीलंका के कोलम्बो पहुँचने में एक सप्ताह लिया और वहाँ एक दिन रुका। स्वामीजी ने शहर घूमने हेतु उस अवसर का लाभ उठाया और बुद्ध के निर्वाणावस्था की वैराग्य मुद्रा में एक लेटी हुई प्रतिमा देखकर मुग्ध हो गये। द्वितीय यात्रा–विराम था पेनांग, मलय प्रायद्वीप का एक छोटा भूखण्ड। स्वामीजी को पता चला कि मलयवासी

१६. Sri Ramakrishna and his Disciples P. 167

अधिकांशतया मुस्लिम हैं और पुराने दिनों में वह क्षेत्र समुद्री लुटेरों से पीड़ित रहता था। पेनांग से सिंगापुर तक के रास्ते में अपने ऊँचे–ऊँचे पर्वतोंवाला सुमात्रा भी दृष्टिगोचर हुआ और जहाज के कप्तान ने उन्हें बीते समय के समुद्री लुटेरों के कुछ पसंदीदा अड्डे भी इशारे से दिखाये। सिंगापुर में स्वामीजी संग्रहालय और वनस्पति–उद्यान देखने गये, जहाँ ताड़ का अच्छा संग्रह था।

अगला पड़ाव हांग–कांग था, जहाँ स्वामीजी को चीन और उसकी जीवनशैली की एक झलक मिली। स्वामीजी ने बाद में चीन की जीवनशैली की आपा–धापी को व्यंग्यपूर्ण शैली में लिखा है। नौका हांग–कांग में तीन दिन रुकी और स्वामीजी स्टीमर द्वारा सी कियांग नदी से ८० मील दूरी पर स्थित कैंटन घूमने गये। स्वामीजी केवल अच्छे शिक्षक ही नहीं थे, बल्कि एक विलक्षण शिक्षार्थी भी थे, इसलिये वे हमेशा तरोताजा और प्रेरणाप्रद रहते थे। स्वामीजी का ज्ञान केवल पुस्तकों द्वारा आबद्ध नहीं था। उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों व विभिन्न स्थानों द्वारा भी शिक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने देखा कि उच्च वर्ग की चीनी महिलायें सार्वजनिक रूप से दिखाई देती हैं। सुंदरता के लिये महिलाओं ने अपनी पैरों की वृद्धि पर रोक लगा दी और परिणामस्वरूप वे चलने के स्थान पर लंगड़ाने लगीं। जनसंख्या वृद्धि के कारण लोग नौकाओं में रहते थे और लगभग प्रत्येक मकान में एक दुकान थी, जिसके ऊपरी मंजिल पर लोग रहते थे। अत्यन्त निर्धन लोग बिल्ली और कुत्ते का भोजन करते थे।

कैण्टेन में स्वामीजी ने कई बौद्ध मन्दिरों का दर्शन किया। वे चाइनीज मठ देखना चाहते थे, किन्तु गाइड ने उन्हें यह कहकर हतोत्साहित कर दिया कि विदेशियों को वहाँ अनुमति नहीं है। जब स्वामीजी और अन्य कुछ पर्यटक मठ की ओर बढ़े, तभी तीन व्यक्ति हाथों में डंडे लेकर उनकी ओर दौड़े। गाइड चिल्ला उठा, ''सज्जनों भागो।'' स्वामीजी को छोड़कर सभी पर्यटक भाग खड़े हुये। उन्होंने तुरन्त गाइड से 'भारतीय योगी' शब्द का चाइनीज शब्द बताने को कहा। तब स्वामीजी चाइनीज भाषा में जोर से बोले 'भारतीय योगी'। तुरन्त ही उनके हमलावर अपनी शत्रुता भुलाकर उनके पैरों पर गिर गये और बुरी ताकतों से रक्षा के लिये कोई कवच या ताबीज माँगने लगे। स्वामीजी ने कागज के कुछ टुकड़ों पर संस्कृत में 'ओम' लिखा और उन लोगों के हाथों में सौंप दिया। तब वे स्वामीजी को मठ तक ले गये। इससे पता चलता है कि स्वामीजी की प्रत्युत्पन्नमति, बुद्धितत्परता कितनी अधिक थी।

हांग–कांग से स्वामीजी नागासाकी गये। वे जापान में देखी गयी प्रत्येक चीज से अत्यन्त प्रभावित हुये। वहाँ के आन्तरिक स्थानों के दर्शन हेतु स्वामीजी ने कोंब में जहाज छोड़ थलमार्ग से योकोहामा का रास्ता लिया, जहाँ से उन्हें दूसरा जहाज पकड़ना था।

जुलाई १० को, योकोहामा से स्वामीजी ने अपनी यात्रा का एक विस्तृत पत्र आलासिंगा को लिखा। उस पत्र में वे कहते हैं– ''जापानी लोग पृथ्वी के सबसे स्वच्छ लोगों में एक हैं। प्रत्येक वस्तु स्वच्छ और सुव्यवस्थित रहती है। उन लोगों की लगभग सभी सड़कें चौड़ी, सीधी बराबर रहती हैं। छोटी कद–काठी, गोरी त्वचा और विलक्षण जापानी वस्त्र। उनका चाल–चलन, हाव–भाव सब कुछ सुन्दर है। लगभग सभी घरों के पीछे एक बगीचा है, जिसमें जापानी फैशन के अनुसार छोटी-छोटी वाटिकाएँ, घास के मैदान, छोटे कृत्रिम सरोवर और छोटे–छोटे पत्थर के पुल भी हैं।''[१७]

जापान में रहते हुये स्वामीजी ने तीन बड़े शहरों का दौरा किया – 'ओसाका' एक विशाल विनिर्माण केन्द्र, पूर्व राजधानी – क्योटो और वर्तमान राजधानी टोक्यो। उन्होंने जापान के राष्ट्रीय जीवन के आवश्यक तत्त्वों को समझा और स्वयं को वहाँ के रीति–रिवाजों और संस्कृति से रुबरु कराया। योकोहामा से लिखे अपने एक पत्र में स्वामीजी अपने मद्रासी शिष्यों को अंधविश्वास और जड़ता से छुटकारा पाने के लिये संबोधित करते हुये कहते हैं, ''आओ! मनुष्य बनो। अपनी संकीर्णताओं के छोटे छिद्रों से बाहर आओ और विराटता अपनाओ, व्यापक हो जाओ, देखो कैसे दूसरे देश आगे बढ़ते जा रहे हैं।''[१८]

१७. आलासिंगा को लिखा पत्र १० जुलाई १८९३ **१८.** वही,

स्वामीजी जापान की यात्रा के दौरान एक दियासलाई कारखाना भी देखने गये थे। संभवत: वहीं पर स्वामीजी की मुलाकात प्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवक जमशेदजी टाटा से हुई, वे भी शिकागो जा रहे थे। स्वामीजी ने उनसे कहा – "आप क्यों जापान से भारत में दियासलाई आयात करते हैं और उन्हें धन देते हैं? आपको केवल थोड़ी-सी दलाली मिल जाती है। अगर आप भारत में एक दियासलाई कारखाना खोलते, तो आपको लाभ भी होता, आपके देश के कई लोगों को काम मिलता और आपके देश का धन भी वहीं का वहीं रहता।"[१९]

काफी समय के बाद २३ नवम्बर, १८९८ को बॉम्बे से श्रीमान् टाटा जी ने स्वामीजी को पत्र लिखा – "मुझे विश्वास है कि जापान से शिकागो तक के सफर में सहयात्री के रूप में मुझे आप भूले न होंगे। मैं अभी भी भारत में तपस्वी विचारधारा का विकास एवं इस धारा को नष्ट न कर इसके उचित मार्गदर्शन के विषय में आपके दृष्टिकोण को अत्यधिक स्मरण करता हूँ। भारत में अपने परिकल्पित विज्ञान, अनुसंधान की स्थापना के संदर्भ में भी मैं आपके इन विचारों का स्मरण करता हूँ। जिसके विषय में आपने नि:संदेह पढ़ा या सुना होगा।"[२०]

अत: ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसिद्ध टाटा रिसर्च इन्स्टीट्यूट के पीछे भी स्वामीजी का ही प्रभाव था। श्रीमान टाटा स्वामीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे जैसा कि भगिनी निवेदिता के ३ अक्टूबर, १९०१ के पत्र में दिखाई देता है। श्रीमान टाटा ने मुझे बताया कि जब स्वामीजी जापान में थे, तो प्रत्येक व्यक्ति, जिसने भी उन्हें देखा था तुरन्त उनका बुद्ध से सादृश्य देख अचम्भित हो जाता था।"[२१]

१४ जुलाई, १८९३ को स्वामीजी कनाडा के वैंकूअर के लिये कनाडा पैसिफिक लाइन के ६००० टन के एक S.S. Empress of India नामक जहाज में सवार हुये।

द एम्प्रेस ऑफ इंडिया

स्वामीजी अपने साथ केवल ग्रीष्म ऋतु के वस्त्र ही लाये थे अत: प्रशान्त महासागर पार करते समय उन्हें ठंड से कष्ट उठाना पड़ा। २० अगस्त, १८९३ को स्वामीजी अमेरिका से लिखते हैं – "मैं जापान से वैंकूअर पहुँचा, रास्ता उत्तरी प्रशान्त से होकर जाता है। ठंड बहुत अधिक थी और गर्म कपड़ों के अभाव में मुझे बहुत कष्ट हुआ।"[२२] स्वामीजी के भाई महेन्द्रनाथ दत्त इस विषय में और भी जानकारी देते हैं – "जहाज के कप्तान ने स्वामीजी के कष्ट का अनुभव कर अपना गर्म लबादा एवं अन्य ऊनी कपड़े स्वामीजी को दे दिये।"[२३]

'द इम्प्रेस ऑफ इण्डिया' ने ब्रिटिश कोलम्बिया कनाडा के वैंकूअर पर २५ जुलाई, १८९३ मंगलवार के दिन शाम को सात बजे लंगर डाला। यह समाचार अगली सुबह वहाँ के स्थानीय समाचार पत्र में छपा, जो हमने वैंकूअर के स्थानीय पुस्तकालय के एक माइक्रोफिल्म रिकॉर्ड से एकत्र किया है।

दैनिक समाचार एवं विज्ञापक

वैंकूअर

बुधवार, २६ जुलाई, १८९३

द इम्प्रेस ऑफ इण्डिया

सी.पी.आर. स्टीमर इम्प्रेस ऑफ इण्डिया (कैप्टन मार्शल) पिछली शाम ७ बजे अपने निर्धारित समय के अनुसार पूरे यात्रियों और माल को लेकर आ गया। यात्रा के समय मौसम अच्छा एवं शान्त था। शनिवार की शाम एक नृत्य-सभा का आयोजन हुआ, जिसमें अत्यन्त आनन्दप्रद समय बिताया गया। वह २६७ चीनी एवं ९८ जापानियों को खेमे में लेकर आया। निम्नलिखित उसके विशेष खेमें

१९. Mahendra Nath Dutta, Vivekananda Swamijir jivaner Ghatnavdi (बांग्ला) Culcutta : Mahendra publishing committee - 1967 (iii) 2-3, २०. Life, (ii) 397, २१. Prabuddha Bharat Nov. 1936, P. 698,

२२. आलासिंगा को पत्र – २० अगस्त १८९३, २३. स्वामीजीर जीवनेर घटनावली (बांग्ला) (iii) 2

के यात्रियों की सूची है। मिस्टर सी. लुलो भाय मिस्टर टाटा और उनके नौकर, मिस्टर एस. विवस्कानन्द्रा लगभग ५०० लोगों ने 'इम्प्रेस' पर यात्रा की थी। जिसके बड़े कमरे के यात्रियों की सूची में स्वामीजी का नाम अन्त में था। जहाज के कप्तान, कर्मी, डॉक्टर और ऑफिसरों की संख्या ११ थी और निचली श्रेणी के कमरे में २६७ चाइनीज और ९८ जापानी थे।

मेरी लुई बर्क ने लिखा है – "स्वामीजी को एक रात से अधिक वहाँ (वैंकूअर में) रोकने के लिये कुछ भी नहीं था और संभवत: उन्होंने अगली सुबह ही ट्रेन पकड़ी। द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में सवारी करते हुये उस समय उन्होंने अचम्भित कर देनेवाले दृश्यों से परिपूर्ण दक्षिण पश्चिमी कनाडा क्षेत्र की यात्रा की, जहाँ उनके कथनानुसार निचले पहाड़ों पर भी बर्फ की चादर बिछी थी। विनीपेग में जहाँ वे शुक्रवार की रात में पहुँचे, वहाँ उन्होंने ट्रेन बदली, जो उन्हें यूनाइटेड स्टेट्स के मिनेसोंटा के झीलों से भरे पहाड़ों और फार्मों से होती हुई सेंट पॉल तक ले गई। सेंट पॉल से तीसरी ट्रेन उन्हें ४०० मील दूर पूर्व की ओर शिकागो तक ले गई होगी, जहाँ यदि सब कुछ नियत समय पर रहा हो, तो वे रविवार ३० जुलाई, लगभग रात ११ बजे पहुँचे होंगे।"[२४]

स्वामीजी का वैंकूअर से शिकागो तक का मार्ग

(Clorest Possible Connections)

S.S. Empress of India, Ar. Vancouver 7.00 Pm Tue, July, 25 1893

Canadian Pacific Rly. Lv. Vancouver 10.45 am Fri, July 26

Canadian Pacific Rly. Ar. Winnipeg 10.30 Pm, Sat, July 29 (Approxi.) 11.45 am Sat 29

Great Northern Rly., Ar. St. Paul, 7.30 am, Sun, July 30 (Approxi.) 7.05 Sun July 30

Great Western Rly., Lv. St. Paul, 8.00 am, Sun (Approxi.)

Great Western Rly., Ar. Chicago, 10.30 Pm., Sun, July 30

(Vide Chicago Tribune, September 1893)

Courtery : Vedana Society of Northern California.

अमेरिका से स्वामीजी का प्रथम पत्र बहुत बुरा समाचार लेकर आया। २० अगस्त, १८९३ को, स्वामीजी लिखते हैं – "प्रारम्भ के सारे सुमधुर विचार गायब हो चुके हैं और मुझे अब कठिनाइयों से लड़ना है। सैकड़ों बार मेरी इस देश से वापस भारत जाने की इच्छा हुई, किन्तु मैं इस विषय में कृत-संकल्प हूँ कि मुझे दिव्य आदेश प्राप्त हुआ है। मुझे कोई मार्ग नहीं दीख रहा पर उसकी आँखें देख रही हैं और मुझे डटे रहना होगा, जीवन या मृत्यु... भुखमरी, ठंड और मेरी विचित्र पोशाक के कारण सड़कों पर होनेवाला तिरस्कार, इन सबके विरुद्ध मुझे संघर्ष करना है।"[२५]

हालाँकि भारत भेजे गये उनके दूसरे पत्र में अच्छा समाचार आया। २ नवम्बर, १८९३ को स्वामीजी लिखते हैं, 'मेरे अमेरिकी बहनों और भाइयों', इन शब्दों से मैंने सभा को संबोधित किया और तुरन्त ही दो मिनट तक गगनभेदी करतल ध्वनि हुयी और तब मैंने आगे बोला और इसके समाप्त होने पर भावुकतावश लगभग श्रांत होकर बैठ गया। अगले दिन के सभी समाचार-पत्रों ने घोषणा की कि मेरा व्याख्यान ही उस दिन का सर्वश्रेष्ठ व्याख्यान था और मैं सम्पूर्ण अमेरिका में प्रसिद्ध हो गया ... अब मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं। इस शहर में जितने सुन्दर घर हैं, सब मेरे लिये खुल गए हैं।"[२६]

यदि तुम प्रेम करोगे, तो तुम प्रेम पाओगे, यही शाश्वत नियम है। स्वामीजी ने कहा था, 'मैं अमेरिकावासियों से प्रेम करता हूँ', अत: वे भी उन्हें आन्तरिकता से हार्दिक प्रेम करते थे। शिकागो के विश्वधर्म-सम्मेलन के द्वारा स्वामीजी ने पूर्व और पश्चिम के बीच एक मजबूत सम्बन्ध, एक आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित किया। विश्वधर्म-सम्मेलन का यही सारा इतिहास है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – २४. New Discoverries (i) 16. **२५.** आलासिंगा को पत्र – २० अगस्त १८९३, **२६.** आलासिंगा को पत्र – शिकागो २ नवम्बर १८९३

पृष्ठ ४२८ का शेष भाग

है और दूसरा पारमार्थिक सत्य है। जिस संसार को हम देख रहे हैं, वह सत्य है, किन्तु यह आपेक्षिक सत्य है, बाधित सत्य है। दूसरा पारमार्थिक सत्य है, अबाधित सत्य है। यह संसार, यह आपेक्षिक सत्य अध्यस्त है। किन्तु पारमार्थिक सत्य अबाधित है। एकमात्र ब्रह्म ही अबाधित है। सत्य का अर्थ भी अबाधित होता है। **(क्रमशः)**

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३३)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

१८ मई, १९०० : शिकागो (मिस मैक्लाउड को)

पिछली रात मेरे मन में एक सुन्दर विचार उठा था। स्वामीजी किन अर्थों में काली-पूजा को मृत्यु की उपासना कहते हैं – यह तो तुम जानती ही हो! मैं उसी दृष्टि से काली का चिन्तन कर रही थी – तभी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि एक छोटा-सा लाल रंग का मार्ग उनके पास तक चला जा रहा है। परन्तु व्यक्ति ज्यों-ज्यों उनकी ओर अग्रसर होता है, त्यों-त्यों वे (काली) पीछे हटती जाती हैं। इसके बाद ही अनन्त समुद्र है। काली ही मृत्यु हैं।

अब उनका नाम लेते ही सर्वदा मेरे समक्ष एक विशाल काले द्वार का चित्र प्रकट हो उठता है।

४ जून, १९०० : न्यूयार्क (मिस मैक्लाउड को)

स्वामीजी ने अभी-अभी व्याख्यान दिया है।... मैं पहले ही जाकर दूसरी पंक्ति के बाएँ किनारे की सीट पर बैठ गई, लंदन के हर व्याख्यान में मेरा वही स्थान रहा करता था, यद्यपि उस समय मैंने इस बात पर गौर नहीं किया था।

इसके बाद जब हम लोग बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी मेरा मन बुरी तरह सिहर उठा, क्योंकि मुझे अनुभव हुआ कि यद्यपि यह बड़ा सहज प्रतीत होता है, परन्तु यही मेरे जीवन की परीक्षा की घड़ी है। जबसे मैंने यह जीवन स्वीकार किया है, तबसे कितना कुछ आया और चला गया है! मेरा अपना जीवन – अब कहाँ था? खो चुका था, घिसे-पिटे वस्त्र की भाँति फेंका जा चुका था, ताकि मैं इन महामानव के चरणों में नतमस्तक हो सकूँ। क्या यह एक भूल या छलावा सिद्ध होगा या फिर यह चयन की विजय होगी, अगले कुछ मिनटों में ही पता चल जाएगा।

इसके बाद ही वे आए। उन्होंने प्रवेश किया और उनका खड़े होकर शुरू करने के लिए चुपचाप इन्तज़ार करना, यह सब कुछ मानो कोई महान स्तोत्र था; अपने आप में मानो पूजा की एक पूरी प्रक्रिया थी।

आख़िरकार अपना मुख-मण्डल परिहास से उद्भासित करते हुए उन्होंने पूछा कि उन्हें किस विषय पर बोलना है। किसी ने सुझाया – 'वेदान्त दर्शन' और वे बोलने लगे।

"अद्वैत का अर्थ है – सबका एकत्व। इसलिए सभी वस्तुओं का अन्तिम सार-सर्वस्व है – एकत्व। हम जिसे अनेक के रूपों में – भलाई, प्रेम, दु:ख, संसार के रूप में देखते हैं, वह सब वस्तुत: ईश्वर है।... हम अनेक देखते हैं, तथापि सत्ता केवल एक ही तत्त्व की है।... केवल उसकी अभिव्यक्ति के परिमाण में भेद से ही उनके नामों में भेद है। आज का जड़ पदार्थ भविष्य का चैतन्य है। आज का कीट, कल का देवता है। इतना भेदभाव ! जिनसे हमें इतना प्रेम है, ये सभी एक असीम वस्तु के अंश हैं और वह एक असीम वस्तु है – स्वाधीनता की प्राप्ति।...

"हमारे सारे संघर्ष स्वाधीनता के लिए हैं – हम दु:ख या सुख नहीं, बल्कि स्वाधीनता ढूँढ़ते हैं। मनुष्य की जलती हुई अतृप्त पिपासा कभी सन्तुष्ट नहीं होती – सर्वदा 'और अधिक' माँगती रहती है। तुम अमेरिकी लोग सर्वदा 'और अधिक' पाने की कोशिश में लगे रहते हो। गहराई से देखें, तो यह इच्छा मनुष्य की असीमता का द्योतक है। क्योंकि असीम व्यक्ति तभी सन्तुष्ट हो सकता है, जब उसकी इच्छा असीम हो और परिपूर्ति भी असीम हो।..."

इस प्रकार उनकी अद्भुत वाग्धारा प्रवाहित होती रही और हम मानों अनन्त में उन्नीत कर लिए गए, जो हम सामान्य लोगों की दृष्टि से वैसा ही है, जैसे छोटे बच्चे चाँद या सूरज को खिलौने समझकर उन्हें पकड़ने के लिए हाथ फैलाएँ। उनकी अद्भुत वाणी बहती रही –

"असीम की भला कौन सहायता कर सकता है! ... यहाँ तक कि जो हाथ अन्धकार से तुम्हारी ओर आनेवाला है, वह भी तुम्हारा अपना ही हाथ होगा।"

फिर उस ठहरी हुई हृदय-विदारक पीड़ा के साथ, जिसका आभास अन्य कोई भी पीड़ा नहीं दे सकती, वे बोले, "हम असीम स्वप्नद्रष्टा ससीम सपनों को देख रहे हैं।"

जो लोग कहते हैं कि विचार ही सब कुछ है, वाणी का कोई महत्त्व नहीं, वे भूल कर रहे हैं। क्योंकि शब्दों का काव्य केवल वाणी के उत्थान तथा पतन के संगीत द्वारा ही झंकृत हो सकता है। यही जीवन के बाज़ार में इस पूरे घण्टे को एक विराम-विश्राम बनाता है और साथ ही किसी मन्द प्रकाशवाले प्रार्थनागृह के गलियारों में सुना जानेवाला स्तोत्र-गीत बनाता है।

अन्त में, इन विचारों के साथ उपसंहार हुआ, "मैं जो यहाँ खड़ा होकर तुम्हें देख और तुमसे बोल रहा हूँ, यदि क्षण भर के लिए भी उस असीम एकत्व में व्यवधान आ जाए, यदि एक परमाणु को भी कुचलकर उसके स्थान से हटाया जा सके, तो मैं क्षण भर के लिए भी तुम्हें देख या तुमसे बोल नहीं पाता। ... हरि ॐ तत् सत्!"

जहाँ तक मेरा सवाल है – जीवन हमारे लिए जो कुछ प्रस्तुत करता है, उसमें मुझे अनन्त गहराईवाली चीज़ें मिली हैं। यदि कुछ हुआ है, तो बस इतना ही हुआ है – वहाँ बैठना और सुनते रहना। तो भी बौद्धिक चंचलता का संघर्ष – किसी नवीनता की सिहरन – अब नहीं रही।

वहाँ पर खड़ा हुआ व्यक्ति मेरे पूरे जीवन को मानो अपनी हथेली में लिए हुए था। व्याख्यान के दौरान उन्होंने दो-एक बार मेरी ओर देखा और मैं अपने हृदय में जिस बात का अनुभव कर रही थी, वही मैंने उनके नेत्रों में भी देखा – अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ निष्ठा। ये दोनों किसी भी अन्य भाव की अपेक्षा महत्तर हैं।... स्वामीजी कहते हैं, "मूर्ख आदमी यह भूल जाता है कि सारा संग्रह बाद में वितरण करने के लिए ही होता है"।[१]

९ जून, १९०० : न्यूयार्क (मिस मैक्लाउड को)

तुम्हें पत्र भेजने के बाद जब मैं दूसरे कार्य करने के लिये निकली, तो तुरीयानन्द के पास जाकर पता चला कि डेढ़ बजे स्वामीजी के पहुँचने की सम्भावना है!!! वे आये और अपराह्न के सारे समय मैं उनके साथ रही। यहाँ वे मेरे साथ टहलते रहे, परन्तु उनमें थकान के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिये। परन्तु यह स्पष्ट है कि वे दुबारा काफी अस्वस्थ हुए थे। उन्हें एक छोटा-सा आपरेशन भी हुआ था, जो अब तक पूरी तौर से ठीक नहीं हुआ है। रुपयों-पैसों के विषय में वे बड़े सावधान हैं और एक पुराने कंजूस के समान खर्च के पाई-पाई का हिसाब करते हैं – मुझे यह बड़ा मनोरंजक लगता है। **(क्रमशः)**

१. स्वामी विवेकानन्द की पावन स्मृतियाँ, अद्वैत आश्रम, सं. २०१३, पृ. ३६४-६६

प्रभुजी हौं टेरत हौं कब को

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

प्रभुजी हौं टेरत हौं कब को ।
काहे न टेर सुनत करुनामय तुम बिन मेरो अब को ।।
साथी रहत सदा नहिं कबहूँ यह जग निज मतलब को ।
या सो तिहारे हाथ बिकान्यो छोड़ सहारो सब को ।।
सरन में आयो सन्तन सो सुनि तुम्हरो सुयश गजब को ।
जन राजेश को दरशन दीजे काटिये बन्धन भव को ।।

बिगरी बनत-बनत बनि जइहै

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

रे मन! जौ तू हरि-गुण गइहै ।
तौ करुणाकर की करुणा से प्रेम-पदारथ पइहै ।।
चौरासी लख में दुर्लभ तन-जीवन सफल बनइहै ।
आठ पहर, दिन-रात प्रेम के सागर-बीच नहइहै ।।
विषम विषय-विष व्याल-काल ते भूलेहूँ न डँसइहै ।
जीवन-ज्योति जागिहै जग-मग जम के द्वार न जइहै ।।
महा ठगिनि माया के हाथन कबहूँ नाहि ठगइहै ।
यहि विधि से 'मधुरेश' सबै विधि
बिगरी बनत-बनत बनि जइहै ।।

वास्तविक विजेता

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

सर्वविदित है कि स्वामी विवेकानन्द जी मोक्ष की इच्छा के वशीभूत होकर आध्यात्मिक जगत में पदार्पण करना चाहते थे, लेकिन श्रीरामकृष्ण परमहंस जी ने उन्हें नर-नारायण रूपी मानव-सेवा हेतु प्रेरित किया। उनकी प्रेरणा से ही स्वामी विवेकानन्द जी ने मानव-सेवा को अपना अभीष्ट बनाया। वास्तव में जब तक इस संसार में कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार से दुखी है, उसकी उपेक्षा कर सेवा से विमुख होकर धर्म-अध्यात्म की बड़ी-बड़ी बातें करना और उसकी उपलब्धियों के लिये बेचैन रहना अनुचित है। किसी रोते हुए बच्चे को हँसा देना अथवा किसी के घावों पर मरहम लगा देना, किसी पूजा से कम नहीं है। जीवन में अपने महान लक्ष्य को उपेक्षित कर किसी के जीवन को बचाना, श्रेष्ठ पूजा या सेवा है। ऐसे लोगों को स्वामी विवेकानन्द जी का सच्चा उत्तराधिकारी कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

लॉरेंस लेम्यूक्स

वर्ष १९८८ में सिओल ओलंपिक में पदक हासिल करने के लिए लॉरेंस लेम्यूक्स एक दशक से भी अधिक समय से प्रशिक्षण ले रहे थे और निरन्तर कठिन अभ्यास कर रहे थे। अन्त में वह घड़ी आ पहुँची, जब लॉरेंस लेम्यूक्स का सपना साकार होने में थोड़ा-सा ही समय शेष रह गया था। लॉरेंस लेम्यूक्स के गोल्ड मेडल जीतने की प्रबल सम्भावना थी, लेकिन जैसे ही प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हुई, मौसम ने अचानक रंग बदलना शुरू कर दिया। तेज हवाएँ चलने लगीं और उनके कारण शान्त समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। ऐसे में कोई भी हतोत्साहित हो सकता था। लेकिन लॉरेंस लेम्यूक्स ने हार नहीं मानी और ऊँची-ऊँची लहरों के बीच निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे। अत्यन्त चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के बावजूद लारेंस लेम्यूक्स ने शुरूआती बढ़त हासिल कर ली। उनका गोल्ड मेडल लगभग निश्चित हो गया था।

लेकिन ये क्या? विषम परिस्थितियों के कारण उनसे एक चूक हो गई। ऊँची-ऊँची लहरों के कारण दिशा बतलाने वाले संकेतों को देखना असंभव हो गया और लॉरेंस लेम्यूक्स एक संकेत चूक कर आगे बढ़ गए। लारेंस लेम्यूक्स को आगे बढ़ने से पहले उस चूके हुए संकेत तक आने के लिए विवश होना पड़ा और वहाँ से पुन: रेस शुरू करनी पड़ी। इन सबमें कितना समय नष्ट हुआ होगा और इसके कारण पदक हासिल करने के समीप पहुँचना, कितना कठिन हो गया होगा, अनुमान लगाना असम्भव नहीं है। इस चूक और अन्य कठिनाईयों के बावजूद लॉरेंस लेम्यूक्स शानदार प्रदर्शन करते हुए दूसरे स्थान तक जा पहुँचे। उन्हें रजत पदक मिलने की पूरी संभावना नजर आ रही थी और वे तेजी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। उनका उत्साह देखने लायक था।

जब लॉरेंस लेम्यूक्स तेजी से अपनी नाव चलाते हुए सही दिशा में आगे बढ़ रहे थे, तो उन्होंने देखा कि बीच
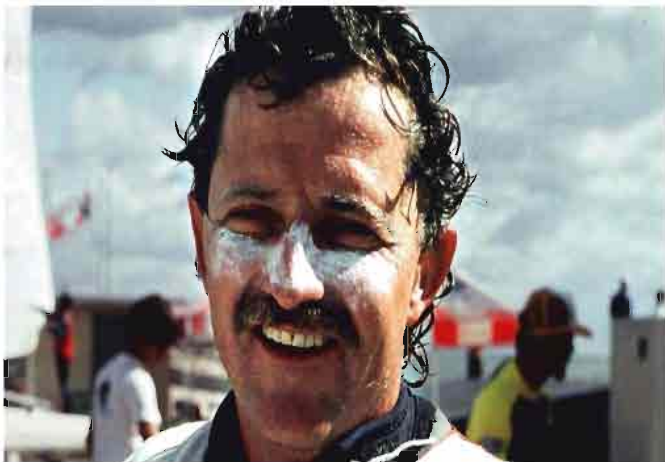
समुद्र में सिंगापुर के नाविकों की एक नाव उलटी पड़ी है। एक आदमी जो बुरी तरह से घायल हो गया था, पलटी हुई नाव की पैंदी को किसी तरह से जकड़े हुए पड़ा था। नाव से कुछ ही दूरी पर एक अन्य व्यक्ति बहता हुआ जा रहा था। समुद्र की स्थिति अब और भी विकराल होती जा रही थी। लॉरेंस एक अत्यन्त अनुभवी नाविक थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि सुरक्षा नौका अथवा बचाव दल के आने तक ये बहता हुआ व्यक्ति बहते-बहते दूर चला जाएगा, और उलटी हुई नाव के ऊपर पड़ा व्यक्ति भी जल्दी ही समुद्र की विशाल लहरों से टकराकर नीचे गिर पड़ेगा और बहने लगेगा। स्थिति ऐसी थी कि तत्क्षण सहायता न मिलने पर दोनों का ही बच पाना असंभव प्रतीत हो रहा था।

लॉरेंस लेम्यूक्स के सामने दो विकल्प थे। पहला विकल्प तो ये था कि लॉरेंस लेम्यूक्स इस दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों की उपेक्षा करके अपना पूरा ध्यान केवल अपने लक्ष्य को पाने के लिए अपनी नौका और रेस पर केन्द्रित करते, जिसके लिए उन्होंने वर्षों तक कड़ा परिश्रम किया था। यह स्वाभाविक भी था और इसमें असंख्य सम्भावनाएँ और आर्थिक हित भी निहित थे। लेम्यूक्स के समक्ष दूसरा विकल्प था दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों की मदद करना। उसे याद आया कि समुद्र में उतरनेवाले व्यक्ति का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य सबसे पहले संकटग्रस्त व्यक्तियों का जीवन बचाना है। यद्यपि उनका मुख्य लक्ष्य किसी भी मूल्य पर प्रतिस्पर्धा जीतना था, जिसके लिए उसने दिन-रात कठोर अभ्यास किया था और जिसके लिए उनके देशवासी उत्सुकतापूर्वक उनके विजयी होने की प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन लॉरेंस लेम्यूक्स ने बिना किसी हिचकिचाहट के फौरन अपनी नाव उस दिशा में मोड़ दी, जिधर उलटी हुई दुर्घटनाग्रस्त नाव समुद्र की विकराल लहरों में हिचकोले खा रही थी।

लेम्यूक्स ने बिना देर किए दोनों नाविकों को एक-एक करके अपनी नाव में खींच लिया और तब तक वहीं प्रतीक्षा किया जब तक कि कोरिया की नौसेना आकर उन्हें सुरक्षित निकाल नहीं ले गई। इसके बाद लॉरेंस लेम्यूक्स ने पुनः अपनी रेस शुरू की, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मेडल उनके हाथ से फिसल चुका था। लॉरेंस लेम्यूक्स इस प्रतिस्पर्धा में बाईसवें स्थान पर आए। इसमें संदेह नहीं कि यदि वे अपने मूल लक्ष्य से विचलित नहीं होते, तो निश्चित रूप से पदक प्राप्त करते। लॉरेंस लेम्यूक्स ने अपनी जीवन की एकमात्र महान उपलब्धि को अपने हाथ से यूँ ही क्यों फिसल जाने दिया, इसका सीधा-सा उत्तर है लारेंस के जीवन मूल्य। लॉरेंस के जीवन मूल्य इस तथ्य पर निर्भर नहीं थे कि विजेता होने के लिये ओलंपिक मेडल प्राप्त करना ही एकमात्र विकल्प है। लॉरेंस ने अपने जीवन में भौतिक उपलब्धियों की बजाय उदात्त जीवन मूल्यों को महत्त्व दिया। यह जीवन मूल्य था हर हाल में दूसरों की मदद अथवा करुणा का भाव।

अपनी करुणा के उदात्त भाव की वजह से लॉरेंस दो व्यक्तियों को मृत्यु के मुख में जाते देख व्यथित हो उठे। इस व्यथा ने लेम्यूक्स को उनकी मदद करने की प्रेरणा दी और उनकी मदद से वे जीवित बच सके। लॉरेंस लेम्यूक्स के जीवन में व्याप्त उदात्त जीवन मूल्यों के कारण उसकी प्राथमिकता बदल गई। लॉरेंस लेम्यूक्स को मेडल जीतने की बजाय किसी की जान बचाना अधिक महत्त्वपूर्ण लगा। उसने यही किया भी। लोग ऐसी स्थिति में प्रायः द्वन्द्व में फँस जाते हैं और सही निर्णय नहीं ले पाते। अनिर्णय की स्थिति में कई बार दोनों ही स्थितियाँ अनियन्त्रित हो जाती हैं अथवा हाथ से निकल जाती हैं। लेकिन लॉरेंस लेम्यूक्स ने ऐसा नहीं होने दिया। लॉरेंस लेम्यूक्स ने तत्क्षण निर्णय लेकर उसे क्रियान्वित कर डाला।

ओलंपिक के इतिहास में अंसख्य लोगों ने मेडल हासिल किए हैं। कई खिलाड़ियों ने तो कई सालों तक लगातार कई-कई मेडल भी हासिल किए हैं। कई मेडल विजेता अपने अच्छे प्रदर्शन और अपनी अन्य विशिष्टताओं के कारण चर्चित भी कम नहीं हुए, लेकिन मेडल न मिलने पर भी जो सम्मान लॉरेंस को मिला वह अद्वितीय है। लॉरेंस लेम्यूक्स को प्रतिस्पर्धा में तो कोई पदक नहीं मिल सका, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय ओलंपिक कमेटी द्वारा लॉरेंस को उनके साहस आत्म-त्याग और खेल भावना के लिये 'पियरे द कूबर्तिन' पदक प्रदान किया। बाद में ये पूछने पर कि क्या ओलंपिक मेडल खोने पर उन्हें कभी दुख नहीं हुआ? तो लॉरेंस ने कहा कि यदि उनके जीवन में दोबारा ऐसी स्थिति आती है, तो वे हर हाल में उसे दोहराना पसन्द करेंगे। सच किसी का जीवन बचाने से अच्छी प्रतिस्पर्धा हो नहीं सकती। लारेंस की करुणा की भावना और वास्तविक मदद ने उन्हें अपने देशवासियों के हृदय का ही नहीं, विश्व के लोगों के हृदय का सम्राट बना दिया। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (९)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी गम्भीरानन्द

किसी महापुरुष की स्मृति-कथा लिखना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसमें लेखक को दूसरों की समालोचना को सहन करना होता है। कोई-कोई कटाक्ष करते हुए कहता है कि यह स्मृति-कथा है या आत्मकथा? अथवा कहीं स्वयं को प्रसिद्ध करने के लिए तो नहीं लिखी है। देखा जाए तो, इन सभी महापुरुषों ने स्वयं के बारे में कुछ लिखा नहीं, यहाँ तक कि वे अपने विषय में कुछ बोलना भी नहीं चाहते थे। उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ पूछने पर वे अधिकांश समय मौन रहते अथवा अन्य प्रसंग उठाकर बात को टाल देते थे। तथापि इनके जीवन के साथ रामकृष्ण संघ का महान इतिहास और अध्यात्म-जीवन का गूढ़ रहस्य जुड़ा हुआ है।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के साथ मेरा तीस वर्ष का सम्पर्क था और सात वर्ष मैं उनके सान्निध्य में रहा। तब अद्वैत आश्रम वैलिंग्टन लेन में था। १ दिसम्बर १९५८ को मैं अद्वैत आश्रम में सम्मिलित हुआ और मुझे प्रुफ-संशोधन का सेवाकार्य प्राप्त हुआ। गम्भीर महाराजजी तब अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे। मैं पुस्तकों के प्रुफ-संशोधन का कार्य करता था। एक दिन उन्होंने किसी प्रसंगवश कहा, "साधु बनने के लिए कूद पड़ना होगा, calculation करने से कोई साधु नहीं बनता।" कार्यक्षेत्र और व्यवहार दोनों में ही वे गम्भीर प्रकृति के थे। इस विषय में उनका गुरुप्रदत्त नाम गम्भीरानन्द सार्थक ही था। किन्तु मेरे साथ वे अत्यन्त स्नेहपूर्वक और खुलकर व्यवहार करते थे। मैं उन्हें अत्यन्त हृदय से श्रद्धा करता था और उनके अपूर्व जीवन को अनुसरण करने का प्रयत्न करता था।

वेलिंग्टन स्थित आश्रम की चौथी मंजिल पर उनका एक छोटा कमरा था। उसमें एक ओर सरिषा आश्रम के स्वामी निर्मोहानन्द जी की एक छोटी-सी चारपाई थी। वे सप्ताह में तीन दिन कोलकता में रहते थे। खिड़की की तरफ पीठ रखकर कैनवास की आरामकुर्सी पर बैठकर स्वामी गम्भीरानन्द जी पढ़ने-लिखने का काम करते थे। कहीं पड़ोसी के घर की ओर दृष्टि न चली जाए, इसलिए उन्हें कभी भी मैंने छत पर टहलते हुए नहीं देखा। क्या अद्भुत संयमित जीवन था! अद्वैत आश्रम में उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी : सुबह साढ़े चार बजे उठकर पाँच बजे से जप-ध्यान करते। इसके बाद छह बजे पत्र इत्यादि का उत्तर लिखकर साधुओं की कक्षा के लिए शास्त्र पढ़ते। साढ़े छह बजे नाश्ता कर सात बजे साधु-ब्रह्मचारियों का क्लास लेते। पाँच वर्ष उनसे मैंने गीता, केनोपनिषद, छान्दोग्य उपनिषद और ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य की टीका सहित पढ़े। क्लास आधे घंटे का रहता था। इसके बाद वे अपना काम शुरू करते। उनकी आँखें ठीक नहीं थीं, इसलिए घण्टाभर काम करने के बाद आँखों को आराम देने के लिए वे बरामद में चहलकदमी

करते अथवा नीचे कार्यालय में आकर थोड़ा घूमते। फिर से ग्यारह बजे तक काम करते। इसके बाद स्नान कर जप करते एवं बारह बजे भोजन कर थोड़ा समाचार-पत्र पढ़ने के बाद एक बजे सो जाते। इसके बाद दो बजे से पाँच बजे तक काम करते और इसी बीच चार बजे एक कप चाय पीते। पाँच बजे घूमने चले जाते और छह बजे तक लौट आते। उनकी दिनचर्या ऐसी थी कि उसके साथ घड़ी का समय मिलाया जाता। इसके बाद वे बरामदे में चहलकदमी करते और भजन गुनगुनाते। तदनन्तर रात्रि नौ बजे तक वे जप-ध्यान करते। खराब आँखों के कारण उनके लिए रात में काम करना एकदम निषिद्ध था। रात्रि नौ बजे भोजन कर साढ़े नौ बजे वे सब साधुओं के साथ पाठ के लिए बैठते। अद्वैत आश्रम में उस समय नियम था कि जो नवागत ब्रह्मचारी हैं, उन्हें क्लास में पाठक के रूप में पुस्तक पढ़नी होती थी। क्लास में नवीन प्रकाशित पुस्तक को पन्द्रह मिनट पढ़ा जाता था। सभी बैठकर सुनते थे। पढ़ते समय यदि मुझसे कुछ गलत उच्चारण होता, तो गम्भीर महाराज बोलते, 'अरे, इस शब्द को देखो तो, आक्सफोर्ड डिक्शनरी क्या बोलती है।' क्लास शुरू होने के पहले ही मैं पुस्तक पढ़ लेता, ताकि सबके सामने लज्जित न होना पड़े। इसके बाद पन्द्रह मिनट बातचीत कर वे अपने कमरे में चले जाते। वे निर्जन में अकेले रहना पसन्द करते। उनके साथ शायद ही कोई मिलने आता। भक्तों के साथ अधिक वार्तालाप करना उनके स्वभाव में नहीं था। झट-पट काम की बात कहकर वे उठ जाते। वे सीधे-सादे व्यक्ति थे। रिंरियाना-रोना-धोना वे पसन्द नहीं करते थे।

कार्य के कारण मुझे प्राय: ही उनके कमरे में जाना होता था। उनके त्वरित कार्य करने की शक्ति को देखकर मैं अवाक् हो जाता। वेलिंग्टन स्थित आश्रम में उन्होंने प्रव्राजिका मुक्तिप्राणा माताजी लिखित निवेदिता की जीवनी की पांडुलिपि को पढ़ा था। एक दिन उनके कमरे में जाकर देखा कि पेट-दर्द से राहत प्राप्त करने के लिए वे आरामकुर्सी पर बैठकर पेट पर गरम पानी की थैली रखे हुए हैं और स्वामीजी के स्मृति-ग्रन्थ reminiscences of Swami Vivekananda के लिए हरिपद मित्र द्वारा लिखित स्वामीजी की स्मृति का अनुवाद कर रहे हैं। मैंने कहा, ''महाराज, आप थोड़ा पलंग पर लेट जाइए, दर्द कम होने पर फिर से काम प्रारम्भ कीजिएगा।'' उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, ''तुम्हें क्या लगता है कि बिस्तर पर लेटने से ही मेरा दर्द चला जाएगा। स्वामीजी का काम करने से मैं दर्द भूल जाता हूँ।'' मैं तो सुनकर अवाक् रह गया। वह बात मैं जीवन-भर नहीं भूलूँगा। तब मेरी आयु २३-२४ वर्ष की थी। उनसे सीखने को मिला कि किस प्रकार स्वामीजी का काम करना चाहिए।

बंगीय साहित्य परिषद से भारतकोष प्रकाशित होने वाला था। इस हेतु सजनीकान्त दास स्वामी गम्भीरानन्द जी से श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन पर तीन लेख प्राप्त करने के लिए आश्रम आए। वे महाराज के सहपाठी थे। प्रत्येक लेख की शब्द-संख्या पाँच-सौ मर्यादित थी। महाराज ने लेख लिखा और जब शब्द गिनकर देखे, तो लेख लगभग हजार शब्द के हो गए थे। वे जानते थे कि मैं साहित्य-चर्चा में रुचि रखता हूँ। मुझे बुलाकर उन्होंने कहा, ''अरे, क्या तुम मेरे लेख के शब्द कम कर सकोगे?'' मैंने प्रत्येक लेख से दो-तीन सौ शब्द कम किए और सुन्दर सजाकर लिखा। उन्होंने एक बार पढ़ा और कहा, ''इन्हें सजनी के पास भेज दो।''

मैंने कहा, ''पाँच-सौ शब्द तो हुए नहीं।'' उन्होंने कहा, 'उससे कुछ फरक नहीं पड़ेगा।' सजनीकान्त दास 'शनिवार चिठि' के सम्पादक और अच्छे साहित्यकार थे।

स्वामी संशुद्धानन्द जी (भवतारण महाराज) ने गम्भीर महाराज से कहा, ''बारासात आश्रम (पश्चिम बंगाल) से महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) का एक स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित होगा, आपको महापुरुष महाराज की संक्षिप्त जीवनी लिखकर देनी होगी।'' महाराज तुरन्त सहमत हो गए। उस समय वे स्वामीजी के कम्पलीट वर्कस की अनुक्रमणिका तैयार कर रहे थे। वे बड़े परिश्रमी थे। इतनी व्यस्तता की बीच भी अपने गुरुदेव (महापुरुष महाराज) की जीवनी लिखी और मुझे देकर बोले, 'मेरे हाथ का लिखा इतना अच्छा नहीं है। तुम एक बार अच्छी तरह लिखकर प्रेस में भेज दो।' एक अन्य दिन अद्वैत आश्रम की न्यासी बैठक की विषय-सूची को लिखकर मुझे टाईप करने के लिए दिया। जब मैं टाईप कर उनके पास ले गया, तो उन्होंने बिना देखे उस पर हस्ताक्षर कर दिए और उसे सभी न्यासियों के नाम भेजने के लिए कहा। मैंने कहा, ''आपने बिना पढ़े ही सही कर दी।'' उन्होंने कहा, ''तुमने तो पढ़ा ही है। तो फिर मैं दुबारा क्यों पढ़ूँ।'' इस प्रकार वे हमारे भीतर आत्मविश्वास जगा देते थे। मुझसे कुछ भूल न हो जाए, इसलिए मुझे

सदा सावधान रहना पड़ता था।

हमारे एक ब्रह्मचारी अद्वैत आश्रम में भंडारी थे। उन्होंने दक्षिण भारतीय एक ब्रह्मचारी से मजाक करने के लिए उनके खाने के टोस्ट में कुछ अखाद्य वस्तु डाल दी। किन्तु वे ब्रह्मचारी खाद्य-अखाद्य पदार्थों के विषय में बड़े कठोर थे। उन्हें खाते समय तो कुछ पता नहीं लगा। किन्तु जब पता लगा, तो वे अस्वस्थ हो गए और उन्होंने गम्भीर महाराज को बताया। महाराज ने भंडारी ब्रह्मचारी को बुलाकर कहा, "यह प्रथम और अन्तिम बार है। इसके बाद यदि तुमने इस प्रकार व्यवहार किया, तो तुम्हें रामकृष्ण मिशन से बाहर जाना होगा। यह अच्छी तरह समझ लो कि ठाकुर किसी का भाव नष्ट नहीं करते थे।" वे अप्रसन्न होने पर कितना कठोर हो सकते थे, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। एक अन्य दिन सन्ध्या के समय एक ब्रह्मचारी और एक साधु कैरम खेल रहे थे। स्वामी गम्भीरानन्द नीचे से सीधे ऊपर आए और कहा, "यह सन्ध्या का समय है। जप-ध्यान के लिए जाओ।" उन्होंने ऐसा कड़े शब्दों में कहा कि सभी डर गए। उसके अगले दिन ही कैरमबोर्ड सरिषा आश्रम के छात्रों के लिए भेज दिया। एक अन्य दिन कुछ साधु एक विशेष सिनेमा-अभिनय देखने गए। आश्रम में केवल मैं और गम्भीर महाराज ही थे। रात्रि भोजन के बाद वे बोले, "अरे, तुम गए नहीं?" मैंने कहा, "मुझे वह सब अच्छा नहीं लगता।" उन्होंने कहा, देखो, "साधुजीवन में बाहर वह सब देखने जाना ठीक नहीं। उससे बहिर्मुखी वृत्ति हो जाती है।"

अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष को गर्मी के छह महीने मायावती और ठण्डी के छह महीने कोलकाता में रहना होता था। एक बार किसी कार्य के विषय में मैंने गम्भीर महाराज को मायावती में पत्र भेजा। उन्होंने १५.०५.१९६१ को पत्र के उत्तर में लिखा, "देखो, बचपन में 'नहीं कर पाऊँगा' नामक एक कविता पढ़ी थी, वही तुम्हें लिख रहा हूँ और यह तुम्हारे पत्र का उत्तर भी है।

यह मत कहो कि मैं नहीं कर सकता
क्यों नहीं कर सकते, यह सोचो बार बार
दस लोग जो कर सकते हैं, तुम भी वह कर सकते हो
कर सको या नहीं, करो प्रयत्न फिर एक बार
न कर सकने से मुख पर नहीं लाओ भार

पत्र संक्षिप्त था। किन्तु चिरकाल के लिए वह मन में आबद्ध हो गया।

मायावती में उनके साथ रहने का मुझे अवसर नहीं प्राप्त हुआ। किन्तु कोलकाता में उन्हें ठाकुर-स्वामीजी और वेदान्त विषयक ग्रंथ प्रकाशन हेतु अमानवीय परिश्रम करते देखा है। बिना पढ़े या सम्पादन किए पुस्तक को प्रेस में छापने के लिए नहीं भेजते थे। पुस्तक समाप्त हो गई है, यह उन्हें पहले से ही बताना पड़ता था। इसी बीच वे अपना लिखना जारी रखते थे। ब्रह्मसूत्र का अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए उन्हें पाँच वर्ष लगे थे। इसके बाद एक छोटे-से टाइपराइटर द्वारा उन्होंने स्वयं ही टाइप करना शुरू किया था। व्यवस्थापक महाराज ने एक पेशेवर टाइपिस्ट लगाकर उन्हें इस कार्य से राहत दी थी। स्वामीजी की जन्मशताब्दी के समय स्वामीजी का मन्मथनाथ भट्टाचार्य को लिखा एक नया पत्र प्राप्त हुआ था। उन्होंने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया और उसे स्वामी माधवानन्द जी महाराज को बेलूड़ मठ में देने के लिए मुझे कहा। उसे पाकर स्वामी माधवानन्द जी ने कहा, "गम्भीरानन्द ने जब अनुवाद किया है, तो फिर मुझे देखने की क्या आवश्यकता है।" जो भी हो, उन्होंने अनुवादित पत्र को देखकर उसे गम्भीरानन्द जी को भेज दिया। स्वामीजी के कम्पलीट वर्कस् में कुछ त्रुटि न हो, इसके लिए स्वामी गम्भीरानन्द जी आप्राण परिश्रम करते थे। मेरी लुई वर्क के 'न्यू डिस्कवरीज' से जिस प्रकार सामग्री चयन कर उन्होंने स्वामीजी के कम्पलीट वर्क्स का तथ्य संयोजन किया है, उससे उनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। (क्रमशः)

आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो

शिकागो धर्म-महासभा : सफलता का रहस्य और ऐतिहासिक महत्त्व

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर

शिकागो धर्म-महासभा का आयोजन स्वामी विवेकानन्द की महिमा को स्थापित और प्रकाशित करने के लिए ही हुआ था। यह बात सुनने में अटपटी अवश्य लग सकती है, पर इस प्रकार की भविष्यवाणी स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने की थी। भारत से शिकागो प्रस्थान करने के लगभग डेढ़ महीने पहले अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द जी को उन्होंने कहा था कि हरिभाई, (स्वामी तुरीयानन्द) मैं अमेरिका जा रहा हूँ। शिकागो धर्म-महासभा के आयोजन और तैयारियों के सम्बन्ध में जो कुछ भी तुम सुन रहे हो, वह सब केवल मेरे लिए आयोजित की जा रही है।[१] कालान्तर में हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द की यह भविष्यवाणी अक्षरश: सत्य सिद्ध हुई।

प्रश्न उठता है कि स्वामीजी ने ऐसा भविष्य-कथन कैसे किया? वस्तुत: स्वामीजी एक योगसिद्ध महामनीषी थे जिन्हें ईश्वर की शक्ति पर पूरा विश्वास था और उन्हें अपने जीवन और प्रयोजन का पूरा आभास था। सन् १८९० में वराहनगर मठ से परिव्रजन के लिए जब वे निकले तब उन्होंने अपने एक गुरुभाई को कहा था, 'मैं इस बार तब तक वापस नहीं लौटूँगा, जब तक मैं ऐसी शक्ति प्राप्त न कर लूँ कि अपने स्पर्श मात्र से लोगों का जीवन परिवर्तित कर सकूँ।'[२] कालान्तर में हम देखते हैं कि स्वामीजी के जीवन में यह बात पूर्णत: सत्यापित हुई।

स्वामीजी को जो असीम आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई, वह उनके दृढ़ संकल्प, कठिन साधना और श्रीरामकृष्णदेव

१. Life of Swami Vivekananda, Kolkata : Advaita Ashrama, 1989, 1:395,

२. स्वामी विवेकानन्द : एक जीवनी (स्वामी निखिलानन्द कृत) कोलकाता, अद्वैत आश्रम, १९९८, पृ. ८८

की असीम कृपा का परिणाम था। उनके परिव्राजक जीवन में ऐसा एक भी अवसर नहीं आया था, जब उन्होंने कोई सार्वजनिक वक्तव्य दिया हो। एक बार वे त्रिवेन्द्रम में प्रो. के. सुन्दरराम अय्यर के यहाँ अतिथि के रूप में रुके हुए थे। स्वामीजी ने उन्हें बताया था कि मैसूर के महाराजा ने उन्हें शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए अनुरोध किया है। स्वामीजी के व्यक्तित्व और विद्वता से प्रभावित प्रो. अय्यर ने स्वामीजी को एक सार्वजनिक व्याख्यान देने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि उन्होंने कभी जनता के बीच में वक्तव्य नहीं दिया है और यदि वे ऐसा करते हैं तो वे निश्चित रूप से हास्यास्पद सिद्ध होंगे। उनकी ऐसी बात सुनकर प्रो. अय्यर ने उनसे कहा कि यदि ऐसी बात है, तो फिर शिकागो की धर्म-महासभा के विराट श्रोता-समुदाय का सामना वे कैसे करेंगे। उनके प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने जो कहा वह उत्तर उन्हें टालने वाला प्रतीत हुआ। स्वामीजी ने कहा, "यदि परमेश्वर की इच्छा हुई कि मैं उनका प्रवक्ता बनकर सत्य तथा पवित्र जीवन की दिशा में जगत का मार्गदर्शन करुँ, तो वे निश्चित रूप से मुझे इस कार्य के लिए आवश्यक क्षमता और गुणों से सम्पन्न करेंगे।" उनके उत्तर से असहमत होते हुए प्रो. अय्यर ने कहा, "मैं ऐसे किसी दैवी सहायता की सम्भावना में विश्वास नहीं करता।" उनका यह कथन सुन स्वामीजी ने क्रुद्ध होते हुए तत्काल घनप्रहार की भाँति उनका तिरस्कार करते हुए कहा कि भले ही वे (प्रो. अय्यर) दैनन्दिन आचारों तथा व्यवहार से एक कट्टर हिन्दू जैसे हैं, तथापि वे ह्रदय से सन्देहवादी हैं क्योंकि वे विश्व ब्रह्माण्ड के कार्यों में सहायता पहुँचाने में परमात्मा की क्षमताओं के विषय में एक सीमा-रेखा खींचने को तैयार हैं।[३]

स्वामीजी का ईश्वर के प्रति ऐसा दृढ़ विश्वास उनके जीवन में पूरी तरह फलित हुआ। शिकागो धर्म-महासभा में भाग लेने के पूर्व उनके समक्ष ऐसी अनेक कठिनाईयाँ आईं, जो उन्हें धर्ममहासभा में भाग लेने से वंचित कर रही थीं। शिकागो पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि जो धर्ममहासभा जुलाई में होनेवाली है, वह सितम्बर तक स्थगित कर दी गयी है तथा उसमें भाग लेने के लिए किसी संस्था का अधिकृत प्रतिनिधि होना चाहिए। स्वामीजी के पास किसी संस्था के प्रतिनिधि होने का प्रमाण-पत्र नहीं था। उन्हें यह भी मालूम पड़ा कि प्रतिनिधियों के नामांकन की अंतिम तिथि निकल गयी है। उनके पास शिकागो में इतने दिन रुकने के लिए आवश्यक धन भी नहीं था। ऐसी स्थितियों में उनके धर्ममहासभा में भाग ले सकने की संभावना लगभग समाप्त हो गयी थी। अत: एक दिन स्वामीजी विषादग्रस्त स्थिति में बैठे थे। ऐसे समय में उन्हें अचानक श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन हुए। 'तुम भाग लोगे और वहाँ सफल भी होगे। विरोधी लोगों को कीड़ो के समान समझो।'[४] इस प्रकार हम देखतें हैं कि ईश्वर की कृपा से उनकी सारी समस्याएँ धीरे-धीरे दूर होती गयीं और वे धर्म महासभा में भाग लेने में सफल हुए। धर्ममहासभा में उनके वक्तव्य की सफलता भी 'ईश्वरीय कृपा का परिणाम' कहा जा सकता है, क्योंकि सार्वजनिक वक्तव्य देने का उनका अनुभव त्रिवेन्द्रम में प्रो. अय्यर के यहाँ अतिथि के रूप में रहते हुए जितना था, उससे अधिक नहीं हुआ था। धर्म-महासभा में प्रथम दिवस अत्यन्त प्रबुद्ध और विशाल संख्या में उपस्थित श्रोता समुदाय को देखकर उनका मन भय से काँपने लगा था। अन्य सभी वक्ता अपने-अपने भाषणों को अच्छी तरह से तैयार करके आये थे, पर उन्होंने वहाँ भाषण देने के लिए कोई तैयारीं नहीं की थी।

अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा "नि:संदेह मेरा ह्रदय धड़क रहा था और जिह्वा प्राय: सूख गयी थी। मैं इतना घबड़ाया हुआ था कि सबेरे बोलने की हिम्मत ही नहीं हुई।"[५] प्रात:कालीन सत्र में उन्हें

३. स्वामी विवेकानन्द की पावन स्मृतियाँ, कोलकाता, अद्वैत आश्रम, २०१३, पृ. १०२

४. Swami Vivekananda's Message of one Humanity and the Parliament of Religions (Article of Swami Gautamananda) Published in Vedanta Kesari, December 1918, page - 40,

५. युगनायक विवेकानन्द (स्वामी गम्भीरानन्द कृत), रामकृष्ण मठ, नागपुर २००८, खंड २, पृ. २५

बोलने के लिए कहने पर उन्होंने सभापति महोदय से कहा कि वे उन्हें थोड़ी देर बाद अवसर दें। कई बार बुलाए जाने पर भी वे बोलने के लिए तैयार नहीं हुए और अपनी बारी स्थगित करवाते रहे। अपराह्न सत्र में चार प्रतिनिधियों के भाषण के बाद उन्हें पुन: बुलाया गया। उस समय भी वे भयमुक्त नहीं हुए थे, पर उन्हें शायद लगा कि वह उन्हें अंतिम अवसर मिला है। अत: वे उठे और उनके ही शब्दों में, "देवी सरस्वती को प्रणाम करके मैं आगे बढ़ा और डॉ. बैरोज ने मेरा परिचय दिया। मेरे गैरिक वस्त्रों के कारण श्रोताओं का ध्यान किंचित् आकृष्ट हुआ था; अमेरिकावासियों को धन्यवाद तथा और भी दो एक बातें कहकर मैंने एक छोटा सा व्याख्यान दिया।' जब मैंने 'अमेरिकावासी बहनों और भाइयों' कहकर सभा को सम्बोधित किया, तो इसके साथ दो मिनट तक ऐसी घोर करतल-ध्वनि हुई कि कानों में अँगुली देते ही बनी। तब मैंने बोलना प्रारम्भ किया और जब अपना वक्तव्य समाप्त करके बैठा, तो भावावेश से मानों अवश हो गया था। अगले दिन अखबारों में छपा कि मेरा भाषण ही उस दिन सर्वाधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ा था। अत: पूरा अमेरिका मुझे जान गया। महान टीकाकार श्रीधर स्वामी ने सत्य ही लिखा है, 'मूकं करोति वाचालं' अर्थात् जिन प्रभु की कृपा गूँगे को भी धाराप्रवाह वक्ता बना देती है, उसकी जय हो! उसी दिन से मैं विख्यात हो गया और जिस दिन मैंने हिन्दू धर्म पर अपनी वक्तृता पढ़ी, उस दिन तो हॉल में इतनी भीड़ हुई जितनी पहले कभी नहीं हुई थी।[६]"

शिकागो धर्ममहासभा के अपने प्रथम दिन में वक्तव्य के सम्बोधन 'अमेरिकावासी बहनो और भाइयो' को सुनकर उपस्थित जनसमुदाय जो भाव-विह्वल हुआ उसका कारण क्या था? क्या वह प्रभाव स्वामीजी के विशिष्ट और आकर्षक पोशाक का परिणाम था या उनके सुन्दर शरीर-सौष्ठव का प्रभाव था कि हजारों श्रोताओं ने उनके सम्बोधन को सुनकर असीम हर्ष अभिव्यक्त किया। यह सब उनके बिना जानते हुए अचेतन रूप से सम्पन्न हो गया। वे स्वयं नहीं जान रहे थे कि वे क्यों उस अनजान संन्यासी के मुख से उद्गीर्ण उन दो शब्दों के लिए इतनी खुशी का अनुभव कर रहे थे और क्यों वे उनकी जय-जयकार कर रहे थे। उनके लिए न तो उनका चेहरा ही परिचित था और न ही उनका नाम विख्यात हुआ था। वे उस देश में अजनबी थे, लोग उनके बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। उस धर्ममहासभा में बहुत-से प्रख्यात वक्ता और विद्वान उपस्थित थे, जिन्होंने पहले अपने पाण्डित्यपूर्ण और प्रभावशील वक्तव्य द्वारा लोगों का हृदय जीत लिया था, पर स्वामीजी के साथ वैसी बात नहीं थी। उस हाल में बहुत थोड़े ही व्यक्ति ऐसे थे, जिनसे स्वामीजी पहले मिले थे और उनसे प्रभावित थे, पर वहाँ उपस्थित श्रोताओं की विशाल संख्या उनसे सर्वथा अपरिचित थी। उसके बावजूद उनके संबोधन के शब्दमात्र से ही मानों वे हर्ष और आनन्द की उच्चतर भावभूमि में प्रतिष्ठित हो गये। उनके इस चमत्कार का रहस्य क्या था?

वस्तुत: आकर्षण शब्दों में नहीं रहता। आकर्षण रहता है, वक्ता के जीवन और उसकी अनुभूति में। महात्मा गाँधी तो कोई महान वक्ता नहीं थे, पर जब वे बोलते थे, आह्वान करते थे, तो हजारों-हजारों लोग अपने प्राणों की परवाह न करके मर-मिटने के लिए तैयार हो जाते थे। सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में कौन-सा आकर्षण था कि उनकी पुकार से आजादी प्राप्त करने के लिए हजारों लोग अपना खून देने के लिए तैयार हो गए। वस्तुत: वह उनके शब्दों का प्रभाव नहीं था। वह प्रभाव था उनके जीवन की सारी साधना, तपस्या, शुचिता और पवित्रता का, जो शब्दों के माध्यम से उनके मुख से मुखरित होता था।

स्वामी विवेकानन्द के संदर्भ में भी ठीक यही बात थी। स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषणों में बारंबार इस बात का उल्लेख किया कि वे जो कुछ भी बोल रहे हैं, उनके गुरु श्रीरामकृष्णदेव ही बोल रहे हैं। वे अपने महान गुरु श्रीरामकृष्णदेव के भाव-संप्रेषण हेतु एक यंत्र मात्र हैं। श्रीरामकृष्णदेव ने परम तत्त्व के एकत्व की दिव्यतम अनुभूति अपने जीवन में की थी। हमारे उपनिषदों में 'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत' की अनुभूति उनके जीवन में पूरी तरह साकार हो गयी थी। सारे संसार को उन्होंने जगन्माता के दिव्य आलोक से आलोकित पाया था। सारा संसार उनके लिए ईश्वरमय था। एक दिन प्रकृति की दिव्य छटा को देखकर वे तन्मय हो गए थे और उसी समय उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति हरी-हरी घास को रौंदता हुआ चला

६. वही, २६-२७

आ रहा है। प्रकृति के साथ ऐसा तादात्म्य उन्होंने स्थापित कर लिया था कि उनको अनुभव हुआ कि वह व्यक्ति उनकी छाती को ही रौंदता हुआ चला जा रहा है। पीड़ा से वे कराह उठे और लोगों ने आश्चर्य से देखा कि उस व्यक्ति के पैरों के निशान श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में अंकित हो गए। दो मल्लाहों को आपस में लड़ते देख उन्होंने अनुभव किया कि मार उन्हीं पर पड़ रही है। अपनी तीर्थयात्रा के दौरान अकालपीड़ित, त्रस्त सांथाल नर-नारियों को देखकर वे करुणा से इतने अधिक विगलित हो गए कि घंटों उन्हीं के बीच बैठकर फूट-फूटकर रोते रहे। एक दिन पूजा के लिए फूल चुनते समय उन्होंने देखा कि स्वयं प्रकृति फूलों की माला लिए जगन्माता की पूजा कर रही है। फिर उस दिन वे फल नहीं चुन पाये। एक दिन पूजा करते समय उन्होंने देखा कि मन्दिर का फर्श, दरवाजा, खिड़कियाँ, छत सबमें एक ईश्वरीय शक्ति तरंगायित हो रही है। कलकत्ते में सड़क के किनारे एक वेश्या को देखकर भावविह्वल स्वरों में श्रीरामकृष्णदेव उनसे कहने लगे, "माँ! एक रूप में तुम यहाँ सड़क में खड़ी हो और दूसरे रूप में तुम मंदिर में पूजित होती हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।"

तो, एकत्व की ऐसी-दिव्य अनुभूति श्रीरामकृष्णदेव ने की थी। अपनी महासमाधि के तीन-चार दिन पूर्व उन्होंने पूर्ण एकान्त में नरेन्द्रनाथ को अपने पास बुलवाया। उन्होंने नरेन्द्रनाथ को अत्यन्त प्रेममय दृष्टि से देखा और समाधि में डूब गए। नरेन्द्रनाथ को भी ऐसा अनुभव हुआ कि विद्युत-प्रवाह जैसी शक्ति उनके शरीर के भीतर प्रविष्ट होती जा रही है और वे भी उच्च भावभूमि में प्रतिष्ठित हो गए। जब उनका भाव समाप्त हुआ, तो उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्णदेव की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है और उन्होंने नरेन्द्रनाथ से कहा, 'आज मैंने तुम्हें अपना सब कुछ दे दिया है। अब मैं केवल एक फकीर हो गया हूँ, जिसके पास कुछ भी नहीं है। इस शक्ति के द्वारा तू जगत का बहुत-सा कार्य सम्पन्न करेगा और उसके समाप्त होते ही अपने मूल स्थान में लौट जाएगा।'[७] इस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव की सारी शक्तियाँ नरेन्द्रनाथ में समाहित हो गयी थीं। श्रीरामकृष्णदेव के पुनीत सान्निध्य में रहते हुए उन्होंने भी कठोर साधना और तपस्या की थी। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द का जीवन आध्यात्मिक शक्तियों का पूँजीभूत स्वरूप हो गया था। जब उन्होंने धर्ममहासभा में उपस्थित विशाल जन-समुदाय को 'अमेरिकावासी बहनो और भाइयो' के रूप में संबोधित किया, तो वह मात्र सम्बोधन ही नहीं था, वह 'बहनो और भाइयो' शब्द भगवान श्रीरामकृष्णदेव के

शिकागो प्रदर्शनी का भव्य दृश्य

७. वही, खंड १, पृ. १७३

एकत्व की चिरकालिक अनुभूति की प्रांजल अभिव्यक्ति थी। श्रीरामकृष्णदेव का विश्वजनसमुदाय के प्रति अकृत्रिम और निष्कपट प्रेम स्वामी विवेकानन्द को यंत्र बनाकर उनके मुख से उन दो शब्दों - बहनो और भाइयो - के रूप में नि:सृत हुआ। अमेरिकावासियों को यह लगा मानो प्रेम और एकत्व की एक घनीभूत भावना उनके मन, प्राण और हृदय को एक ही झटके में परितृप्त कर दे रही है और यही कारण है कि उन शब्दों को सुनने मात्र से वे अभिभूत हो गए और तालियों की विपुल गड़गड़ाहट से अपना आनन्द व्यक्त किया।

धर्ममहासभा में अद्वितीय सफलता के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द के जीवन का दूसरा अध्याय प्रारम्भ हुआ। जो विवेकानन्द पहले सार्वजनिक सभाओं में वक्तव्य देने से कतराते थे, जो विवेकानन्द शिकागो धर्ममहासभा में अपने पहले दिन के वक्तव्य देने के पहले ही भयाक्रान्त हो रहे थे, वे अपने एक ही दिन के मात्र ५ मिनट के वक्तव्य में विश्वप्रसिद्ध वक्ता बन गये। धर्ममहासभा की समाप्ति के बाद तो उन्हें अनेक स्थानों से व्याख्यान देने के लिए आमंत्रण मिलने लगे। स्वामीजी ने अनवरत वक्तव्य देना प्रारंभ कर दिये। उनके वक्तव्य अत्यन्त प्रेरणादायी और अनुभूतिसम्पन्न होते थे। लोग मंत्रमुग्ध होकर उनके वक्तव्यों को सुनते। उनके वक्तव्यों का इतना प्रभाव होता था कि उनको सुनने के लिए लोग घंटों बैठे रहते थे। 'नार्दम्प्टन डेली हेराल्ड' ने अपने ११ अप्रैल, १८९४ के अंक में स्वामीजी के वक्तव्यों के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा – "कार्यक्रम के अन्त में ही विवेकानन्द का भाषण रखा जाता, इसका उद्देश्य था लोगों को अन्त तक बैठाये रखना। किसी गरम दिन जब किसी नीरस वक्ता के लम्बे भाषण के फलस्वरूप सैकड़ों लोग सभागृह से बाहर निकलने लगते, तब उस विराट श्रोतृमण्डली को पकड़े रहने के लिए केवल इतनी ही घोषणा पर्याप्त होती कि अन्तिम प्रार्थना के पूर्व विवेकानन्द कुछ कहेंगे (और उन स्वनामधन्य व्यक्ति के पन्द्रह मिनट का व्याख्यान सुनने के लिए वे लोग घंटों बैठे रहते।)[८]"

सप्ताह में उन्हें बारह, पन्द्रह या उससे भी अधिक वक्तव्य देने होते। कठिन परिश्रम से उनका शरीर और मन थक जाता। कई बार ऐसा होता कि अगले दिन वक्तव्य देने के लिए कोई नया विचार उनके पास नहीं होता, तब रात्रि में नींद में उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि कोई व्यक्ति उनके पास खड़ा होकर वक्तव्य दे रहा है - सर्वथा मौलिक, अनुपम और विलक्षण विचार प्रकट कर रहा है। दूसरे दिन स्वामीजी उन्हीं विचारों को अपने वक्तव्य में प्रकट करते। कई बार आनेवाली आवाज इतनी जोर से होती कि लोग स्वामीजी से पूछते, "स्वामीजी! गत रात्रि आप किसके साथ इतने जोर-जोर से बातें कर रहे थे।"[९] स्वामीजी उनके प्रश्नों को टाल जाते।

इन सब पृष्ठभूमियों के परिप्रेक्ष्य में जब हम त्रिवेन्द्रम में प्रो. अय्यर के साथ स्वामीजी की हुई वार्ता को स्मरण करते हैं, तो हम पाते हैं कि श्रीरामकृष्णदेव ने स्वामीजी के लिए जो कार्य सुनिश्चित किए थे, उसको सम्पूर्ण रूप से संपादित करने के लिए उन्होंने उन्हें शक्ति भी प्रदान की थी। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं निकाल लेना चाहिए कि इन कार्यों को करने में स्वामीजी का कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं था। वस्तुत: स्वामी विवेकानन्द तो जन्मसिद्ध योगी थे। श्रीरामकृष्ण प्राय: कहा करते कि नरेन्द्र ब्रह्मलोक के निवासी सप्त ऋषियों में अन्यतम है। सप्तर्षिमंडल के उन महान ऋषि को श्रीरामकृष्णदेव ने अपने कार्य के लिए इस पृथ्वीलोक में आमंत्रित किया था। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव ने जब नरेन्द्रनाथ से ब्रह्म समाज का भजन 'मन चलो निज निकेतन' सुना, भजन के समाप्त होने के बाद अचानक नरेन्द्रनाथ का हाथ पकड़कर उन्हें उत्तरी बरामदे की ओर ले गये ओर फिर हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे, "मैं जानता हूँ प्रभु, आप ही वे पुरातन ऋषि, नररूपी नारायण हैं, जीवों की दुर्गति का नाश करने के लिए आपने पुन: शरीर धारण किया है।"[१०] तो ऐसे महान आत्मा विवेकानन्द थे। फिर, श्रीरामकृष्ण के पुनीत सामीप्य में रहते हुए उन्होंने कठोर साधनाएँ की थी और उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति 'निर्विकल्प समाधि' का अनुभव किया। श्रीरामकृष्णदेव को अपने सभी शिष्यों में नरेन्द्रनाथ ही योग्यतम लगे, तभी उन्होंने अपनी भावधारा के प्रचार-प्रसार के लिए नरेन्द्रनाथ को अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्रदान की। इस प्रकार नरेन्द्रनाथ की उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियों की शक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की सारी आध्यात्मिक शक्तियाँ एकाकार हो गयीं और फिर इस महान आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न होकर स्वामी विवेकानन्द ने सारे विश्व के

८. वही, खंड २, पृ. ३१-३२

९. Complete Works of Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata 7/124, १०. स्वामी विवेकानन्द : एक जीवनी, अद्वैत आश्रम, कोलकाता १९९८, पृ. २५

अध्यात्मीकरण का महान बीड़ा उठाया और इसका प्रारंभ उन्होंने भौतिकवादी पाश्चात्य देशों से ही किया। लन्दन में दिनांक २३ अक्तूबर, १८९५ को एक संवाददाता को स्वामीजी ने कहा था, "मैं एक ऐसे दर्शन का प्रचार कर रहा हूँ, जो संसार के सारे धर्ममतों की आधारशिला बन सकता है। मैं उन सबके प्रति अत्यन्त सहानुभूति रखता हूँ - मेरा उपदेश किसी धर्म का विरोधी नहीं है। मैं व्यक्ति की ओर ही विशेष ध्यान देता हूँ, उसे तेजस्वी बनाने की चेष्टा करता हूँ। मैं तो यही शिक्षा देता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति साक्षात् ब्रह्म है और सबको उनके इसी आंतरिक ब्रह्मभाव के सम्बन्ध में सचेत होने के लिए आह्वान करता हूँ। जाने या अनजाने, वस्तुतः यही सभी धर्मों का आदर्श है।"[११]

शिकागो प्रदर्शनी का विहंगम दृश्य

शिकागो धर्म-महासभा के आयोजन की पृष्ठभूमि भी रोचक है। यूरोप के क्रिस्टोफर कोलम्बस ने सन् १४९२ में अमेरिका की खोज की। सन् १८९२ में अमेरिका की खोज के ४०० वर्ष पूर्ण हुए। इस ४०० वर्ष पूर्ण होने के अवसर को अमेरिकावासियों ने एक भव्य समारोह के रूप में मनाने का निर्णय लिया। शिकागो के मीशीगन झील के तट पर यह समारोह एक विशाल मेले के रूप में परिणत हुआ। यह मेला इतने विराट रूप में आयोजित किया गया कि इसे पूरा देखने के लिये लगभग तीन सप्ताह का समय लगता था और १५० मील पैदल चलना पड़ता था। यह मेला ६ माह तक चला और ७२ देशों के २ करोड़ ७५ लाख लोगों ने इस मेले को देखा।

यह मेला अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। इसमें ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए अद्यतन उपलब्धियों का प्रदर्शन किया गया था। आयोजकों ने यह सोचा कि इस प्रदर्शनी में बौद्धिक और वैचारिक जगत की उपलब्धियों का भी प्रदर्शन होना चाहिए। इसके लिये चार्ल्स केरल बानी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गयी जिसका नाम था - 'वर्ल्डस कांग्रेस एग्जिलरी ऑफ कोलम्बियन क्सपोजिशन'। इसके अन्तर्गत २० अलग-अलग समितियाँ बनीं, जिनके अधिवेशन १५ मई से २८ अक्तूबर, १८९३ तक हुए। इन समितियों में संगीत, साहित्य, शिक्षा, इंजीनियरींग, कला, दर्शन, विज्ञान, जल, स्वास्थ्य, शासन, महिला-प्रगति, समाचार पत्र, दवाएँ, शल्य-चिकित्सा, मद्य-निषेध, नैतिक व सामाजिक-सुधार, वित्त व व्यापार, न्याय-व्यवस्था, प्रेस एवं अन्य कुछ विषयों पर विचार-विमर्श हुए। इसी तारतम्य में ११ सितम्बर से २७ सितम्बर१८९३ तक यह धर्ममहासभा आयोजित की गयी, उन विभिन्न समितियों में हुई चर्चाओं को आज लोग सब भूल चुके हैं, पर यह धर्ममहासभा अभी भी प्रासंगिक बनी हुई है और इसका एकमात्र कारण है कि उस धर्ममहासभा में भारत के एक युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने भाग लेकर इस धर्ममहासभा को ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया।

स्वामी विवेकानन्द का शिकागो नगर में आयोजित सर्वधर्मसम्मेलन में भाग लेना विश्व-संस्कृति के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। वह एक ऐसा महान अवसर था जब धर्म के यथार्थ तत्त्व को विश्व के लोगों ने स्वामी विवेकानन्द के मुख से पहली बार सुना। उस धर्म महासभा में सभी धर्मों के प्रतिनिधि अपने-अपने धर्मों के गौरवगान के लिये उपस्थित थे। वहाँ स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म का विश्वबन्धुत्व का सन्देश विश्वजनसमुदाय को सुनाकर मंत्रमुग्ध कर दिया तथा समस्त धर्मों के मध्य हिन्दू धर्म को सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया। धर्म महासभा में उनके दिये गये वक्तव्यों से भारतवासियों को अपनी महनीय अस्मिता

११. विवेकानन्द साहित्य, खंड ४, पृ. २२९

का भान हुआ। शताब्दियों से गुलामी में जकड़े रहने के कारण वे अपनी महान आध्यात्मिक शक्ति के विश्वव्यापी प्रभाव को भूल चुके थे तथा विपन्नावस्था में पड़कर अत्यन्त दीनता और हीनता का अनुभव कर रहे थे। रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा छुआछूत इत्यादि से जकड़े रहने के कारण धर्म का वास्तविक स्वरूप छिप गया था और इन्हीं रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को ही धर्म समझा जाने लगा था। साथ ही ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू धर्म की इन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को लेकर हिन्दू धर्म का अत्यन्त विकृत स्वरूप जनसामान्य में प्रचारित किया जा रहा था। मेरी लुईस बर्क ने स्वामी विवेकानन्द पर एक शोध-ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम है 'स्वामी विवेकानन्द इन अमेरिका- न्यू डिस्कव्हरीज़'। उसमें उन्होंने बताया है कि उस समय विदेशों में भारत के सम्बन्ध में कैसे विकृत एवं बीभत्स विचार फैलाये जा रहे थे। इस ग्रन्थ में उन्होंने चार चित्र प्रकाशित किए हैं। ये चित्र स्वामी विवेकानन्द के समय अमेरिका की पाठशालाओं में चलने वाली प्रवेशिकाओं से लिये गये हैं। उन चित्रों के नीचे अँगरेजी में कविता लिखी गयी है। उन चित्रों और कविताओं के माध्यम से भारत का अत्यन्त बीभत्स और बर्बर चित्र प्रस्तुत किया गया है। एक चित्र में बताया गया है कि एक भारतीय माँ अपने एक नन्हें से पुत्र को लेकर नदी के किनारे खड़ी है। वहाँ बहुत-से मगर हैं और वह माँ अपने पुत्र को मगर के मुख में डाल दे रही है। उसके नीचे कविता की पंक्तियाँ हैं, जिनका भाव है, "देखो, देखो, पवित्र जलधारा के किनारे हीदन (गैर-ईसाई अर्थात हिन्दू) माता खड़ी है और अपने ही हाथों से अपने पुत्र को जल की लहरों में फेंक दे रही है। सुनो! मैं उस बच्चे के करुण आर्तनाद को सुन रहा हूँ। भयंकर जलचर उस बच्चे पर झपटते हैं। पानी की काली और खूनी लहरें छटपटाते बच्चे को बहाकर ले जाती है। बच्चा छटपटाता है, चिल्लाता है, उसकी आवाज शनैः-शनैः धीमी होती जाती है। माता बच्चे की आवाज को सुनती है, पर उसका हृदय पत्थर का जो है - चुपचाप अविचिलित भाव से वह अपने बच्चे की करुण आवाज सुन लेती है। अत: उस देश में बाइबिल भेजो। बाइबिल के उपदेश वह सुने तो। बाइबिल के उपदेश सुनने से उसका मातृहृदय ठीक से काम करेगा और वह अपने बच्चों के प्रति इस प्रकार निर्मम न बनेगी।"[१२]

इसी प्रकार अन्य तीन चित्रों में भी भारत का अत्यन्त भ्रान्त तथा विकृत चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त वहाँ और भी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, जिनमें भारतवर्ष के सम्बन्ध में जनमानस में भ्रान्त और विकृत चित्र खींचने का प्रयास किया गया। ऐसी ही ३३५ पृष्ठों वाली एक पुस्तक कैबल राइट ने लिखी - 'इंडिया एण्ड इट्स इनहैबिटेन्ट्स' (भारत और उनके निवासी) जिसमें भारत के विरुद्ध बहुत-सी बातें लिखी गयी थीं तथा यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि दो वर्षों में उसकी ३६००० प्रतियाँ प्रकाशित करनी पड़ी। अमेरिकावासियों के लिये भारत असभ्यों, बर्बरों, जादूगरों और सँपेरों का देश था, जहाँ विधवा स्त्रियों को जिन्दा जलने के लिये बाध्य होना पड़ता तथा जहाँ लोग भगवान जगन्नाथ के रथ के नीचे दबकर आत्महत्या कर लेते थे। मेरी लुईस बर्क लिखती हैं, "उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ईसाई मिशनरियों ने अपने प्रबल दुष्प्रचार द्वारा अमेरिकी मानस को किस सीमा तक सम्मोहन में डाल दिया था, उसकी आज धारणा करना कठिन है। ... समाज के प्रत्येक स्तर को भारत-सम्बन्धी झूठी बातों और मिथ्या कलंकों से इतना भर दिया गया था कि बाद में जब स्वामीजी ने कहा था, यदि भारतीय महासागर के तल का सारा कीचड़ भी निकालकर (इन मिशनरियों पर) फेंका जाय, तो मिशनरियों ने भारत के साथ जो कुछ किया है, उसका वह अत्यल्प ही प्रतिशोध होगा, तो वे कोई अतिशयोक्ति नहीं कह रहे थे।"[१३]

इस प्रकार का दुष्प्रचार भारतवासियों के विरुद्ध किया जा रहा था। पर, इससे भी बड़े दुख की बात तो यह थी कि उस समय जो भी भारतीय विदेश गये सभी ने ब्रिटिश सरकार की प्रशंसा की तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा किये गये दुष्प्रचार को स्वीकार किया और ब्रिटिश सरकार के प्रति कृतज्ञता भी ज्ञापित किया कि वे लोग असभ्य भारत को सुसभ्य बनाने का प्रयास कर रहे हैं। स्वामीजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इसका डटकर विरोध किया। उन्होंने वहाँ कभी यह स्वीकार नहीं किया कि भारतवासियों में गरीबी के अतिरिक्त कोई अन्य दोष है, यद्यपि उन्होंने भारतवासियों को भारत में उनके अन्धविश्वास, कुसंस्कार तथा आलस्य के लिये बहुत धिक्कारा, पर विदेशों में उन्होंने हमेशा भारत का ही पक्ष लिया। जो व्यक्ति भारत की थोड़ी भी निन्दा करता, स्वामीजी

१२. स्वामी आत्मानन्द, 'स्वामी विवेकानन्द और भारत का नवजागरण', स्वामी विवेकानन्द का अवदान, सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द पृ. ११४-१५,

१३. Marie Louise Barke, Swami Vivekananda in America New Discoveries (Kolkata Advaita Ashrama), p. 223

उस पर बरस पड़ते। इस प्रकार वह योद्धा संन्यासी वहाँ भारत के गौरव और अस्मिता की रक्षा के लिये अकेले ही लड़ता रहा। आज भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक सम्पदा के प्रति विदेशों में जो प्रबल आकर्षण दिखाई दे रहा है उसके पीछे स्वामी विवेकानन्द का रक्त-सिंचन ही काम कर रहा है।

धर्म-महासभा के प्रथम दिन, ११ सितम्बर १८९३ को स्वामीजी ने अपना प्रथम संक्षिप्त व्याख्यान दिया। अपने सम्बोधन मात्र से ही उन्होंने सभी श्रोताओं का हृदय जीत लिया। ११ से २७ सितम्बर तक चलनेवाली धर्म-महासभा में उनके छह व्याख्यानों का विवरण प्राप्त होता है। अपने उन व्याख्यानों में उन्होंने हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति के यथार्थ स्वरूप को प्रकट किया। अमेरिका की जनता उनकी अनुभूतिसम्पन्न प्रखर वाणी, तेजोमय व्यक्तित्व तथा प्रकाण्ड विद्वत्ता से अभिभूत हो गयी और उस धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म तेजस्वी सूर्य की भाँति अपने अनुपम प्रकाश से भास्वर हो उठा। अमेरिकावासियों से स्वामीजी को इतना प्रेम और सम्मान मिला कि वे धर्म-महासभा के समाप्ति के पश्चात् भी तीन वर्षों से भी अधिक समय तक वहाँ रह गये और विभिन्न स्थानों में ससम्मान आमंत्रित होते रहे। उनके व्याख्यानों से लोगों को यह विश्वास हो गया कि भारत की आध्यात्मिक सम्पदा ही विश्व का कल्याण करने में समर्थ है और सही मायनों में भारत ही विश्वगुरु बनने की क्षमता रखता है।

शिकागो धर्म-महासभा के पहले ही दिन उन्होंने हिन्दू धर्म की उदारता का आख्यान करते हुए कहा था, "मुझे ऐसे धर्मावलम्बी होने का गौरव है, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सब धर्मों को मान्यता प्रदान करने की शिक्षा दी है। हम धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता से ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे यह कहते हुए गर्व होता है कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ, जिसकी पवित्र भाषा संस्कृत में अँगरेजी के शब्द 'एक्सक्लूजन' का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी की समस्त पीड़ित और शरणागत जातियों तथा विभिन्न धर्मों के बहिष्कृत मतावलम्बियों को आश्रय दिया है। मुझे यह बताते हुए गर्व होता है कि जिस समय यहूदियों के पवित्र मन्दिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिये गये थे, उस समय कुछ अभिजात यहूदी दक्षिण भारत में आए और हमारे लोगों ने उन्हें छाती से लगाकर शरण दिया। मुझे ऐसे धर्म में जन्म लेने का अभिमान है, जिसने पारसी जाति की रक्षा की और आज तक कर रहा है।"[१४] इस प्रकार स्वामीजी ने वहाँ उस हिन्दू धर्म के विराट स्वरूप का आख्यान किया, जो सभी को हृदय से लगा लेने को तत्पर था, जिसके लक्ष-लक्ष अनुयायी प्रतिदिन गान करते हैं –

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

अर्थात् जैसे भिन्न-भिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे मार्गों से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही जाकर मिल जाते हैं।

हिन्दू धर्म की सार्वभौमिकता और उदारता की भावनाओं ने श्रोताओं को बहुत प्रभावित किया। इसमें पहले के वक्ताओं ने केवल अपने-अपने धर्मों का प्रतिपादन किया था। स्वामीजी अकेले व्यक्ति थे, जिन्होंने सभी धर्मों की बातें कही। हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने विश्व संस्कृति में हिन्दू-धर्म के योगदान की चर्चा की। शताब्दियों से साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता, धर्मान्धता आदि संकीर्णताओं से मानवता को क्षति पहुँचाने वाले परिणामों से अवगत कराया और हिन्दू धर्म की सहिष्णुता और उदारता का महान सन्देश विश्वमंच पर सभी धर्मों के प्रतिनिधियों के समक्ष पहली बार रखा। अपने भाषण के अन्त में उन्होंने धर्ममहासभा के आयोजन के प्रयोजन को अत्यन्त संक्षेप में जितने सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया, धर्ममहासभा का कोई भी प्रतिनिधि वैसा प्रस्तुत नहीं कर सका। उन्होंने कहा, "मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़ितों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।"[१५]

शुक्रवार, १५ सितम्बर, १८९३ को धर्ममहासभा के पाँचवें दिन सभी धर्मावलम्बी अपने-अपने धर्मों को श्रेष्ठ प्रतिपादित करने के लिए परस्पर सप्रमाण तर्क देने लगे। सबको ऐसा लग रहा था कि स्वामीजी की पारी आने पर वे अपने अत्यन्त सशक्त और प्रभावी शब्दों से हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करेंगे। परन्तु अन्त में स्वामीजी ने

१४. विवेकानन्द साहित्य, खंड १, पृ. ३, **१५.** वही, पृ. ४

हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने एक कूप-मण्डूक की कहानी सुनाकर सबको शान्त कर दिया। उन्होंने बताया कि एक कुएँ में एक मेढक रहता था। उसने वहीं जन्म लिया, वहीं पला-बढ़ा। कुएँ के अतिरिक्त उसने कभी बाहर का संसार नहीं देखा। एक दिन उस कुएँ में समुद्र का मेढक आकर गिर गया। कुएँ के मेढक ने उससे पूछा कि क्या समुद्र इस कुएँ से बड़ा होता है? समुद्रवाले मेढक ने कहा कि कैसी मूर्खताभरी बातें करते हो। क्या कुएँ की तुलना कभी समुद्र से की जा सकती है? समुद्र बहुत बड़ा होता है। तब कुएँ का मेढक, जो कभी कुएँ के बाहर नहीं गया था, कहने लगा, "मेरे कुएँ से बढ़कर कुछ हो ही नहीं सकता। तू झूठा है।"

स्वामीजी ने यह कहानी सुनाई और कहा कि यह संकीर्णता का भाव ही हमारे कलह का कारण है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी अपने-अपने कुओं में बैठे हुए उसे ही सारा संसार मान लेते हैं। उन्होंने अमेरिकावासियों के प्रति धन्यता का भाव ज्ञापित किया कि वे इस धर्ममहासभा के माध्यम से संकीर्णता की क्षुद्र सीमाओं को तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

शिकागो धर्ममहासभा के आयोजन का एक प्रयोजन यह भी था कि ईसाई धर्म को सभी धर्मों से श्रेष्ठ प्रतिपादित करना, पर स्वामी विवेकानन्द के वक्तव्यों से ईसाई वक्ताओं का प्रभाव क्षीण होता जा रहा था। धर्ममहासभा के ९वें दिन, १९ सितम्बर, १८९३ को ईसाई वक्ता आक्रामक हो गए। रेवरेन्ड कुक ने हिन्दुओं की निर्मम भाव से आलोचना की। पर स्वामी विवेकानन्द के वक्तव्यों का प्रभाव इतना अधिक था कि उन्हें ही आलोचना का शिकार होना पड़ा। १९ सितम्बर को हिन्दू धर्म पर अपना निबन्ध पढ़ने के पूर्व स्वामीजी ने ईसाई राष्ट्रों के विरुद्ध आक्रमण करते हुए कहा, "हम लोग जो प्राच्य जगत से आए हैं, यहाँ प्रतिदिन ऐसी शेखी भरी दादागिरी की बाते सुनते हैं कि हम लोगों को ईसाई हो जाना चाहिए, क्योंकि ईसाई राष्ट्र ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। अतीत के इतिहास का अवलोकन करने से हमें ज्ञात होता है कि ईसाई-बहुल यूरोप की समृद्धि का सूत्रपात हुआ स्पेन से और स्पेन की समृद्धि प्रारंभ हुई मैक्सिको पर आक्रमण करके। अपने ही मानव भाइयों का गला काटकर ईसाई-धर्म ऐश्वर्य अर्जित करता है, पर हिन्दू किसी भी कीमत पर इस प्रकार समृद्ध नहीं होना चाहता।"[१६] स्वामीजी ने यह भी कहा, "मैंने यहाँ बैठकर असहनशीलता की सीमा का अतिक्रमण होते देखा है। मैंने यहाँ इस्लाम की प्रशंसा सुनी है, जबकि मुसलमानों ने भारत में तलवार से विनाश की क्रूरलीला की है। हिन्दू रक्त और तलवार पर विश्वास नहीं करता, वह तो प्रेम की भाषा जानता है। इसके बाद स्वामीजी ने अपना

शिकागो प्रदर्शनी का मनोरम दृश्य

१६. युगनायक विवेकानन्द, खंड २, पृ. ३३

लिखित भाषण पढ़ना प्रारंभ किया।''[१७]

अपने उक्त भाषण में स्वामीजी ने हिन्दुओं के धर्म, दर्शन, संस्कृति, मनोविज्ञान, आचार-विचार, आस्था एवं विश्वास को बहुत सहज और प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत किया। इतने विराट और विशाल हिन्दू धर्म के सारे तथ्यों को इतने संक्षिप्त एवं रोचक तरीके से विदेशी श्रोताओं के समक्ष रखना केवल स्वामीजी के लिए ही सम्भव था। उनके वक्तव्य ने उस दिन यह प्रमाणित कर दिया कि हिन्दू धर्म ही विश्वधर्म बनने की योग्यता रखता है।

हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में अपना मत रखते हुए स्वामीजी ने बताया कि हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति विशेष पर आधारित नहीं है। संसार के अन्य धर्म व्यक्ति विशेष पर आधारित हैं, पर हिन्दू धर्म ऐसा नहीं है। हिन्दुओं ने अपना धर्म वेदों से प्राप्त किया है। ये वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् किसी मनुष्य के द्वारा निर्मित नहीं हैं। वे अनादि और अनन्त हैं। स्वामीजी ने उदाहरणों से बताया कि कैसे वेद अपौरुषेय और अनादि और अनन्त हैं। उन्होंने बताया कि हिन्दू-धर्म घोषणा करता है कि तुम ईश्वर के अंश हो, पापी नहीं हो, अनन्त आनन्द के भागीदार हो। यह सुनकर अमेरिका की जनता आनन्द-विह्वल हो गयी। उन्हें तो जन्म से ही बताया गया था कि वे पापी हैं। इस प्रकार स्वामीजी ने उस दिन के वक्तव्य में हिन्दू धर्म की सांगोपांग व्याख्या की।

स्वामी विवेकानन्द के सशक्त उद्बोधनों से तथा उनके द्वारा भारतीय संस्कृति को मिलनेवाले अप्रतिम महत्त्व से भारतवासियों की दीर्घकालीन निद्रा टूटी और उन्हें अपने गौरव और अस्मिता का बोध हुआ। उन्हें लगा कि वे दीन-हीन नहीं हैं। उनके पास भी संसार को देने के लिये बहुत कुछ है। धर्म-महासभा में विवेकानन्द के प्रभाव का मूल्यांकन करते हुए भगिनी निवेदिता ने लिखा, ''स्वामी विवेकानन्द ने धर्म-महासभा में जब अपना भाषण प्रारम्भ किया, तब उनका विषय था 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार', पर जब उनका व्याख्यान समाप्त हुआ, तो आधुनिक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। उस माध्यम से सम्पूर्ण भारत को अपनी भावधारा का महत्त्व आँकने की क्षमता प्राप्त हुई।... भारत की धार्मिक चेतना ने ही उनके द्वारा पश्चिम में स्वयं को अभिव्यक्त किया।''[१८] प्रसिद्ध फ्रान्सिसी साहित्यकार नोबल पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता रोमा रोलां लिखते हैं - ''वह सन्देश मानो राम, कृष्ण और शिव की भूमि में जागरण का शंखनाद था, अमर आत्मा का वीरत्व को युद्ध-मार्च करने का आह्वान था। एक सेनानायक के रूप में वे अपने अनुगामियों को अपनी समरनीति समझाते हुए एक साथ उठ खड़े होने को पुकार रहे थे। ... स्वप्न में डूबे भारत को पहली बार अपने बाह्यबोध के साथ आगे कूच करने का वीरतापूर्ण शंखनाद सुनायी पड़ा। वह इसे कभी विस्मृत नहीं कर सका।''[१९] डॉ. एनी बेसेंट कहती हैं ''... पहली भेंट के समय वे मुझे संन्यासी की अपेक्षा योद्धा ही अधिक प्रतीत हुए थे, क्योंकि जब वे प्राचीनतम जीवित धर्म के प्रतिनिधि के रूप में मंच से उतरकर आते, आयु में सबसे कम होकर भी उत्सुक दर्शकों से घिरे हुए, वे इस बात को मानने के लिए कतई राजी नहीं थे कि जिस प्राचीन धर्म के वे प्रवक्ता थे, वह किसी भी दृष्टि में वहाँ उपस्थित सर्वश्रेष्ठ धर्म से बिन्दुमात्र भी न्यून है और तब उनके अंग-अंग से देश तथा जाति का गर्व फूट पड़ता-सा प्रतीत होता। वे भारतवर्ष का सन्देश लेकर आये थे और भारत के नाम पर ही उन्होंने उसका प्रचार किया। जिस महिमामण्डित देश के प्रतिनिधि के रूप में आए थे, उनकी मर्यादा का उन्हें सदैव भान रहता था।... विशाल जनसमुदाय भावविभोर होकर उनके मुख से उच्चारित शब्दों के लिए कान खड़े रखता था कि कहीं एक भी शब्द से वंचित न रह जाए, उनकी स्वरलहरी का कोई भी लय छूट न जाए। सभागार से निकलते हुए एक श्रोता बोल उठा कि ऐसे व्यक्ति को हम लोग जंगली धर्मवाला कहते हैं और उनके देश में मिशनरी भेजे हैं, बल्कि उचित तो यह होगा, वे लोग ही हमारे बीच मिशनरी भेजें।''[२०] दि न्यूयार्क हेराल्ड ने लिखा, ''धर्म-संसद में स्वामी विवेकानन्द नि:सन्देह सबसे महान व्यक्ति हैं। उनका भाषण सुन लेने के पश्चात् अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिये धर्म-प्रचारक भेजना कितनी बेवकूफी की बात है।''[२१]

प्रसिद्ध लेखक ईशरवुड ने लिखा, ''सचमुच में यह

१७. लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, 'विश्व धर्म-सम्मेलन' दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, २००६, पृ. १०१

१८. भगिनी निवेदिता, 'हमारे गुरु और उनका संदेश' विवेकानन्द साहित्य (प्रथम खंड की भूमिका में सम्मिलित), **१९.** विवेकानन्द - मनीषियों की दृष्टि में, रामकृष्ण मठ, नागपुर, २०१२, पृ. २६-२७ **२०.** वही, पृ. ४२-४३ **२१.** रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय, पृ. ४२८

दावा किया जा सकता है कि विवेकानन्द के पूर्व किसी भी भारतीय ने अमेरिकनों और अँगरेजों को इसके लिये बाध्य नहीं किया था कि उनके साथ समानता के स्तर पर व्यवहार हो, एक पराधीन मित्र के रूप में नहीं, एक कट्टर प्रतिपक्ष के रूप में नहीं, पर एक सच्चे शुभचिन्तक और मित्र के रूप में, जो सिखाने और सीखने, जो सहायता देने और माँगने के लिये समान रूप से तैयार है।'' श्री रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, ''शिकागो-सम्मेलन से उत्साहित होकर स्वामीजी अमेरिका और इंग्लैण्ड में तीन साल तक रह गये और इस अवधि में भाषणों, वार्तालापों, लेखों, कविताओं, विवादों और वक्तव्यों द्वारा उन्होंने हिन्दू धर्म के सार को भी सारे यूरोप में फैला दिया। प्राय: डेढ़ सौ वर्षों से ईसाई धर्मप्रचारक संसार में हिन्दुत्व की जो निन्दा फैला रहे थे, उस पर अकेले स्वामीजी के कर्तृत्व ने रोक लगा दी और जब भारतीयों ने यह सुना कि सारा पश्चिमी जगत् स्वामीजी के मुख से हिन्दुत्व का आख्यान सुनकर गद्गद हो रहा है, तब हिन्दू भी अपने धर्म और संस्कृति के गौरव का अनुभव करने लगे। अँगरेजी पढ़कर बहके हुए बुद्धिवादियों को समझाना कठिन कार्य था, किन्तु जब उन्होंने देखा कि स्वयं यूरोप और अमेरिका के नर-नारी स्वामीजी के शिष्य बनकर हिन्दुत्व की सेवा में लगते जा रहे हैं, तब उनके भीतर भी ग्लानि की भावना जगी और बकवास छोड़कर वे भी स्थिर हो गये। इस प्रकार हिन्दुत्व को लीलने के लिये अँगरेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के पेट में जो तूफान उठा था, वह स्वामी विवेकानन्द के हिमालय जैसे वक्ष से टकराकर लौट गया। हिन्दू जाति का धर्म है, जब तक वह जीवित रहे, विवेकानन्द की याद उसी श्रद्धा से करती जाए, जिस श्रद्धा से वह व्यास और वाल्मीकी को याद करती हैं।''[२२]

अस्तु! हम देखते हैं कि अमेरिकावासियों पर स्वामी विवेकानन्द का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा। स्वामीजी धार्मिक संकीर्णता, हठधर्मिता और साम्प्रदायिक उन्माद के कारण उत्पन्न होनेवाले दुष्परिणामों से अत्यन्त पीड़ित थे। उन्होंने अनुभव किया था कि इनके कारण पृथ्वी शताब्दियों से हिंसाक्रान्त होती रही है तथा बारम्बार मानवता रक्त से नहाती रही है। इन दुष्परिणामों से बचने के लिये उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्णदेव की अनुभूति का प्रचार किया। श्रीरामकृष्णदेव ने हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों तथा ईसाई और इस्लाम धर्मों द्वारा बताये गये मार्गों से धर्म-साधना की थी तथा अपने साधनामय जीवन के द्वारा यह अनुभव किया था कि सभी धर्मों का अन्तिम लक्ष्य एक ही है। श्रीरामकृष्णदेव के इसी अनुभूति के आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने सर्व-धर्म-समभाव का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। कितनी सुन्दर बात वे कहते हैं- ''मैं अभी तक के सभी धर्मों को स्वीकार करता हूँ और उन सबकी पूजा करता हूँ। मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ईश्वर की उपासना करता हूँ, वे चाहे किसी भी रूप में उपासना करते हों। मैं मुसलमानों के मस्जिद में जाऊँगा, मैं ईसाई के गिरजाघर में क्रुस के सम्मुख घुटने टेककर प्रार्थना करूँगा, मैं बौद्ध मन्दिरों में जाकर बुद्ध और उनकी शिक्षा की शरण लूँगा, मैं जंगल में जाकर हिन्दुओं के साथ ध्यान करूँगा, जो हृदयस्थ ज्योतिस्वरूप परमात्मा को प्रत्यक्ष करने में लगे हुए हैं।''[२३]

संसार के सभी धर्म-प्रचारकों के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। मोहम्मद पैगम्बर को वे समता के महान सन्देशवाहक के रूप में स्मरण करते, ईसा को वे ईश्वर का दूत कहते और उनकी पवित्रता और त्याग की भावना से अभिभूत हो जाते। संसार के सभी जीवों के प्रति भगवान बुद्ध के विराट प्रेम को देखकर वे अत्यन्त गद्गद हो जाते और कहते कि उनके विशाल हृदय का यदि वे सहस्रांश भी पा जाएँ, तो धन्य हो जाएँ। वे हिन्दुओं की आध्यात्मिकता, बौद्धों की जीवदया, ईसाइयों की क्रियाशीलता एवं मुसलमानों का बन्धुत्व चाहते थे। इन सबकी सहायता से वे एक ऐसे सार्वभौमिक धर्म का निर्माण करना चाहते थे, जो किसी देश अथवा काल की सीमा से आबद्ध न हो, जिसके सूर्य का प्रकाश कृष्ण और ईसा के अनुयायियों पर, मोहम्मद पैगम्बर और बुद्ध के अनुयायियों पर समान रूप से पड़े, जो अपने स्वरूप में न ब्राह्मण हो, न बौद्ध हो, न ईसाई हो और न इस्लाम ही, प्रत्युत वह इन सबके योग और सामंजस्य से उत्पन्न हो। वे चाहते थे एक ऐसे सार्वभौमिक धर्म का निर्माण करना, जो घोर अशिक्षित और परम ज्ञानी दोनों को अपने हृदय से लगा सके, जिसकी नीति में उत्पीड़न और असहिष्णुता का स्थान न हो, जो प्रत्येक स्त्री और पुरुष की दिव्यता को स्वीकार करे तथा जिसका सम्पूर्ण बल और सामर्थ्य मानवता को अपनी सच्ची, दिव्य प्रकृति

२२. वही,

२३. विवेकानन्द साहित्य, खंड ३, पृ. १३८

का साक्षात्कार करने के लिये सहायता देने में केन्द्रित हो।

धर्म-महासभा में स्वामीजी ने हिन्दू-धर्म की उदारता और उसके महत्त्व का ऐसा अद्भुत आख्यान किया कि सारा विश्व हिन्दू-धर्म की महिमा से अभिभूत हो उठा। प्रश्न उठता है कि जब स्वामीजी सर्व-धर्म-समभाव के पक्षपाती थे, तो हिन्दू-धर्म को इतना अधिक महिमान्वित करने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि स्वामीजी ने जिस सार्वभौमिक धर्म की कल्पना की थी, उसमें उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू-धर्म ही उस सार्वभौमिक धर्म के सबसे अधिक निकट है। यह एक ऐसा धर्म है, जहाँ सभी प्रकार की विचारधाराओं वाले व्यक्तियों को स्थान है। यहाँ आस्तिक और नास्तिक, ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी तथा मूर्तिपूजक एवं मूर्तिपूजा के विरोधी, सबको पर्याप्त सम्मान दिया जाता है। यहाँ सभी प्रकार की मानसिक संरचना वाले व्यक्ति अपनी-अपनी रुचियों और योग्यताओं के आधार पर साधनापथ का निर्धारण कर परम सत्य की प्राप्ति करते हैं। पश्चिम की एक विशाल सभा में हिन्दू धर्म के धर्म-निरपेक्ष विचारों को व्यक्त करते हुए स्वामीजी ने कहा था, "हम हिन्दू केवल सहिष्णु ही नहीं है, हम अन्य धर्मों के साथ – मुसलमानों की मस्जिद में नमाज पढ़कर, पारसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रुस के सम्मुख नतमस्तक होकर उससे एकात्म हो जाते हैं। हम जानते हैं कि निम्नतम जड़-पूजावाद से लेकर उच्चतम निर्गुण-अद्वैतवाद तक सारे धर्म समान रूप से असीम को समझने और उनका साक्षात्कार करने के निमित्त मानवीय आत्मा के विविध प्रयास हैं। अत: हम इन सभी सुमनों को संचित करते हैं और उन सबको प्रेमसूत्र में बाँधकर आराधना के निमित्त एक अद्भुत स्तवक निर्माण करते हैं।"[२४]

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित सर्व-धर्म-समभाव के प्रचार-प्रसार तथा उसको जीवन में आचरित करने की अतिशय आवश्यकता है। विज्ञान की अधुनातन उपलब्धियों के बावजूद सारा विश्व संघर्ष की अग्नि में जल रहा है। आज हम प्रतिक्षण अत्यधिक संकीर्ण होते जा रहे हैं। आज हम आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ सकते हैं, समुद्र की गहराईयों में जलचरों की भाँति तैर सकते हैं, पर हमारे जीवन की विडम्बना यह है कि हम इस पृथ्वी पर एक मनुष्य के रूप में नहीं रह पा रहे हैं। समस्त बौद्धिक विकास के बावजूद हमारा वैचारिक संघर्ष चरम सीमा पर है। धर्म के नाम पर आज भी भीषण रक्तपात हो रहा है। विभिन्न राष्ट्रों के मध्य युद्धों की विभीषिकाएँ हमें आक्रान्त कर दे रही हैं। आज सारा विश्व एक ज्वालामुखी पर टिका हुआ है, जिसमें किसी भी क्षण विस्फोट हो सकता है और सारी सभ्यता समाप्त हो सकती है। यदि हमें विश्व को विनाश की भयावहता से उबारना है, तो हमें स्वामी विवेकानन्द के सन्देशों को जीवन में अपनाना होगा। धर्म-महासभा के

आर्ट इन्स्टीट्यूट ऑफ शिकागो

अन्तिम दिन, २७ सितम्बर १८९३ को, स्वामीजी ने विश्व को एक अनमोल सीख दी, भारत का अपना सन्देश दिया। अपने वक्तव्य में स्वामीजी ने कहा, "ईसाई को हिन्दू अथवा बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए, और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। किन्तु प्रत्येक को दूसरों की भावना को आत्मसात् करते हुए अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखना चाहिए तथा विकास के नियमों के अनुसार उन्नति करनी चाहिए। इस धर्म-महासभा ने विश्व को कुछ बतलाया है, तो केवल इतना कि इसने विश्व के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयालुता किसी एक सम्प्रदाय की ही सम्पत्ति नहीं है। प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठतम पुरुषों और स्त्रियों को जन्म दिया है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण के बावजूद यदि कोई व्यक्ति केवल अपने ही धर्म की रक्षा और दूसरों के धर्मों के नाश का स्वप्न देखे, तो मैं हृदय से उस पर तरस खाता हूँ और उसे स्पष्ट बताये देता हूँ कि शीघ्र ही उसके विरोध के बावजूद प्रत्येक धर्म के ध्वज पर यह लिखा होगा – 'सहायता करो, लड़ो मत, परभाव ग्रहण न कि परभाव विनाश, समन्वय और शान्ति न कि मतभेद और कलह।"[२५]

२४. भगिनी निवेदिता, 'हमारे गुरु और उनका संदेश' विवेकानन्द साहित्य (प्रथम खंड की भूमिका में सम्मिलित)

उनका सन्देश श्रोताओं के अन्त:करण की गहराईयों में प्रवेश कर गया। उनके हृत्-तन्त्री के तार झंकृत हो उठे। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सम्मेलन की औपचारिकताओं को त्यागकर लोगों के हृदय की बात कही थी। उनके कथनों का विद्युत जैसा प्रभाव हुआ। शिकागो धर्ममहासभा में उनके प्रभाव का मूल्यांकन करते हुए मेरी लुईस बर्क ने लिखा, "शिकागो धर्म-महासभा में स्वामीजी के सम्बन्ध में जो वर्णन प्राप्त होता है, वह उन्हें एक सजीव और सक्रिय व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है, जो अपने व्यक्तित्व के बल पर और अपने संदेशों की पूर्ण पवित्रता के कारण पूरे परिदृश्य में छा गए। वे अपने यौवन के ऐसे पूर्ण तेजस्विता पर प्रतिष्ठित थे, जो पूरे विश्व का सामना करने के लिए तैयार था। इसके साथ ही वे अपनी मातृभूमि के गरीब अज्ञानी तथा उत्पीड़ित व्यक्तियों के लिए अपने जीवन का बलिदान करने के लिए तत्पर थे। उनके चामत्कारिक लोकप्रियता का एक और दूसरा भी कारण था। वह यह कि उनके पहले अमेरिका के लोगों ने और कोई ऐसा दूसरा व्यक्ति नहीं देखा था, जिनके जीवन में आध्यात्मिक सत्य पूरी तरह से साकार हुए थे। ऐसे हजारों लोग जो स्वामीजी को सुनने के लिए एकत्रित होते, उनके कुछ शब्दों को सुनने के लिए घंटों प्रतीक्षा करते, मंच से उतरने पर उनकी वाहवाही करते, वे यद्यपि सचेतन रूप से नहीं जानते कि वह व्यक्ति आध्यात्मिक सत्यों की पूरी अनुभूति कर चुका है, पर वे अपनी आन्तरिक अनुभूति से जान जाते कि वह किस उद्देश्य के लिए समर्पित है। पूरे समय अपने आप उनको अनुभव होता कि उसकी (स्वामीजी की) उपस्थिति मात्र ही उनके लिए वरदान है।

ऐसा अद्भुत प्रभाव स्वामी विवेकानन्द का शिकागो धर्म-महासभा में पड़ा था। वहाँ उन्होंने हिन्दू धर्म की महिमा का आख्यान करके यह प्रमाणित कर दिया कि वह विश्वधर्म बनने की योग्यता रखता है। उन्होंने वहाँ बताया कि भारत के पास एक ऐसी आध्यात्मिक सम्पदा है, जो विश्व के लिए एक अनुपम उपहार है। आध्यात्मिक ऐक्य के धागे से उन्होंने हर वर्ग, हर जाति तथा हर सम्प्रदाय के मनुष्यों को एक सुन्दर माले के रूप में पिरोया था। आज भारत और विश्व के समक्ष जो चुनौतियाँ हैं, उनका सामना हम उनके आदर्शों और सन्देशों के आधार पर सरलतापूर्वक कर सकते हैं। उनका जीवन अत्यल्प था। वे उनचालीस वर्ष, पाँच माह और बाईस दिन इस धरती पर रहे और उसमें भी उनकी कार्यावधि १० वर्षों से भी कम रही, पर विश्व-मानवता के आकाश में वे तेजोमय नक्षत्र की भाँति चमके जिसकी प्रभा हमें आज भी आलोकित कर रही है और निरन्तर फैलती जा रही है। उन्होंने अपने विचारों से पूर्व और पश्चिम के मध्य एक सेतु स्थापित किया और प्राचीन और अर्वाचीन के संगम हो गये। OOO

सन्दर्भ सूत्र – २५. विवेकानन्द साहित्य, खंड १, पृ. २७ **२६.** Marie Louise Barke, 'Swami Vivekananda in America, New Discoveries' (Kolkata : Advaita Ashrama)

हमारा पहला कर्तव्य यह है कि अपने प्रति घृणा न करें; क्योंकि आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं पर विश्वास रखें और फिर ईश्वर में। जिसे स्वयं में विश्वास नहीं, उसे ईश्वर में कभी भी विश्वास नहीं हो सकता । – स्वामी विवेकानन्द

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२१)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

वैदिक शिक्षा का प्रयास

इसके पूर्व जहाँ भी रहता खेतड़ी-राजा को सलाह तथा उपदेश युक्त पत्र लिखता। स्वामीजी का आदेश मिलने के बाद मैंने राजा को लिखकर शिक्षा-प्रसार के लिये एक स्थायी शिक्षा विभाग गठन कराया, उसके लिये बजट मंजूर करवाया और तीन-चार गाँवों में स्कूलों की स्थापना करायी।

राजा का एक संस्कृत विद्यालय था। उसमें राजा ने विभिन्न स्थानों के २०-२५ छात्रों को रखकर उनके भोजन तथा शिक्षा की व्यवस्था की थी। विद्यालय में चार शिक्षक थे। एक मैथिली वैदिक पण्डित वेद का केवल हस्तपाठ तथा स्वरपाठ कराते थे; अर्थात् व्याख्या न करके केवल पाठ सिखाते थे। एक वैय्याकरण कुछ छात्रों को केवल व्याकरण ही पढ़ाते थे। एक अन्य पण्डित कुछ कोष तथा काव्य और एक अन्य जन कुछ छात्रों को फलित ज्योतिष की शिक्षा देते थे।

मैंने राजा को समझाया कि इस प्रकार के अध्यापन से कोई विशेष फल होने की आशा नहीं है। राजा तथा पण्डितों से मैंने ऐसी व्यवस्था करने का अनुरोध किया, जिसमें नियमित रूप से वेद-वेदांग का अध्यापन हो और सभी छात्र वेदों का अर्थ समझ सकें। राजा ने जानना चाहा कि ऐसी शिक्षा की सुव्यवस्था कैसे हो सकेगी! मैंने उस विषय में समुचित उपदेश देकर वैदिक विद्यालय की स्थापना कराई।

परन्तु निर्धनता के कारण छात्रों ने मेरे द्वारा शुरू की गयी शिक्षा-प्रणाली पर आपत्ति उठायी। वे बोले कि वेद-विषयक उन ग्रन्थों को खरीदने हेतु कम-से-कम २०-२२ रुपयों की जरूरत होगी; और उतने रुपये वे कहाँ से लायेंगे?

राजा के ऊपर पहले ही काफी भार दिया जा चुका था, अतः अब खेतड़ी की धनाढ्य प्रजा तथा राज-कर्मचारियों से वार्षिक चन्दे की व्यवस्था करनी होगी। छात्रों को पुस्तकें दान करने हेतु 'छात्र-उपकारिणी-सभा' और 'छात्र-सहायता-भण्डार' खोले गये। इससे ३०० रुपये एकत्र हुए थे। परन्तु वह पूरा न पड़ने पर बाकी रुपये राजा स्वयं देने को राजी हुए।

पाठशाला का नाम हुआ – 'खेतड़ी आदर्श वैदिक विद्यालय'। नियम बना कि सभी छात्र वेद पढ़ेंगे और वेदों के अर्थबोध के लिये वेदांग का अध्ययन करेंगे।

मुम्बई से आवश्यक पुस्तकें मँगाई गयीं। उसी समय जयपुर के पोलिटिकल एजेंट कर्नल प्रिडो के खेतड़ी आने से उन्हीं के द्वारा वैदिक विद्यालय का उद्घाटन तथा छात्रों को पुस्तक-वितरण कराया गया।

राजा का दरबार तथा प्रजा का दुख

खेतड़ी में हर वर्ष एक बार महा-दरबार हुआ करता था। उस दरबार में राजा स्वजातीय उमरावों तथा प्रमुख कर्मचारियों को साथ लेकर बैठते हैं और उन लोगों का नजर होता है। राजपुताना के लिये यह महा-समारोह का दिन होता है। राजा विभिन्न प्रकार की वेशभूषा में सुसज्जित होते हैं और नजर स्वीकार करते हैं। उस दिन राजा के अन्तःपुर में भी रानी अपनी प्रमुख उमरावों तथा कर्मचारियों की पत्नियों को साथ लेकर सभा में बैठती हैं और नजर स्वीकार करती हैं।

एक कोने में बैठकर राज-दरबार का अवलोकन करते हुए मैंने देखा कि द्वार की ओर से तथा अन्य खुले स्थानों से साधारण वेशभूषा पहने बहुत-से लोग राजा का दरबार देखने का आग्रह लिये हुए इधर-उधर से ताक-झाँक कर रहे हैं, परन्तु तत्काल राजा के सिपाहियों द्वारा खदेड़कर भगा दिये जाते हैं।

तीन-चार बार ऐसा ही होने पर मैंने गोला लोगों से पूछकर जान लिया कि वे सभी लोग राजा की कृषक प्रजा

हैं और एक तरह से राज्य के प्रमुख स्तम्भ हैं। ये लोग अपराह्न में मुसाहिबों के सामने नजर देंगे और उससे काफी मात्रा में धन एकत्र होगा।

अपराह्न में देखा कि वही सब प्रजा मुसाहिब लोगों के सामने नजर दे रही है और रुपयों का एक विशाल स्तूप बन गया है। यह अवस्था देखकर मैं मर्माहत हो गया। मैंने सोचा कि ये ही लोग राज्य के सच्चे स्तम्भ हैं, इन्हीं के धन से तो राजा का ऐश्वर्य तथा खजाना भरता है।

प्रजा के लिये राजा से निवेदन

सन्ध्या के बाद मैं राजसभा में जाकर राजा से बोला, "महाराज, आज मुझे बड़ी पीड़ा हुई है।" उन्होंने पूछा, "क्यों?" मैं बोला, "जो लोग कसाई के समान आपकी निरीह प्रजा के पेट में छूरा भोंककर उनका धन लूट रहे हैं, वे तो खूब चोंगा-चपकन पहने आपके दाहिने-बाँयें बैठकर अति सम्मानित हुए और वे लोग आपको बँधा-बँधाया थोड़ा-बहुत नजर देकर कृतार्थ हो गये। परन्तु जो लोग आपके राज्य की लक्ष्मी हैं, आपकी सन्तानों के तुल्य हैं, जो लोग अपने सिर का पसीना पाँवों तक बहाकर आपका खजाना भर रहे हैं, वे लोग एक बार भी अपनी आँखों से आपका दर्शन नहीं कर सके। मैंने देखा कि वे लोग जब-जब आपको देखने आते हैं, तब-तब आपका चोबदार तथा सिपाही उन्हें सियाल-कुत्तों की भाँति खदेड़ देते हैं। स्वयं को जिन रामचन्द्र का वंशज मानकर आप लोग गौरव का बोध करते हैं, उन्हीं रामचन्द्र ने एक दिन इन आम लोगों को सन्तुष्ट करने हेतु अपनी प्राणों से भी प्रिय सीताजी का परित्याग कर दिया था; और आप लोग उसी प्रजा को एक बार दर्शन तक नहीं देना चाहते, उन्हें साथ लेकर दरबार में बैठना तो बड़ी दूर की बात है! हाय, मुझे यह भी देखना पड़ा! मैं संन्यासी हूँ ...।" इसके आगे मैं और कुछ बोल नहीं सका । एक बालक के समान उच्च स्वर में रोने लगा। राजा और उनके सभी दरबारी विस्मय-विमूढ़ हो गये।

थोड़ी देर स्तब्ध रहने के बाद राजा बोले, "आज मुझे अपने जीवन भर के लिये एक महान् शिक्षा मिली। आज मेरा भ्रम दूर हो गया।" उन्होंने तत्काल गंगासहाय नामक अपने 'याददास्त' कर्मचारी को बुलाया। ये राजा द्वारा किये जाने वाले कार्यों को लिखकर रखते थे। उनके आ जाने पर राजा बोले, "लिखकर रख लो, अगले वर्ष से मैं सारी प्रजा को लेकर दरबार करूँगा और स्वयं सबका नजर ग्रहण करूँगा।"

अगले वर्ष के दरबार में विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द ने भी आकर उसे देखा था।

अन्य उन्नति के कार्य

खेतड़ी राज्य में मरे हुए पशुओं की हड्डियाँ डोम लोग अन्यत्र ले जाकर बेच देते थे। हड्डियाँ ही जमीन के लिये खाद हैं – यह बात महाराज को समझाकर मैंने अनुरोध किया कि उन्हें इस प्रकार बाहर भेजने से मना कर दिया जाय और (राज्य में) कृषि की उन्नति के लिये कृषि-विषयक पत्र-पत्रिकाएँ मँगवाने की व्यवस्था की। गाँव-गाँव में घूमकर मैं रोगियों को ढूँढ़ लाता और राजा के अस्पताल में रखवा कर उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करवाता।

पाँच-छह महीने खेतड़ी में निवास करने के बाद मैं चिड़ावा ग्राम में गया। जाते समय अस्तबल के कर्मचारियों ने मेरे चढ़ने के लिये एक काना तथा बड़ा ही दुर्दमनीय घोड़ा दे दिया था। उस घोड़े ने मुझे नीचे गिरा दिया, जिसके फलस्वरूप मेरे हाथ में पीड़ा होने लगी। इस चिड़ावा ग्राम में अनेक सम्पन्न व्यवसाइयों का निवास है। खेतड़ी राज्य के आदर्श पर मैंने वहाँ भी एक वैदिक विद्यालय की स्थापना की।

मेरे खेतड़ी से चले जाने के बाद (नाथद्वारा से) रघुनाथ भण्डारी अपने पुत्र गोपाल सिंह को साथ लेकर खेतड़ी आये। स्टेशन पर दुर्घटना में उसके पाँव में चोट आ गयी थी। वे खेतड़ी में रहकर उसकी चिकित्सा कराते रहे और मुझे पत्र लिखा कि मैं खेतड़ी लौट आऊँ। मेरे खेतड़ी आने पर वे बोले, "नाथद्वारा का स्कूल बन्द हो गया है। आप ही गोपाल की शिक्षा का बन्दोबस्त कीजिये।" खेतड़ी से विदा लेने के पूर्व ही मैंने मलसीसर में गोपाल की शिक्षा की व्यवस्था कर दी थी।

वहाँ (मलसीसर) से मैंने अलसीसर, झुंझुनू, नवलगढ़, खण्डेला, लोहारू, सूरजगढ़ आदि विख्यात ग्रामों में जाकर वहाँ के जमींदारों को प्रजा के कल्याण हेतु मनोनियोग करने का उपदेश दिया।

जयपुर आकर मैं स्वामी अभेदानन्द तथा निर्मलानन्द से मिला। उन लोगों के अनुरोध पर ठाकुर का महोत्सव देखने हेतु आलमबाजार मठ लौटा। **(क्रमशः)**

धर्म और विज्ञान : एक विश्लेषण

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे।– सं.)

(गतांक से आगे)

एक ने अंग्रेजी में एक सुन्दर Couplet लिखा-

Nature and nature's law lay hid in night,
God said let Newton be and all was light.
But not for long, the Devil howling 'Ho',
'Let Einstein be', nstored the states quo""

— अर्थात् प्रकृति और प्रकृति के नियम रात्रि के अन्धकार में छिपे हुए थे। ईश्वर ने कहा कि न्यूटन आ जाए और सब कुछ प्रकाश से भर गया। पर अधिक समय बीता नहीं कि शैतान चिल्ला उठा कि वह आइन्स्टीन को ले आया है तथा इससे स्थिति पुन: यथावत् हो गयी।

आइन्स्टीन का तात्पर्य यह है कि सत्य को विज्ञान के बीच रहकर जानना कठिन है, क्योंकि किसी भी तत्त्व को जानने का जो साधन है वह है हमारा मन। यह प्राथमिक औजार है, जिसके सहारे जो कुछ ज्ञातव्य है, हम उसे जानते हैं। पर मन की अपनी ही सीमा है। मन के तीन उपादान हैं — True, space and causalori अर्थात् देश, काल और निमित्त। इसका तात्पर्य यह कि मन इन तीनों उपादानों को लाँघ नहीं सकता। मन देश के परे जाकर, काल के परे जाकर तथा कार्यकारण नियम के परे जाकर, विचार नहीं कर सकता। हिज़नबर्ग ने जब इलेक्ट्रान के पीछे का सत्य जानना चाहा, तो देखा कि वहाँ पर कार्य-कारण की परम्परा टूट गयी, और यदि हम इस मन के द्वारा जानना चाहें कि कार्य-कारण नियम के परे क्या है, तो यह कैसे जान सकते हैं? जो मन कार्य-कारण के नियम के घेरे में रहकर काम करता है, उसके द्वारा हम उसे कैसे जान सकते हैं, जो कार्य-कारण के नियम के परे है। यदि हमें इस मन के द्वारा जानने का आग्रह ही है, तब तो हमें अपने मन को ही लाँघना होगा। इसलिए आइन्स्टीन अन्त में कहते हैं – Thus the physics of 20th century seeks to be admitted to the door of metaphysics. अर्थात् '२० वीं शताब्दी का भौतिक विज्ञान, अध्यात्म विज्ञान के कक्ष में प्रवेश पाना चाहता है।' यह आइन्स्टीन की दृष्टि है।

मैं एक किताब का बहुत उल्लेख किया करता हूँ। वह है Lincon Barnnet द्वारा लिखित 'The universe and Dr. Einstein.

इस पुस्तक में उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में शुरू से लेकर जो-जो खोजें हुई हैं, उनका वर्णन करते हुए लिखा कि आइन्स्टीन ने क्या-क्या चीजें दीं तथा कहाँ पर आकर विज्ञान की गाड़ी रुक गयी। अगर सत्य का साक्षात्कार करना है, तो हमें क्या करना होगा। वे लिखते हैं — There is no mystery of the physical world which does not point to a mystry beyond itself. All high roads of intellect, all by ways of theory and conjecture lead ultimately to an abyss that human injenuity can never span" अर्थात, "भौतिक जगत में ऐसा कोई रहस्य नहीं है, जो अपने से परे अन्य रहस्य की ओर इंगित न करता हो। बुद्धि के विस्तृत मार्ग तथा सिद्धान्त और सम्भावनाओं के समस्त रास्ते अन्ततोगत्वा ऐसे अतल गर्त में ले जाते हैं, जिसे मानवीय योग्यता माप नहीं सकती।"

लिंकन बार्नेट कहते हैं कि आज विज्ञान के क्षेत्र में समस्याओं का अम्बार खड़ा हो गया है। हम एक समस्या को सुलझाने जाते हैं, तो उस प्रयास में कई नई समस्याएँ आ जाती हैं। अत: इन समस्याओं के सुलझाने के लिए मूलभूत समस्या को हल करना होगा। वह मूल समस्या क्या है? लिंकन बार्नेट लिखते हैं — Man is his own greatest mystry. He does not understand the vast veiled universe into which he has been cast for the season that he does not understand himself. Least of all does he understand his noblest and most mysterious quality; the ability to transcend himself and perceive himself in the act of perception" अर्थात "मनुष्य ही अपना सबसे बड़ा रहस्य है। वह इस विशाल पटावृत जगत को जिसमें कि वह ढकेल दिया गया है, जानने में इसलिए असमर्थ है, क्योंकि वह अपने आप को

नहीं जानता है। यहाँ तक कि स्वयं का अतिक्रमण कर सही मायने में अन्दर दृष्टिपात करने का उसके भीतर जो सामर्थ्य और उदात्ततम तथा अत्यन्त रहस्यमय गुण है, उसके बारे में भी उसकी समझ बहुत कम है।''

मनुष्य स्वयं का अतिक्रमण कर जाये और अतिक्रमण कर अपने को देखे, यह विज्ञान की भाषा नहीं, यह तो दर्शन और अध्यात्म की भाषा है। आज वैज्ञानिकों का चिन्तन जिस दिशा में जा रहा है, वेदान्त का चिन्तन भी ठीक इसी प्रकार का है। जिस उपाय से मनुष्य अपने आप को लाँघने में समर्थ होता है, उसे कहते हैं – ध्यानयोग। श्वेताश्वेतर उपनिषद में एक बहुत सुन्दर बात कही गयी है। वहाँ एक ब्रह्म संगोष्ठी में विचार किया जाता है कि यह संसार क्या है? कहाँ से उत्पन्न हुआ है? यह ब्रह्म क्या है? यही सब चिन्तन चला हुआ है। तीसरे मन्त्र में ब्रह्म को जानने का उपाय बताते हुए कहा गया –

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् ...

– उन्होंने उस ब्रह्मतत्त्व को देखा, उसका साक्षात्कार किया, जो देश-काल-निमित्त से परे है। कैसे साक्षात्कार किया? – ध्यानयोग की सहायता से साक्षात्कार किया। अब यह ध्यान योग क्या है, इसे समझना चाहिए। सामान्यत: ध्यानयोग कहने से हमको लगता है – मन की एकाग्रता। पर यह ठीक अर्थ नहीं है। मन की एकाग्रता, तो वैसे भी हो जाती है। जैसे यदि मुझे किसी विषय में रुचि है, तो मन उसमें सहज ही एकाग्र हो जायेगा। अगर मुझे शतरंज खेलने में रुचि है, तो खेलते समय मन एकाग्र हो जायेगा। एक चित्रकार जब चित्रकारी करता है, तो उसके सारे मन, प्राण आदि चित्रकारी में डूब जाते हैं। तभी वह बढ़िया चित्र बनाने में समर्थ होता है। एक सितारवादक, जैसे रविशंकरजी जब सितार बजाते हैं, तब कितने एकाग्र हो जाते हैं। ऐसा लगता है, जैसे वे ध्यान में, समाधि में चले गये हों। मानों उन्होंने मन के समस्त अग्रों को संसार के विचारों से हटाकर उस वादन में लगा दिया, केन्द्रित कर दिया। तात्पर्य यह कि मनुष्य का मन अपनी पसन्द के विषयों में एकाग्र हो जाता है। पर यह ध्यानयोग नहीं है। तो ध्यान योग क्या है?

जब हम अपनी पसन्द के विषयों पर मन को एकाग्र करते हैं, तो वह पसन्द का विषय हमसे बाहर रहता है। पर ध्यानयोग में हम मन के सारे अग्रों को मन पर ही एकाग्र करते हैं। मन को मन के ऊपर ही एकाग्र करने का अर्थ क्या है? – यह कि आज हमारा मन है बड़ा भोथड़ा, क्योंकि उसके अग्र इधर से उधर भागते हैं। उसमें penetrating power (भेदन शक्ति) नहीं है। पर जिस समय हम मन के अग्रों को समेटते हैं, उसमें भेदनशक्ति आ जाती है और जब उसे मन के ऊपर ही एकाग्र करते हैं, तो वह मन की परतों को छेदते हुए मन की गहराइयों में उतरने लगता है। उससे हमें अनुभूतियाँ होती हैं, जिसे हम योगज अनुभूतियाँ कहते हैं। जैसे एक लौकिक उदाहरण लें – सामान्य जो आलोक की किरण है उसमें भेदन-शक्ति नहीं है। पर यदि इसी किरण की frequency बढ़ा दी जाय अथवा Warelength घटा दी जाय, तो यह X-Ray (एक्स-रे) बन जाती है। और तब यह कपड़े और चमड़े आदि को भेदती हुई शरीर के भीतर तक प्रवेश कर जाती है। Deep X-Ray theraphy के पीछे यही सिद्धान्त कार्य करता है। इसी प्रकार यह जो हवा है, उसमें सामान्य अवस्था में कोई दबाव अथवा प्रभाव नहीं दीखता है, पर जब इसी हवा को Compress कर दिया जाता है, तब वह कठोर-से-कठोर चट्टानों को भी काट देती है। Air-Compressor के पीछे हम इसी सिद्धान्त को कार्यरत पाते हैं। उसी प्रकार मन में भी अपने आप को छेदने की ताकत है और यह ताकत तब प्रकट होती है, जब हम मन को मन के ही ऊपर एकाग्र करते हैं। तब एक ऐसी स्थिति आती है, जब मन मानों अपने को छलांग मारकर पार कर जाता है। तब लिंकन बार्नेट की भाषा में 'मनुष्य का अपना अतिक्रमण अपने भीतर देखने की बात' पूरी तरह चरितार्थ होती है। माण्डूक्य उपनिषद् में कहा गया है – **'प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः।'** वही आत्मा में अवस्थित होने की अवस्था है। वह चौथी अवस्था है। उसको 'तुरीय' कहा गया है। उसे ही 'अपनी मन' की अवस्था भी कहते हैं, जिसमें मन अपनी सीमा को पारकर देश, काल और निमित्त के परे चला जाता है। तात्पर्य यह है कि जो बातें आइन्स्टीन ने कही, लिंकन बार्नेट ने कही, वे तो भारत में कई हजार वर्ष पूर्व कही जा चुकी हैं। यह हमारे वेदान्त-धर्म की परम्परा है, जहाँ यह बताया गया है कि सत्य का साक्षात्कार होगा। हमने कभी विज्ञान का अपमान नहीं किया, वरन् विज्ञान को धर्म के सहायक तथा

शेष भाग पृष्ठ ४७२ पर

बन गये विवेकानन्द करके जीव-सेवा

विजय कुमार श्रीवास्तव, सीतापुर

जय जय जय जयति वंद्य, गैरिक वस्त्रधारी,
प्राणों में रामकृष्णा, सर्व हितकारी,
अपनों के मध्य में, खिले नरेन्द्र देवा।
बन गये विवेकानन्द, करके जीव-सेवा ।।

जिन्हें चाह रही नहीं, कभी अपने तन की,
उनमें जगी थी चाह, ईश से मिलन की,
पूछे प्रश्न कितनों से, क्या ईश-दर्श पाया ?
अथवा रूढ़ि ग्रंथियों में, उलझ सब गँवाया।।

यही भेद खोलने को, गये दक्षिणेश्वर,
जहाँ बैठे परमहंस, रामकृष्ण गुरुवर,
तन-मन-विवेक से, मिले नरेन्द्र देवा।
दे के हृदय पापशून्य की लगन से सेवा।।

गुरु की आराध्य, माँ काली की छाया,
जिसमें ब्रह्माण्ड, सूक्ष्म रूप में समाया,
पुष्ट साधना में लगे, फीके सब मेवा।
बन गये विवेकानन्द, करके जीव-सेवा ।।

मानव के धर्मों को, सहज में सँवारा,
दलित, मूर्ख और रुग्ण का बने सहारा,
भिक्षान्न से भले, उनकी सधी कलेवा ।
वेदान्त को सजा, की सदा जीव-सेवा।।

देश में, विदेश में खिले जो आत्मज्ञानी,
युगों के भी पार अमिट रहेगी कहानी,
सच्चरित्र, आत्मबली, विश्ववंद्य देवा ।
बन गये विवेकानन्द, करके जीव-सेवा ।।

माँ शारदा के धर्म पुत्र, मठ के गुरुभाई,
सागरों के पार भी, अलख यूँ जगाई,
धरा-धर्म जगती के सभी को बिलोया ।
बीज वेदान्त का दिलों में सबके बोया ।।

उनकी अभिव्यंजना थी, पाहन की रेखा,
गर्जे शिकागो में, तो मुड़कर न देखा,
ऐसे ही प्राणवन्त, थे नरेन्द्र देवा ।
बन गये विवेकानन्द, करके जीव-सेवा ।।

ईश्वर से ही जगत है

डॉ. शंकर लाल स्वामी, बीकानेर

ईश्वर से ही जगत है, ईश्वर से ही ज्ञान।
इस जग को समझा गये, रामकृष्ण भगवान।।
भक्त, भागवत और प्रभु तीनों एकहि जान।
त्याग भक्ति से हरि मिले, ठाकुर वचन प्रमाण।।
ईश्वर पर निर्भर रहो, चुनो सत्य की राह।
जीवन में हो सरलता, तो होती वाह-वाह।।
मन में व्याकुलता बिना, और बिना विश्वास।
ईश्वर दर्शन की कोई करता है क्यों आस?
सभी धर्म और पंथ की, एकहि देखी राह।
परमेश्वर से मिलन की, सबके मन में चाह।।
बिना भाव वैराग्य के, बिना वासना त्याग।
शान्त नहीं हो पायेगी, जग प्रपंच की आग।।
अपने दुख से हो दुखी, रोते हैं हर कोय।
जो व्याकुल प्रभु के लिए,सच्चा भक्त है सोय।।
साधु को दिन-रात देखो, चाल-चलन सुभाय।
करो तभी विश्वास जब, परख सही हो जाय।।
ईश्वर दर्शन होत ही, भ्रम का होता नाश।
गुफा अंधेरी में करे, जलता दीप प्रकाश।।
ब्रह्म-शक्ति और ब्रह्म में, भेद न होवे कोय।
निराकार साकार को, मत समझो तुम दोय।।
मत जितने संसार में, उतने मग जग माहिं।
करो न निंदा कोऊ की, सच्ची सीख है याहि।।
अज्ञानी से श्रेष्ठ है, ज्ञानी के उपदेश।
विज्ञानी अति श्रेष्ठ है, संशय रहे न शेष।।
निर्मल मन, निर्मल वचन, निर्मल रखो कर्म।
मनसा वाचा कर्मणा, एक भाव ही धर्म।।
शुद्ध ज्ञान का मार्ग हो, या भक्ति विशेष।
दोनों से ही मिलते हैं करुणाकर परमेश।।
ब्रह्मभाव सब में रहे, हिय करुणा का वास।
तो होगा ही एक दिन, अंतःकरण प्रकाश।।
ज्यों भक्तों पर की कृपा और किया कल्याण।
मेरे भी हिरदे वसो, रामकृष्ण भगवान।।

आधुनिक काल में विश्वबन्धुत्व की प्रासंगिकता

मीनल जोशी, नागपुर

सीरिया में युद्ध – हजारों निर्वासित, दक्षिण कोरिया के तानाशाह का अणुबम परीक्षण, पाकिस्तान का शस्त्रसंधि-उल्लंघन, अफगानिस्तान में उग्रपंथियों का आत्मघाती हमला, पुलिस पर पथराव, आपसी कलह के कारण भाई की हत्या आदि घटनाओं के बारे में हम प्रतिदिन सुनते रहते हैं। यह सब सुनकर मन निराश हो जाता है कि मानव-समाज किस दिशा में जा रहा है? वैश्विक स्तर से स्थानीय स्तर तक सर्वत्र हिंसा, द्वेष का वातावरण दिखायी देता है। विश्व में विकसित-अविकसित देशों में आर्थिक सम्पन्नता का अन्तर बढ़ता जा रहा है। धर्म, पंथ, सम्प्रदायों की संकीर्णता बढ़ रही है। आज राष्ट्रवाद के नाम पर अपना स्वार्थ पोषित किया जाता है। एक देश दूसरे देश का आर्थिक शोषण कर अपना अस्तित्व, अपनी सत्ता दृढ़ करना चाहता है। लोगों को अपने अधीन रखने के लिए जान-बूझकर सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक कलह उत्पन्न किया जाता है। क्या विश्व को इस अशान्ति, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा के वातावरण से निकालने का कोई उपाय है?

हाँ, वह उपाय है – प्रेम, सहिष्णुता, उदारता!!! चिरकाल से भारतीय संस्कृति में मनुष्य जीवन पर गहन चिन्तन होता चला आ रहा है। मानव जीवन के समग्र आयामों का विचार भारतीय संस्कृति ने किया है। केवल मनुष्य मात्र ही नहीं वरन् सारी सृष्टि के शाश्वत शान्ति और सुख, आनन्द के लिये हमारे ऋषियों ने तपस्या की। इसके फलस्वरूप जो तत्त्व हमारे समक्ष आया, वह है 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना। यह भावना भारत की विश्व को महान देन है। 'सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है' - इस भावना में विश्व शान्ति के बीज निहित हैं। आज के वैश्विक परिवेश में विश्वबन्धुत्व की यह भावना ही संसार के लोगों को शान्ति के पथ पर ले जा सकती है।

भारत देश की प्राचीनतम वैदिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करनेवाले संन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने अपनी सहज प्रखर वाणी से इस देश की संस्कृति को प्रकट किया था। कहाँ प्रकट किया था? १८९३ में अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में किया था। विश्वधर्म सम्मेलन में स्वागत समारोह का उत्तर देने के लिये वे खड़े हुए। उन्होंने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा, "अमेरिकावासी बहनो और भाईयो!' स्वामीजी के इन शब्दों में लोगों के प्रति एक हार्दिक स्नेह था! आन्तरिक प्रेम था! उनके इन शब्दों ने उपस्थित सबके हृदयस्थ प्रेम-वीणा को झंकृत कर दिया। सबने करतल ध्वनि से उनकी आन्तरिक पुकार का अनुमोदन किया। स्वामीजी के शब्दों में विश्वबन्धुत्व का मूल तत्त्व आन्तरिक प्रेम में निहित है। सबको अपना जानना ही विश्वबन्धुत्व की नींव है।

स्वामीजी ने अपने छोटे से भाषण के आरम्भ में बार-बार हिन्दू धर्म के सभी वर्णों और सम्प्रदायों के कोटि-कोटि नर-नारियों की ओर से उपस्थित सभी लोगों को धन्यवाद ज्ञापित किया। उनके इस कथन में भारतीय संस्कृति के प्रति कृतज्ञता-बोध तथा दूसरों का सम्मान करने का गुण प्रकट होता है। हमें बाल्यकाल से ही विनम्रता, सम्मान और श्रद्धा का संस्कार मिलता है। तुकड़ोजी महाराज के इस प्रसिद्ध भजन से हम सभी परिचित हैं –

"हर देश में तू, हर वेश में तू,
तेरे नाम अनेक तू एक ही है।"

प्रत्येक प्राणी मात्र में, चराचर सृष्टि में उसी परमात्मा-परमेश्वर का अस्तित्व है। महात्मा गाँधी जी ने कहा था कि 'ईशावास्यमिदं सर्वं' यह मंत्र चतुर्थांश भी जब तक मेरे देशवासियों के हृदय में है, तब तक इस देश की संस्कृति उन्नत होती रहेगी। हमारे देश का बच्चा-बच्चा इस मानसिकता के साथ ही बड़ा होता है।

आज भी विश्व में भारत ही ऐसा एकमात्र देश होगा, जहाँ सभी धर्म-पंथावलम्बियों को उनकी धर्म पद्धति के अनुसार जीवन जीने की पूर्ण स्वतंत्रता है। संसार में अग्रगण्य माने जानेवाले, स्वतन्त्रता और समतावादी देशों में आज भी कितने ही प्रतिबन्ध हैं। विस्मय की बात तो यह है कि संकीर्णता और स्वार्थ का पोषण करनेवाले, सत्ता के लिये दूसरे देशों पर आक्रमण का समर्थन करनेवाले देश भारत को 'मानवाधिकार' का पाठ पढ़ाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने विश्वधर्म-सम्मेलन में प्रदत्त अपने

भाषण में शिवमहिम्नस्तोत्र के 'रुचीनां वैचित्र्यात् ...' और भगवद्गीता के 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते ...' श्लोकों को उद्धृत किया था। इस श्लोक का निहितार्थ, भारतीय ऋषि की इस उद्घोषणा में मिलती है – **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'** – एक ही सत्य को विद्वान अनेक नामों से पुकारते हैं। भारतीय समाज ने सदैव अन्य धर्मावलम्बियों को आश्रय दिया। उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता, स्वाभिमान, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अबाधित रखते हुए उन्हें अपनाया। स्वामीजी कहते हैं, "हमें अभिमान है कि हमारी जाति ने कभी किसी अन्य जाति पर अत्याचार नहीं किए।" हमने धन, संपत्ति, शस्त्रास्त्र का उपयोग कर अन्य देशों पर सत्ता प्रस्थापित नहीं की। वरन् अन्य जातियों के अत्याचार हम सहते आये। हमें ही अपने देश, धर्म, संस्कृति से तोड़ने का निरन्तर प्रयास हुआ। आज भी बार-बार अन्यान्य मार्गों तथा साधनों से भारतीय समाज के मूल्यों को भ्रष्ट किया जा रहा है। किन्तु जैसे एक कवि कहते हैं – 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।' हम सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक आक्रमणों को सहकर भी दृढ़ता से खड़े हैं। हम जानते हैं, सत्य की ही विजय होगी।

हमारे देश के आचार्यों, महापुरुषों, संतों ने बारम्बार इस भावना को जनमानस में जागृत किया। इसलिए हमें विश्वास है कि भारतीय संस्कृति का मूल आधार विश्वबन्धुत्व है, यही भावना मानवजाति को उन्नत कर सकती है, विश्व को शान्ति प्रदान कर सकती है। महाराष्ट्र के श्रेष्ठ संत ज्ञानेश्वर महाराज पसायदान एक घटना का उल्लेख करते हैं – एक बार की बात है। एक भिक्षु अतिसार से पीड़ित था। वह कई बार बेसुध हो जाता और मक्खियाँ उसके शरीर पर भिनभिनाती रहतीं। बात जब बुद्धदेव को पता चली, तो वे शिष्य आनन्द के साथ उसे देखने उसकी कुटिया में गये। उन्होंने उससे पूछा, "भाई, तुम्हारे कष्ट में कोई परिचर्या नहीं करता? उसने उत्तर दिया, "मैं उनके किसी काम का नहीं हूँ, इसलिये शायद वे मेरी ओर ध्यान नहीं देते होंगे।"

तब तथागत ने आनन्द से जल लाने के लिए कहा। उसके द्वारा जल भरा कलश लाने पर उन्होंने उसका शरीर धोया और उचित व्यवस्था कर लौट आये। उन्होंने सभी भिक्षुओं को बुलाकर उनसे कहा, "अपनी देखभाल तुम लोग आपस में ही कर सकते हो। अगर तुम लोग ऐसा नहीं करोगे, तो तुम्हारा दुख-दर्द दूर कैसे होगा? ध्यान रखो, जो मेरी शुश्रूषा और देखभाल करना चाहता है, उसे चाहिए की वह अपने भाईयों की शुश्रूषा करें।"

स्वामीजी अपने भाइयों को भोजन मिल सके, इसलिये स्वयं भूखे रहते थे। वे गुरु-भाइयों की सेवा शुश्रूषा हेतु अपनी नियोजित यात्रा छोड़कर वापस आए और अपने गुरु-भाइयों की सेवा में दिन-रात जुट गये। आध्यात्मिक राज्य के सम्राट् ऋषि विवेकानन्द देश की जनता का दुख-दारिद्र्य देखकर व्याकुल हो जाते थे। समाधि में रहने का आनन्द छोड़कर उन्होंने अपने गुरुभाइयो के साथ देशवासियों की सेवा का व्रत लिया, जो आज भी अविरत चल रहा है। स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों में जाकर वेदान्त धर्म का प्रसार किया। अपने अनुभूतिसम्पन्न व्याख्यानों से पाश्चात्यों के आत्मतत्त्व को जाग्रत किया। स्वामी विवेकानन्द जी के ये विचार सन्त ज्ञानेश्वर के काव्य में सम्यक् अभिव्यक्त हुआ है –

खळांची व्यंकटी सांडो। तया सत्कर्मी रती वाढे।
भूता परस्परे पड़ो। मैत्र जीवाचें।।
दुरिताचे तिमिर जावो। विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो।
जो जे वांछलि तो ते लाहो। प्राणिजात।।

– अर्थात् दुर्जनों की दुर्जनता नष्ट हो, उनका सत्कर्म में प्रेम हो, प्राणीमात्र में मैत्री हो। दुर्जनों की बुद्धि का अन्धकार नष्ट हो, विश्व में आत्मज्ञान प्रकाशित हो, सभी प्राणियों को उनकी मनोवांछित वस्तु प्राप्त हो।

आज हमें आत्मपरीक्षण की आवश्यकता है। एक-दूसरे के विचारों का, भावनाओं का अनादर करने के कारण हमारे परिवार टूट रहे हैं। असहिष्णुता के कारण गावों, कस्बों का परस्पर सद्भाव, सौहार्द कलुषित हो रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति से ही समष्टि बनती है। अत: हमारे 'विश्वबन्धुत्व' के चिन्तन में स्थानीय व्यक्तिगत स्तर पर बन्धुत्व की भावना का पोषण तथा व्यवहार अपेक्षित है। हम अपने परिवार के सदस्यों, पास-पड़ोसियों से सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें। स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने सगे भाई-बहनों, गुरु-भाइयों, देशवासियों, सभी मानवों और प्राणीमात्र से अपार प्रेम किया। उन्होंने जीवन में विश्वबन्धुत्व को आचरित करके दिखाया है। हम भी सबके प्रति सहृदयता, सहानुभूति रखें। संसार में आज भी स्वामीजी द्वारा प्रदर्शित विश्वबन्धुत्व की सर्वाधिक प्रासंगिकता है। आइए, हम सबके कल्याण के लिए अपने हृदय से प्रार्थना करें – लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु। OOO

अनिकेत का निकेत

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

शिकागो में पहला कदम

सम्भवतः ३० जुलाई, १८९३ ई. की रात के साढ़े दस बजे स्वामी विवेकानन्द जी शिकागो नगर (अमेरिका) पहुँचे थे। अपरिचित नगर में यह उनका प्रथम आगमन था। वे अपने सामान के साथ कहाँ जाएँ, यही उनके लिए एक कठिन प्रश्न था। उनकी वेशभूषा से लोग यह समझ जा रहे थे कि वे इस शहर में अपरिचित हैं और इसका लाभ उठाकर वे उन्हें ठग रहे थे। अन्त में उन्होंने एक होटल में आश्रय लिया। शिकागो में वे पहली बार लगभग बारह दिन ठहरे। धर्म-महासभा हेतु अभी भी १ महीने से अधिक का समय बाकी था और इस शहर का खर्च अधिक देखकर स्वामीजी ने बोस्टन जाने का निर्णय लिया, क्योंकि वहाँ अपेक्षाकृत कम व्यय था।

ईश्वरेच्छा से भेंट

प्राध्यापक डॉ. राइट से परिचय होने के पश्चात् उन्होंने स्वामीजी को धर्म महासभा के प्रतिनिधि निर्वाचन समिति के सचिव के नाम पत्र दिया तथा शिकागो तक का रेल का टिकट भी खरीद दिया। ईश्वरेच्छा से सारी व्यवस्था हो जाने पर स्वामीजी सानन्द और निश्चिन्त मन से शिकागो की ओर रवाना हुए। ट्रेन में एक व्यवसायी से बातचीत होने पर उन्होंने आश्वासन दिया कि शिकागो पहुँचने पर वे बता देंगे कि डॉ. बैरोज जिस मोहल्ले में रहते हैं, वहाँ किस मार्ग से कैसे जाना होगा। परन्तु शाम को जब ट्रेन शिकागो स्टेशन में प्रविष्ट हुई, तो वे सज्जन हड़बड़ी में सब भूलकर अपने घर की ओर चल दिए। इधर स्वामीजी ने जब अपनी जेब में हाथ डाला, तो पता चला कि बैरोज का पता खो चुका है। उन्होंने राह चलते लोगों से पूछा, परन्तु वह नगर का जर्मन-बहुल उत्तर-पूर्वी अंचल था। वे लोग स्वामीजी का प्रश्न न समझ कर मौन चलते रहे। रात होने को आयी, तो भी वे किसी को इतनी-सी बात भी नहीं समझा सके कि वे किसी होटल में जाना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में उन्होंने स्वयं को बड़ा असहाय अनुभव किया और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। अन्त में रेलवे के माल गोदाम के पास एक बड़ा-सा खाली बॉक्स देखकर उन्होंने उसी में आश्रय लिया और भगवान के ऊपर निर्भर रहकर सारी चिंताओं से मुक्त मानस के साथ निद्रामग्न हो गए। स्वदेश के अपने परिव्राजक काल के दिनों में जिस प्रकार सारे दिन पथ चलने के बाद सन्ध्या हो जाने पर किसी वृक्ष के नीचे आश्रय लेकर वे भूमि पर ही सो जाते थे, ऐश्वर्य के आलय शिकागो नगर में भी आज उसी धारा का अनुसरण करना पड़ा।'[१] एक संन्यासी अनिकेत ही होता है और सम्भवतः ८ या ९ सितम्बर की उस रात्रि को उन्हें अनिकेतन ही रहना पड़ा। शिकागो नगर उस रात उस सूर्य से अपरिचित था, जिसे दो दिन के पश्चात् विश्व प्रसिद्ध होना था। अगले दिन नींद टूटने पर उनके चेहरे पर 'ताजे पानी की हवा' का झोंका लगा और उठकर उसी दिशा में अग्रसर होने पर झील के किनारे बसे धनिकों की अट्टालिकाओं से शोभित राजपथ पर जा पहुँचे। 'लेकशोर ड्राइव' के किनारे-किनारे ही वहाँ के करोड़पति व्यवसाइयों का निवास था। वे उस समय भूख से भी परेशान थे। अतः संन्यासी के समान ही वे द्वार-द्वार पर अन्न तथा महासभा के कार्यालय का पता जानने को भटकने लगे। लोगों ने उनके गंदे कपड़े, साँवला वर्ण तथा थका हुआ शरीर देखकर निर्ममतापूर्वक उन्हें भगा दिया; और कहीं-कहीं नौकरों ने उनकी हँसी उड़ाते हुए द्वार बन्द कर लिये। सभ्य अमेरिकी समाज में भिक्षुकों और विशेषतः काले आदमी के लिए कोई स्थान नहीं था। उनका मन बड़ा ही निराश हो गया। टेलीफोन आदि से भी किसी प्रकार सहायता ली जा सकती है, इसकी भी उन्हें कोई जानकारी न थी। अन्त में हताश होकर वे सड़क के किनारे बैठ गये और भगवान के निर्देश की प्रतीक्षा करने लगे। ठीक उसी समय सामने के एक धनाढ्य गृह का द्वार खुला और

१. युगनायक विवेकानन्द/२/१५

देखने में रानी के समान लगने वाली एक महीयसी महिला ने निकट आकर अत्यन्त मृदु स्वर में विनम्रता से उनसे पूछा, महाशय, क्या आप धर्म महासभा के प्रतिनिधि हैं? स्वामीजी ने खुलकर अपनी समस्या बताई। वे महिला उन्हें अपने साथ घर में ले गयीं और नौकरों को उनके लिए एक कमरे में विश्राम करने की व्यवस्था कर देने का आदेश दिया। उन्होंने स्वामीजी को बताया कि जलपान के बाद वे उन्हें साथ लेकर महासभा के कार्यालय जाएँगी। ये महिला थीं – श्रीयुत जॉर्ज डब्ल्यू हेल की पत्नी। उस दिन से ही वे और उनके पति तथा उनकी संतानें स्वामीजी के अत्यत आत्मीय स्वजनों में परिणत हो गये। श्री और श्रीमती हेल बड़े धर्मप्राण थे, इसीलिए स्वामीजी उन्हें 'फादर पोप' तथा 'मदर चर्च' कहा करते थे और उनकी दो पुत्रियाँ तथा भांजियाँ स्वामीजी की बहनें हुईं।[२]

श्रीयुत जॉर्ज डब्ल्यू हेल की पत्नी

अनिकेत का निकेतन

५४१, डियरबोर्न एवेन्यू, शिकागो का यह हेल-निवास ही स्वामीजी का निकेतन था। धर्म महासभा के प्रतिनिधि होने के पश्चात् स्वामीजी के रहने की व्यवस्था जे. बी. ल्योन के निवास में की गई थी। ११ सितम्बर, १८९३ के अपने विश्व प्रसिद्ध भाषण के पश्चात् उन्हें उस देश में अनेक आमंत्रण मिलने लगे तथा कुछ लोगों का आतिथ्य भी ग्रहण किया, परन्तु हेल-निवास ही उनका स्थायी निवास था। धर्म महासभा के पश्चात् लिखे विभिन्न पत्रों में हेल निवास का पता मिलता है। धर्म महासभा के पश्चात् स्वामीजी अमेरिका के विभिन्न स्थानों में वक्तृता के लिए जाने लगे, परन्तु हेल निवास ही उनका स्थायी निवास था। आलासिंगा को वे अपने एक पत्र में लिखते हैं, '५४१, डियरबोर्न एवेन्यू, शिकागो के अलावा और कहीं भी तुम मुझे कभी भी पत्र न भेजना। तुम्हारा अन्तिम पत्र सारे देश का चक्कर लगाकर फिर मेरे पास पहुँचा और वह भी इसलिए कि यहाँ पर सभी लोग मुझे अच्छी तरह जानते हैं।''[३] २५ सितम्बर, १८९४ को वे अपने गुरुभाइयों को लिखते हैं, 'तुम जिन जी. डब्ल्यू. हेल के पते पर चिट्ठियाँ भेजते हो, उनकी भी कुछ बातें लिखता हूँ। वे वृद्ध हैं और उनकी वृद्धा पत्नी हैं। दो कन्याएँ हैं, दो भतीजियाँ और एक लड़का। दोनों कन्याओं के बाल सुनहले हैं, और दोनों भतीजियों के काले। यह 'जूते सीने से चंडी पाठ' तक सब जानती हैं। कन्याएँ मुझे भैया कहती है। मैं उनकी माँ को माँ कहता हूँ। मेरा सामान उन्हीं के घर में है। मैं कहीं भी जाऊँ, वह उसकी देखभाल करती हैं।'[४]

५४१, डियरबोर्न एवेन्यू, शिकागो का हेल-निवास

स्वामीजी के प्रचारस्वरूप जब मिशनरियों को आर्थिक क्षति पहुँची, तो विक्षिप्त होकर किसी ने ऐसा दुष्प्रचार किया

२. युगनायक विवेकानन्द/२/१५-१६

३. वि.सा/२/३८०, ४. वि.सा./३/३०५-०६

कि स्वामी विवेकानन्द असंयमी हैं और उनके अनुचित आचरण से परेशान होकर मिशीगन के भूतपूर्व गवर्नर की पत्नी श्रीमती बागले को अपने अल्प वयस की नौकरानी को विदा करना पड़ा। इस दुष्प्रचार को बंद करने के लिए बागले परिवार से तीन पत्र छोड़े गए थे। जिसमें २२ जून, १८९४ को एनिस्क्वाम से श्रीमती बागले ने अपने एक मित्र को लिखा था, 'आपने मेरे प्रिय मित्र विवेकानन्द के बारे में लिखा है। उनके चरित्र के बारे में मेरी बड़ी उच्च धारणा है और उसे व्यक्त करने का सुयोग पाकर मैं अतीव आनन्दित हूँ।' ...

श्रीयुत जॉर्ज डब्ल्यू हेल

शिकागो में रहते समय वे अपने अधिकांश समय हेल परिवार के साथ बिताते हैं और मुझे लगता है कि वही मानो उनका घर है। पहले तो वे लोग उनको अतिथि के रूप में लाए, परन्तु बाद में उन्हें वे छोड़ना नहीं चाहते।'[५]

आपसी सम्बन्ध

हेल परिवार के साथ स्वामीजी का अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध था। जिस प्रकार श्रीमती और श्री हेल स्वामीजी के माता-पिता समान थे, वैसे ही उनकी पुत्रियाँ बिलकुल सगी बहनों की तरह। स्वामीजी अपने पत्र में लिखते हैं, 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम चारों से ही मैं सबसे अधिक प्रेम करता हूँ एवं मुझे अत्यन्त गर्व के साथ यह विश्वास है कि तुम चारों भी मुझसे वैसा ही स्नेह करती हो।'[६] 'तुम सब, तुम्हारा सारा परिवार मेरे प्रति इतना ममतालु है। लगता है, जैसे कि हम हिन्दू कहा करते हैं, निश्चय ही पूर्व जन्म में मैं तुम लोगों से सम्बन्धित रहा होऊँगा।'[७] हेल-निवास से ओली बुल को स्वामीजी लिखते हैं, 'हेल परिवार के प्रति मैं बहुत आभारी हूँ। इसलिए, मैंने सोचा कि नव वर्ष के दिन बिना किसी पूर्व सूचना के पहुँचकर उन्हें जरा अचरज में डाल दिया जाय।'[८] सन् १९०० के फरवरी महीने में 'फादर पोप' का देहांत हो जाता है। उस समय स्वामीजी मेरी हेल को संवेदनाजनक पत्र लिखते हैं और जून महीने में कैलिफोर्निया से वापस आते हुए कुछ दिन शिकागो में शोकाकुल परिवार के साथ भी कुछ दिन बिताते हैं। विदाई के दिन जब मेरी स्वामीजी के कमरे में जाती है, तो देखती है कि स्वामीजी का पलंग वैसा ही है, जैसा रात्रि में था। मेरी के पूछने पर स्वामीजी ने स्वीकार किया कि वे कल सोए नहीं और बोल उठे, 'ओह, मनुष्य की माया कटा पाना कितना कठिन है।'

ऐसा नहीं कि यह सम्बन्ध मात्र स्वामीजी की ओर से ही था, बल्कि हेल परिवार भी स्वामीजी से आन्तरिक भाव से जुड़ा हुआ था। एक बार श्री हेल को एक अज्ञात पत्र से बताया गया कि स्वामीजी दुश्चरित्र हैं, अतः हेल परिवार की कन्याओं को उनसे नहीं मिलने-जुलने दिया जाय। हेल महाशय ने पढ़ते ही, जैसे कोई कीड़े-मकोड़ों से भरा गंदा कागज का टुकड़ा हाथ में आते ही उसे फेंक देता है, वैसे ही उसे अग्निकुंड में डाल दिया। स्वामीजी के और भी अनेक मित्रों के घर इसी प्रकार की चिट्ठियाँ आयी थीं और उन सबकी वही गति हुई।[९] महेन्द्र नाथ दत्त अपनी पुस्तक में उल्लेख करते हैं कि स्वामीजी ने स्वयं उन्हें हेल बहनों के एक प्रसंग के संदर्भ में बताया था। एक बार स्वामीजी ने हेल बहनों से कहा कि वे अपने नाखून काटना चाहते हैं, इसके लिए उन्हें औजार चाहिए। इतना सुनते ही उनमें से एक औजार लेकर आई और स्वामीजी के जूते-मोजे उतारकर स्वामीजी का पैर अपनी गोद में रख कर, तो कभी अपने घुटनों के ऊपर रखकर बड़ी तन्मयता से नाखून काट दिए। फिर स्वामीजी को जूते यथावत् पहना कर बोली कि यदि आप नाई के पास जाते तो अवश्य ही आपको दो-तीन डालर देने पड़ते, अतः कम-से-कम मुझे एक डॉलर तो देना ही पड़ेगा। तब स्वामीजी ने कहा कि यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें मेरे पैरों को स्पर्श करने का अवसर मिला। इन चरणों को स्पर्श करने का अवसर सब को नहीं मिलता। यदि पोप के पैर छूने जाओ, तो तुम्हें पैसे खर्च करने होंगे। इतना सुनकर वह हँसते और ताली बजाते हुए वहाँ से चली गई। ६८ वर्ष की उम्र में मेरी का देहावसान हुआ, तब पता चला कि उन्होंने अपनी वसीयत में ४८,५००/- रुपए बेलूर मठ को दान किए थे।

५. युगनायक विवेकानन्द/२/१२५-२६, ६. वि.सा/५/३९१, ७. वि. सा/६/३९६, ८. वि.सा/३/३६५

९. युगनायक विवेकानन्द/२/१२६

चुनिंदा पत्र

हेल परिवार से स्वामीजी ने कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र लिखे हैं तथा स्वामीजी ने हेल परिवार के सदस्यों को कई पत्र लिखे हैं। हम इन्हीं पत्रों के कुछ विशेष अंशों का उल्लेख करेंगे, जो हमें अनुप्राणित करते हैं -

(अ) हेल परिवार से लिखे गए पत्रों के अंश

हेल बहनें

२८ दिसम्बर, १८९३ को स्वामीजी श्री हरिपद मित्र को लिखते हैं, 'यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि मेरे शिकागो के व्याख्यानों का समाचार भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है; क्योंकि जो कुछ मैं करता हूँ, उसमें लोकप्रसिद्धि से बचने का भरसक प्रयत्न अवश्य करता हूँ। .... यह सही बात है कि सुकृति पुरुषों के घर में भगवती स्वयं श्रीरूप में निवास करती हैं – या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेषु। मैंने यहाँ हजारों महिलाएँ देखीं, जिनके हृदय हिम के समान पवित्र और निर्मल हैं। अहा! वे कैसी स्वतंत्र होती हैं! सामाजिक और नागरिक कार्यों का वही नियंत्रण करती हैं। ...जब से मैं यहाँ आया हूँ, इन्होंने अपने घरों में मुझे स्थान दिया है, मेरे भोजन का प्रबन्ध करती हैं, व्याख्यानों का प्रबन्ध करती हैं, ... हजारों जन्मों में इनकी सेवा करने पर भी मैं इनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता।... जिन परिवारों में स्त्रियों से अच्छा व्यवहार किया जाता है और वे सुखी हैं, उन पर देवताओं का आशीर्वाद रहता है यह मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है। ... 'पुत्रियों का भी इसी तरह अत्यन्त यत्न के साथ पालन और शिक्षण होना चाहिए' – कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः। क्या तुम अपने देश की महिलाओं की अवस्था सुधार सकते हो? मैं इस देश में कुतूहलवश नहीं आया, न नाम के लिए, न यश के लिए, बल्कि भारत के दलितों की उन्नति करने का उपाय ढूँढने आया। यदि परमात्मा सहायक हुए, तो धीरे-धीरे तुम्हें वे उपाय मालूम हो जाएँगे। जहाँ तक आध्यात्मिकता का प्रश्न है, अमेरिका के लोग हमसे अत्यन्त निम्न स्तर पर हैं, परन्तु उनका समाज हमारे समाज की अपेक्षा अत्यन्त उन्नत है। हम इन्हें आध्यात्मिकता सिखाएँगे और उनके समाज के गुणों को स्वयं ग्रहण करेंगे।'[१०]

स्वामीजी अपने मद्रासी शिष्यों को लिखते हैं, 'मेरा विचार है कि भारत और भारत के बाहर मनुष्य जाति में जिन उदार भावों का विकास हुआ है, उनकी शिक्षा गरीब से गरीब और हीन से हीन को दी जाए और फिर उन्हें स्वयं विचार करने का अवसर दिया जाए। ...जीवन में मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि एक ऐसे चक्र का प्रवर्तन कर दूँ, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वारों तक पहुँचा दे और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर लें। ...'धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति' इसे अपना आदर्श-वाक्य बना लो।'[११]

किडी या सिंगारावेलु मुदालियर को स्वामीजी लिखते हैं, 'ज्ञान मार्ग अच्छा है, परन्तु उसके शुष्क तर्क में परिणत हो जाने का डर रहता है। प्रेम बड़ी ही उच्च वस्तु है, पर निरर्थक भावुकता में परिणत होकर उसके नष्ट होने का भय रहता है। हमें इन सभी का समन्वय ही अभीष्ट है। श्रीरामकृष्ण का जीवन ऐसा ही समन्वयपूर्ण था। ऐसे महापुरुष जगत में बहुत ही कम आते हैं, परन्तु हम उनके जीवन और उपदेशों को आदर्श के रूप में सामने रखकर आगे बढ़ सकते हैं। ... यह समन्वय कई व्यक्तियों के द्वारा साधित होगा और यह अन्य सभी प्रचलित धर्म मतों की अपेक्षा श्रेष्ठ होगा। ... श्रीरामकृष्ण के जैसा पूर्ण चरित्र कभी किसी महापुरुष का नहीं हुआ और इसलिए हमें उन्हीं को केन्द्र बनाकर संगठित होना पड़ेगा ... हाँ, हम उन कार्यों को करने से लोगों को मना करते हैं, जिनसे दूसरों को हानि पहुँचे। धर्म वही है, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि में सहाय मिले।

१०. वि.सा./२/३२५-२६ ११. वि.सा./२/२११-२२,

XIII Two sides of Swamiji's August 12, 1893 greeting card to Ajit Singh: (a) and (b)
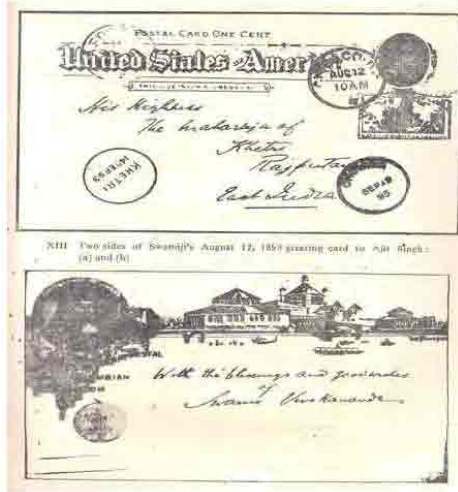
स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरिका से प्रेषित प्रथम पत्र

केवल इस नये आदर्श, नये सिद्धान्त और नये जीवन का प्रचार करो।[१२]

१९ मार्च, १८९४ को स्वामीजी अपने गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्द जी को लिखते हैं, 'खासकर देश के दारिद्र्य और अज्ञता को देखकर मुझे नींद नहीं आती। कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारत की अंतिम चट्टान पर बैठकर, मैंने एक योजना सोच निकाली। हम जो इतने संन्यासी घूमते-फिरते हैं और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निरा पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव कहा नहीं करते थे, खाली पेट में धर्म नहीं होता? वे गरीब लोग जानवरों-सा जीवन बिता रहे हैं, उसका कारण अज्ञान है।... गरीब लोग इतने बेहाल हैं कि स्कूलों और पाठशालाओं में नहीं आ सकते। कविता आदि पढ़कर उन्हें कोई लाभ नहीं। एक जाति की हैसियत से हमने अपनी जातीय विशेषता को खो दिया है और यही सारे अनर्थ का कारण है। हमें हमारी इन जाति को उसकी खोयी हुई जातीय विशेषता को वापस ला देना है और अनुन्नत लोगों को उठाना है। ... इसे करने के लिए पहले मनुष्य चाहिए, फिर धन। ... इसलिए मैं अमेरिका आया हूँ, स्वयं धन कमाऊँगा, और तब देश लौटकर अपने जीवन के इस एकमात्र ध्येय की सिद्धि के लिए अपना जीवन निछावर कर दूँगा।[१३]

मैं फिर तुम्हें याद दिलाता हूँ, **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** – 'तुम्हें कर्म का अधिकार है, फल का नहीं।' चट्टान की तरह दृढ़ रहो। सत्य की हमेशा जय होती है। श्रीरामकृष्ण की संतान निष्कपट एवं सत्यनिष्ठ रहें, शेष सब कुछ ठीक हो जाएगा। ...निःस्वार्थ भाव से काम करने में संतुष्ट रहो और अपने प्रति सदा सच्चे रहो। पूर्ण रूप से शुद्ध, दृढ़ और निष्कपट रहो, शेष सब कुछ ठीक हो जाएगा! ...उसी को मैं महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है, अन्यथा वह दुरात्मा है।[१४]

अपने एक और पत्र में स्वामीजी अपने गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखते हैं, 'मजूमदार की कारस्तानी सुनकर अत्यन्त दुख हुआ। जो दूसरे को धक्के देकर आगे बढ़ना चाहता है, उसका परिणाम ऐसा ही होता है। मेरा कोई अपराध नहीं। वह दस वर्ष पहले यहाँ आया था, उसका बड़ा आदर हुआ और खूब सम्मान मिला। अब मेरे पौ बारह हैं।

श्रीगुरु की इच्छा, मैं क्या करूँ! इसके लिए गुस्सा होना मजूमदार की नादानी है। ... मुझे नाम की आवश्यकता नहीं, ...**मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्** -- मुझे उनकी कृपा पर आश्चर्य है। जिस भी शहर में जाता हूँ। उथल-पुथल मच जाती है। यहाँ वालों ने मेरा नाम रखा है - cyclonic Hindu (तूफानी हिन्दू). याद रखना, सब उनकी ही इच्छा से होता है – I am a voice without a form. (मैं एक निराकार वाणी हूँ।)[१५]

'नवयुवकों को वेद तथा विभिन्न भाष्यों और दर्शनों की पूरी शिक्षा देनी होगी, इसमें संसार के अन्य धर्मों का ज्ञान भी शामिल रहेगा। साथ ही एक अंग्रेजी और एक देशी भाषा का पत्र निकालना होगा, जो उस विद्यालय के मुखपत्र होंगे। ...हमें असत्य से सत्य तक अथवा बुरे से अच्छे तक पहुँचना नहीं है, वरन् सत्य से उच्चतर सत्य तक, श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम तक पहुँचना है। मैं अपने देशवासियों से कहता हूँ कि अब तक जो तुमने किया, सो अच्छा ही किया है, अब इस समय और भी अच्छा करने का मौका आ गया है। ...प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रभाव रहता है : भारत में वह धर्म है। उसे प्रबल बनाइए, बस, दोनों ओर के अन्य स्रोत उसी के साथ-साथ चलेंगे।'[१६]

१२. वि.सा./२/३२५-२९

१३. वि. सा./२/३३८, **१४.** वि. सा. /३/३४४-४५, **१५.** वि. सा./३/३५८-५९, **१६.** वि.सा./३/३६६-६८

(ब) हेल परिवार के सदस्यों को लिखे गए पत्रों के अंश-

(डेट्राइट से लिखे अपने पत्र में स्वामाजी हेल बहनों को लिखते हैं), 'मेरे विषय में यहाँ के एक समाचार पत्र ने सबसे अजीब बात यह लिखी है, वह 'तूफानी हिन्दू' यहाँ आ धमका है और श्री पामर का अतिथि है। ...हर चीज को यंत्र के स्तर पर लाने की यह प्रवणता ही पाश्चात्यों की अद्‌भुत समृद्धि का कारण है। और इसी ने धर्म को उनके द्वार से हटा दिया है। (ईसाबेल को लिखते हैं), 'बौद्धों की एक उदार प्रार्थना है – पृथ्वी के सभी पवित्र मनुष्यों के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ। ... तुम अभी जिस प्रकार सुखी हो, कृपाधन्य हो, सत्स्वभाव हो, पवित्र हो, उसी प्रकार सदा बनी रहो।' (स्वामीजी अपने सुख-दुख की बातें भी हेल परिवार को लिखा करते थे, उनमें से एक में वे मेरी हेल को लिखते हैं), 'मजूमदार कोलकाता लौट आया है और यह प्रचार कर रहा है कि विवेकानन्द अमेरिका में विश्व के समस्त पाप कर रहा है।... यही तुम्हारे अमेरिका का अद्‌भुत आध्यात्मिक पुरुष है! यह उनका दोष नहीं है; जब तक कोई वास्तव में आध्यात्मिक ना हो जाए, अर्थात् जब तक किसी को आत्म स्वरूप में वास्तविक अन्तर्दृष्टि नहीं प्राप्त हो जाती और आत्मा-जगत् की एक झाँकी नहीं मिल जाती, तब तक वह बीज को भूसे से, गहराई को थोथी बातों से पृथक् नहीं कर सकता। मुझे बेचारे मजूमदार के लिए अफसोस है कि वह इतना नीचे उतर आया। प्रभु उसका भला करें।'[१७] तथा इसी प्रकार इसाबेल को लिखते हैं, 'कलकत्ते के पत्रों में प्रकाशित उद्धरण तो विशेषकर संतोषप्रद हैं, पर इनकी अतिशयोक्ति पूर्ण लेखन शैली के कारण मैं इन्हें तुम्हारे पास न भेजूँगा। उनमें मुझे विशिष्ट, अद्भुत और इसी ढंग की बेकार की बातों से विभूषित किया गया है, परन्तु उन्होंने मुझे समग्र जाति की कृतज्ञता भी भेजी है। अब सिर्फ एक बात के सिवा मुझे कोई चिन्ता नहीं है कि मेरे देशवासी या अन्य लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं। मेरी बूढ़ी माँ है। वह जिन्दगी भर यातना सहती रहीं और इन कष्टों के बीच भी मुझे ईश्वर और मानव के सेवार्थ अर्पण कर सकीं। किन्तु यह संवाद कि उन्होंने अपने सबसे प्यारे का, अपनी आशा का त्याग किया – दूर देश में घोर अनैतिक पाशविक जीवन बिताने के लिए, जैसा कि मजूमदार कलकत्ते में प्रचारित कर रहा है, उनका प्राण हर लेगा। पर प्रभु महान हैं, उनकी सन्तान को कोई चोट नहीं पहुँचा सकता। मेरे किसी प्रयास के बिना ही भेद खुल गया। क्या तुम जानती हो कि हमारे अन्यतम प्रधान पत्र का, जो मेरी इतनी प्रशंसा करता है, सम्पादक कौन है? और ईश्वर को धन्यवाद देता है कि मैं हिन्दुत्व का प्रतिनिधित्व करने अमेरिका आया? वह मजूमदार का चचेरा भाई है!! बेचारा मजूमदार! उसने झूठ बोलकर अपना ही अहित किया है। ईश्वर जानता है, मैंने अपनी सफाई देने का कोई प्रयास नहीं किया।'[१८]

अपनी आत्मीयता भरे एक पत्र में स्वामीजी ईसाबेल को लिखते हैं, 'न्यूयॉर्क या बोस्टन से यदि तुम्हें कुछ ऐसा मँगाना हो, जो शिकागो में ना मिलता हो, तो जल्दी ही लिख देना। अब मेरे पास ढेर से डालर हैं। तुम जो चाहोगी क्षण भर में भेज दूँगा। यह न सोचना कि इसमें कुछ अशोभन होगा, मेरे सम्बन्ध में कोई पाखंड नहीं है। यदि मैं भाई हूँ, तो भाई हूँ, संसार में अगर किसी बात से मुझे घृणा है, तो पाखंड से।'[१९]

स्वामीजी अपने एक कवित्वपूर्ण पत्र में मेरी हेल और हैरियट हेल को लिखते हैं, 'इस जगत की धूल तक भी तुम्हारा स्पर्श न कर सके, क्योंकि कवियों का ही कहना है कि यह जगत फूल मालाओं से ढका हुआ एक सड़ा मुर्दा है। यदि तुम से हो सके, तो इसका स्पर्श तक न करना। तुम तो स्वर्गस्थ विहंगमों के शिशु शावक हो। इससे पहले कि तुम्हारे पैर इस दूषित पंकराशि को, इस संसार को स्पर्श करें, चले आओ, उड़कर आकाश की ओर चले आओ।'[२०]

श्रीमती हेल को स्वामीजी लिखते हैं, 'मेरा धर्म यह उपदेश देता है कि क्रोध यदि यह न्यायोचित भी हो, एक जघन्य पाप है। अपने-अपने धर्म का अनुगमन करना ही सभी का कर्तव्य है। ...मदर चर्च, हँसी मजाक की बात अलग, मैं इन लोगों द्वारा मुझ पर किए गए आरोपों की किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि पाखंड, छल एवं नाम तथा यश की कामना ही इन लोगों की एकमात्र प्रेरणा है।[२१]

कलकत्ते में आयोजित सभा के सम्बन्ध में स्वामीजी हेल बहनों को लिखते हैं, 'जगदम्बा की जय हो! मुझे

१७. वि.सा./२/३३०-३३३

१८. वि.सा./२/३४५, **१९.** वि.सा./२/३४७, **२०.** वि. सा./२/३७३, **२१.** वि.सा./२/३७८-७९

आशातीत उपलब्धि हुई है। हमारे पैगम्बर सम्मानित किए गए हैं और वह भी अत्यधिक उत्साह के साथ। उनकी दया पर मैं शिशुवत् रो रहा हूँ। बहनो, वे कभी अपने सेवक को नहीं छोड़ते। इस पत्र से, जिसे मैं तुम्हें भेज रहा हूँ, सब कुछ की व्याख्या हो जाएगी और प्रकाशित सामग्री अमेरिका के लोगों के लिए आ रही है। उनमें जिन व्यक्तियों के नाम हैं, वे हमारे देश के रत्न हैं। सभापति कलकत्ते के मुख्य अभिजात पुरुष हैं और दूसरे सज्जन महेशचन्द्र न्यायरत्न संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य हैं और सम्पूर्ण भारत के ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और सरकार द्वारा इसी रूप में जाने जाते हैं। पत्र तुम्हें सब कुछ बता देगा।'[२२]

अपने एक वैराग्यपूर्ण पत्र में स्वामीजी कुमारी मेरी हेल तथा कुमारी हैरियट हेल को लिखते हैं, 'ईश्वरासक्त हो जाओ। देश का या कुछ और का क्या हो, उसकी क्या परवाह? पाप की विभीषिका में यही कहो कि हे मेरे भगवन्! मेरे प्रिय! मृत्युकालीन यातना में भी यही कहो कि हे मेरे भगवन्! हे मेरे प्रिय! ... यह जीवन एक महान सुयोग है .. क्या, तुम इसकी अवहेलना कर सांसारिक सुख में फँसना चाहती हो? वे निखिल आनन्द की मूल श्रोतस्वरूप हैं, उस परम श्रेयस् का अनुसंधान करो, उस परम श्रेयस् को ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य बनाओ और तुम परम श्रेयस् को प्राप्त हो जाओगी।'[२३]

मेरी हेल (अनुमानतः १८९६ में)

कुमारी हेल को स्वामीजी लिखते हैं, 'एक व्यक्ति अपनी बाहरी परिस्थितियों एवं सामाजिक विचारों के अनुकूल अपने आप को ढाल लेता है, और समाज से, जो कि उसका सब प्रकार से कल्याण करनेवाला है, सब प्रकार की सुख सुविधाएँ प्राप्त कर लेता है। दूसरा एकाकी खड़ा रहता है और समाज को अपनी ओर खींच लेता है। समाज के अनुकूल रहनेवाले मनुष्य का मार्ग फूलों से आच्छादित रहता है और प्रतिकूल रहनेवाले का काँटों से। परन्तु 'लोकमत' के उपासकों का एक क्षण में विनाश होता है और सत्य की सन्तान सदा जीवित रहती है। ...मैं ऐसा कोई मार्ग नहीं निकाल पाया, जिससे मैं सब को प्रसन्न रख सकूँ। मैं वही रहूँगा, जो मैं प्रकृत रूप से हूँ – अपनी अन्तरात्मा के प्रति पूर्ण रूप से ईमानदार। एकमात्र सत्य ही चिरस्थायी है। हे सत्यरूपी प्रभु, तुम्हीं मेरे एकमात्र पथ प्रदर्शक बनो। ... मेरा धर्म सिखाता है कि भय ही सबसे बड़ा पाप है। जो किसी व्यक्ति विशेष के सहारे रहता है, वह उस सत्यरूपी प्रभु की सेवा नहीं कर सकता। ...यदि तुम निकल सकती हो, तो इस मूर्खता के जाल से निकलो, जिसे दुनिया कहा जाता है। तभी मैं तुम्हें वास्तव में साहसी और मुक्त कह सकूँगा।[२४]

प्रोफेसर मैक्स मूलर के सम्बन्ध में हेल बहनों को स्वामी जी लिखते हैं, 'मुझे प्रसन्नता है कि उस वृद्ध पुरुष ने सत्य का दर्शन कर लिया है, क्योंकि आधुनिक अनुसंधान और विज्ञान के युग में धर्म समझने का वही एकमात्र उपाय है।'[२५]

हेल परिवार के प्रति स्वामीजी अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए अपने सहस्रद्वीपोद्यान के शान्तिमय जीवन के सम्बन्ध में मेरी हेल को लिखते हैं, 'भारत से आयी डाक के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। तुम्हारे प्रति अपना आभार मैं शब्दों में नहीं प्रकट कर सकता। तुमने अमरत्व पर मैक्स मूलर के निबन्ध में पढ़ा होगा, जो मैंने मदर चर्च को भेजा था - वे सोचते हैं कि हम इस जीवन में जिन्हें प्यार करते हैं, उन्हें हमने अतीत में भी प्यार किया होगा। इसीलिए ऐसा लगता है कि अतीत के जीवन में मैं 'पावन परिवार' का रहा होऊँगा।... मदर चर्च और फादर पोप और सभी बहनों को मेरा प्यार। मैं यहाँ बहुत आनन्द से हूँ। बहुत कम खाता हूँ और पर्याप्त सोचता हूँ, अध्ययन करता हूँ और बातें करता हूँ। मेरी आत्मा में आश्चर्यजनक शान्ति आती जा रही है। प्रतिदिन मुझे ऐसा अनुभव होता है, जैसे मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है; सदा चिर विश्राम और शान्ति में अपने को अनुभव करता हूँ। हम सबके पीछे ईश्वर ही है, जो क्रियाशील हैं। हम लोग मात्र यंत्र हैं। धन्य है 'उसका' नाम!'[२६]

स्वामीजी न्यूयार्क से मेरी हेल को लिखते हैं, 'लगातार काम करने के कारण मेरा स्वास्थ्य इस वर्ष बहुत टूट गया

२२. वि.सा./२/३७९-८०, २३. वि.सा./२/३८९-९०,

२४. वि.सा./३/३७८-८०, २५. वि.सा./४/२८०, २६. वि. सा./४/३३३,

है। ... मुझे लगता है मैं काम तो खूब कर रहा हूँ, फिर भी इंग्लैण्ड में बहुत अधिक काम मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मुझे यह झेलना ही पड़ेगा। और तब, मैं आशा करता हूँ कि भारत पहुँचकर विश्राम लूँगा। जीवनभर मैंने संसार की भलाई के लिये शक्ति के अनुसार चेष्टा की है, फल भगवान के हाथ में है। ... मैं तुम चारों बहनों का चिर कृतज्ञ हूँ। इस देश में मेरा जो कुछ भी है, सब तुम लोगों का है। भगवान तुम्हारा सर्वदा मंगल करें और सुखी रखें। मैं जहाँ भी रहूँगा, तुम्हारी याद, प्यार तथा हार्दिक कृतज्ञता के साथ आती रहेगी।'[२७]

भारत में हुए उनके स्वागत के सम्बन्ध में मेरी हेल को स्वामीजी लिखते हैं, 'रामनाद के राजा साहब ने अपना मानपत्र एक अत्यन्त सुन्दर नक्काशी किये हुए असली सोने के बड़े बॉक्स में रखकर मुझे प्रदान किया है; उसमें मुझे 'परम पवित्र' कहकर संबोधित किया गया है। ... मैं अपने भाग्य के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हूँ। फिर भी मेरा मन शिकागो के उन निस्तब्ध, विश्रान्तिपूर्ण दिनों की ओर दौड़ रहा है - कितने सुन्दर ... विश्रामदायक, शान्ति तथा प्रेमपूर्ण थे वे दिन! इसलिए मैं अभी तुमको पत्र लिखने बैठा हूँ। आशा है कि तुम सभी सकुशल तथा आनन्दपूर्वक होगे। ...माताजी, पिताजी तथा तुम सभी को मेरा प्यार।'[२८]

स्वामीज इस देश में एक वेदान्त प्रचारक थे और हेल परिवार एक ईसाई धर्मानुयायी था, परन्तु इसके कारण उनके सम्बन्धों में कभी कोई अन्तर नहीं आया। स्वामीजी मदर चर्च अर्थात् श्रीमती हेल को लिखते हैं, '...ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सुसंस्कृत अध्यापक मनियेर विलियम्स की एक वक्तृता से मुझे एक उद्धरण मिला है। जो व्यक्ति प्रतिदिन भारतवर्ष को ईसाई धर्म में रूपान्तरित करने का स्वप्न देखा करता है, उसके द्वारा ऐसा वक्तव्य अत्यन्त आश्चर्यजनक है। 'यद्यपि हिन्दू धर्म की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस धर्म के लिए न धर्म रूपान्तरण की आवश्यकता है और ना ही इसके लिए कोई प्रयास। किसी भी प्रकार से इनकी संख्या का ह्रास नहीं हो रहा है, अथवा इस्लाम और ईसाई जैसे दो धर्मान्तरणकारी मतों के धक्के के पश्चात् भी यह धर्म विलुप्त नहीं हो रहा है। ...यह धर्म सब कुछ ग्रहण कर लेता है, सब को अपना बना लेता है, और सर्वव्यापी है। यह धर्म दावा करता है कि यह मानवता का धर्म है, मनुष्य के स्वभाव का धर्म है, समस्त विश्व का धर्म है। ईसाई धर्म या अन्य किसी धर्म की प्रगति में बाधा देने की इसे कोई आवश्यकता महसूस नहीं होती। क्योंकि सबको आलिंगन करने के लिए अपने बाहुओं को और सदैव विस्तृत अपने सीने में समस्त धर्म मतों को स्वीकार कर लेने में इसे कोई समस्या नहीं होती। वस्तुतः हिन्दू धर्म ऐसा कुछ दे सकता है, जो समस्त मानसिकताओं के लिए उपयुक्त हो।'[२९] OOO

सन्दर्भ सूत्र – **२७.** वि.सा./४/३८२, **२८.** वि.सा./५/४०६ **२९.** मा हेल के विवेकानन्द जे सब चिठि 'पत्रावली'- ते नेइ (बांगला)/५३

पृष्ठ ४६१ का शेष भाग

परिपूरक के रूप में लिया। जब तक भारत में हम धर्म और विज्ञान को साथ लेकर चलते रहे, तब तक हमने धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में तथा विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की। पर जबसे भारत परतन्त्र हुआ, तबसे हमारा मन संकीर्ण हो गया। हमने अपने मन के सारे दरवाजे बन्द कर दिये, इसीलिए धर्म के क्षेत्र में अन्धविश्वास और कुसंस्कार पनपा तथा हमारे जीवन में गिरावट आयी। आज हम जो धर्म की स्थिति देख रहे हैं, जो केवल कुछ क्रिया-अनुष्ठानों तथा मत-मतान्तर तक सीमित है, वह यथार्थ धर्म नहीं है। यथार्थ धर्म तो वेदान्त है, जो डंके की चोट पर सत्य के रहस्य के उद्घाटन की घोषणा करता है, जो विज्ञान के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलता है तथा उसे परिपूर्णता प्रदान करता है। OOO **(समाप्त)**

स्वामी विवेकानन्द की शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण

अवधेश प्रधान

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

१२५ वर्ष हुए जब स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ के सितम्बर महीने में आयोजित शिकागो की विश्वधर्म सभा में भारत के धर्म और दर्शन की, उसकी संस्कृति की विजय-पताका फहराई थी। १८९६ तक पश्चिम में ही रहकर वेदान्त का व्यापक और ठोस प्रचार-प्रसार करने के बाद वे भारत लौटे तो १८९७ की जनवरी में, लेकिन उनके पश्चिम विजय का समाचार भारत भर में पहले ही फैल चुका था और उससे जो सांस्कृतिक जागरण की लहरें उठनी आरम्भ हुईं थीं, वही विवेकानन्द के भारत आगमन पर उनके स्वागत में ज्वार बनकर उमड़ पड़ीं। विवेकानन्द के जीवन और साहित्य के गहन अध्येता और 'विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष' जैसे अद्वितीय ग्रंथ के लेखक श्री शंकरी प्रसाद बसु ने क्या ही अद्‌भुत उद्‌भावना की है, "विवेकानन्द शिकागो वक्तृता के बाद भारत आये, सशरीर नहीं, समाचार के रथ पर चढ़कर आये और उस समाचार के रोमांचकारी स्पर्श से भारत के एक प्रान्त से दूसरा प्रान्त प्रकाशित हो उठा।"[१]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में अन्य समाचार छपते आ रहे थे, लेकिन शिकागो वक्तृता और विवेकानन्द से सम्बन्धित समाचारों में विशेष क्या था? "इन समाचारों ने पराधीन पतित भारतवर्ष को उसके लिए सबसे अधिक प्रयोजनीय वस्तु लाकर दी – आत्मसम्मान और आत्मविश्वास।"[२] उस समय देश में नेताओं और समाज-सुधारकों की कमी न थी। भारत की दीनता-हीनता, दुरवस्था, दुर्बलता की, अज्ञान और अन्धविश्वास की, कुरीतियों और कुप्रथाओं की भरपूर भर्त्सना हो रही थी। इन समाचारों के माध्यम से एक ऐसे महापुरुष का जागरण सन्देश आया, जो देश को "लज्जित करने को नहीं आए थे, आए थे उद्‌बुद्ध करने, तोड़ने को नहीं आए थे, जोड़ने को आए थे।"[३]

विवेकानन्द के शिकागो वक्तृता और अमेरिका में उनके धर्म-प्रचार के बारे में तत्कालीन अमेरिकी पत्रों में उपलब्ध सामग्री की खोजबीन करके मेरी लुई बर्क ने छह खंडों में एक अविस्मरणीय शोधपूर्ण ग्रंथ लिखा था – 'स्वामी विवेकानन्द इन अमेरिका: न्यू डिस्कवरीज'। इसी प्रकार तत्कालीन भारतीय पत्रों में प्रकाशित सामग्री की खोजबीन करके शंकरी प्रसाद बसु ने अत्यन्त श्रमसाध्य और मूल्यवान शोधपूर्ण ग्रंथ (छह खंडों में) लिखा – 'विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष'। स्वामी विवेकानन्द की गौरव गाथा का बृहद् आख्यान प्रस्तुत करके उन्होंने बंगला ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं का गौरव बढ़ाया है। उनके शोध को आधार बनाकर यहाँ शिकागो वक्तृता और भारतीय नवजागरण के बारे में कुछ बातें संक्षेप में प्रस्तुत की जा रही हैं।

भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित सामग्री का एक अंश वह है, जो सीधे अमेरिकी स्रोतों से उद्धृत है। सबसे पहले लेते हैं विश्वधर्म महासभा की विज्ञान शाखा की सभापति मारविन मेरी स्नेल का वह पत्र, जिसमें उन्होंने धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द की भूमिका की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। ३० जनवरी, १८९४ को लिखित यह पत्र भारत के एंग्लो इंडियन पत्र पायोनियर के ८ मार्च, १८९४ के अंक में छपा था। अमेरिकी पत्रों में स्वामीजी के बारे में जो प्रशंसा की हिलोरें उठी थीं, उसके विरोध में भी जब कुछ प्रतिक्रियाएँ आने लगीं, तब 'मेरी स्नेल' ने अपने स्पष्टीकरण में उनका समाधान करते हुए लिखा, "भारत से आए हुए धर्म महासभा के प्रतिनिधियों के बारे में अमेरिका के समाचार पत्रों और जनता के बीच जो प्रशंसा का वृंद संगीत उठा है, उसमें कभी-कभी कुछ बेसुरी आवाजें भी सुनाई देती हैं, विशेष रूप से स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में। इस परिस्थिति में वास्तविक स्थिति के बारे में आप लोगों के देशवासियों को अवगत कराने के लिए और हमारे जनगण के सुसंस्कृत और उदार बुद्धि समूह के सर्वान्त:करण की समवेत कृतज्ञता और समादर व्यक्त करने के लिए मैं हार्दिक उद्दीपना का अनुभव करती हूँ। धर्म महासभा की विज्ञान शाखा की सभापति के रूप में और विज्ञान से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों के सभापति के रूप में मैं अपना व्यक्तिगत साक्ष्य यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ। स्वामी विवेकानन्द को यहाँ किस श्रद्धा और सम्मान के साथ ग्रहण किया गया है, उन्होंने कितनी दूर तक प्रभाव डाला

है, उन्होंने क्या मंगल कार्य किया है, इसके बारे में एक प्रत्यक्षदर्शी की हैसियत से कुछ कहने की मैं अधिकारिणी हूँ।

"गत सितम्बर महीने में शिकागो शहर में संसार के धर्मों का जो महासम्मेलन हुआ है, उसको अनेक कारणों से धर्म के इतिहास में विशेष रूप से घटित एक घटना कहा जा सकता है। एक मुख्य लाभ यह हुआ है कि ईसाई जगत, विशेष रूप से अमेरिका के लोगों को, एक महान शिक्षा प्राप्त हुई है कि - संसार में ऐसे भी अनेक धर्म हैं, जो ईसाई धर्म की अपेक्षा अधिक श्रद्धेय हैं; दार्शनिक गहराई में, आध्यात्मिक व्याकुलता में, विचार की उन्मुक्त ओजस्वी अभिव्यक्ति में, मानवता के प्रति सहानुभूति की व्यापक निष्ठा में वे सभी धर्म ईसाई धर्म से आगे हैं और इसी के साथ नीतिगत सौन्दर्य और कार्यकुशलता को भी उन्होंने बाल बराबर भी छूटने नहीं दिया है।" महासभा में विचार-विमर्श के दौरान जिन आठ गैर-ईसाई धर्मों के प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे, वे थे हिन्दू, जैन, बौद्ध, यहूदी, कंफ्यूशियाई, शिंतो, इस्लाम और पारसी धर्म। इनमें भी हिन्दू धर्म और उसके प्रतिनिधि विवेकानन्द ने अमेरिकी जनता पर सबसे अधिक प्रभाव डाला, "महासभा और अमरीकी जनता पर हिन्दू धर्म ने जैसा प्रभाव डाला, वैसा और कोई भी धर्म नहीं कर सका। ...और हिन्दुओं के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठत्तम प्रवक्ता थे स्वामी विवेकानन्द। फिर वे ही असंदिग्ध रूप से महासभा के सर्वाधिक लोकप्रिय तथा प्रभावशाली व्यक्ति भी थे। महासभा के कक्ष में तथा मेरे सभापतित्व में परिचालित उसकी विज्ञान शाखा के अधिवेशनों में वे प्राय: व्याख्यान देते थे और हर बार किसी भी ईसाई या गैरईसाई वक्ता की अपेक्षा उनका अधिक उत्साह के साथ स्वागत होता था। वे जहाँ भी जाते, लोग उन्हें घेर लेते और उनका प्रत्येक शब्द ध्यानपूर्वक सुनते। कट्टर से कट्टर ईसाई भी उनके बारे में कहते कि वे सचमुच ही मनुष्यों में सम्राट् हैं।"

यह पत्र एक एंग्लो-इंडियन समाचार पत्र में छपने के कारण और भी चर्चित हो गया। 'हिन्दू' के अतिरिक्त मिरर (९मार्च), अमृत बाजार (१० मार्च), ट्रिब्यून (२१मार्च) और थियोसोफी थिंकर (७ अप्रैल) जैसे पत्रों ने इसे पुनर्मुद्रित किया।

अमेरीकन पत्र 'प्रेस' में प्रकाशित सामग्री को भारतीय पत्र 'मिरर' ने ३० नवम्बर, १८९३ के अंक में पुनर्मुद्रित किया। इसमें संवाददाता ने स्वामीजी के आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व का चित्र अंकित करते हुए लिखा कि उन्होंने एक ऐसा भाषण दिया कि सम्पूर्ण धर्म महासभा को जीत लिया। वहाँ प्राय: सभी ईसाई सम्प्रदायों के विशप और मिनिस्टर उपस्थित थे, विवेकानन्द ने मानों उन सब को उड़ा दिया। उन्होंने जिस दिन पहला भाषण दिया, उसी दिन से जनता उनके पीछे दौड़ने लगी। महासभा के मुख्य भवन से बाहर-भीतर आते-जाते सैकड़ों स्त्रियाँ उन्हें घेर लेतीं। उनके निकट पहुँचने और उनसे हाथ मिलाने के लिए उनमें आपस में लड़ाई हो जाती।

मिरर ने २७ दिसम्बर, १८९३ के अंक में 'न्यूयार्क क्रिटिक' से जो संवाद पुनर्मुद्रित किया, उसमें विवेकानन्द के व्यक्तित्व और वक्तृत्व कौशल की प्रशंसा करते हुए लिखा - एक बात विशेष रूप से ध्यान में आयी है कि वे व्याख्यान देते समय अपने पास कोई नोट नहीं रखते। उसी अंक में न्यूयार्क हेराल्ड का यह संवाद पुन: प्रकाशित है – "विवेकनन्द धर्म महासभा के सबसे प्रधान व्यक्तित्व रहे। उनका व्याख्यान सुनने के बाद हमें अनुभव होता है कि उनके ज्ञानी देश के लोगों के पास मिशनरियों को भेजना कितनी मूर्खता है।" 'मिरर' के १७ अगस्त १८९४ के अंक में सिटी ट्रिब्यून की जो सामग्री छपी उसमें भी विवेकानन्द के आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व, अंग्रेजी भाषा पर अधिकार आदि की चर्चा के बाद उनके व्याख्यान का सार संक्षेप प्रस्तुत है।

'हिन्दू' ने १४ नवम्बर, १८९४ के अंक में शिकागो इंटर ओशन की जो सामग्री पुनर्मुद्रित की, उसमें विवेकानन्द के सौजन्य और उदारतापूर्ण व्यवहार का विशेष उल्लेख है। उसमें बताया गया है कि वे सभी धर्मों के सत्य को आन्तरिक रूप से स्वीकार करते हैं और पाश्चात्य जगत की महिमा और भौतिक प्रगति के प्रति उत्साह और अनुराग अनुभव करते हैं। उनके अपने देश भारत की जनता के लिए जो कुछ कल्याणकारी हो सकता है, वह सब सीखने को वे तैयार रहते हैं। १३ जनवरी, १८९४ को इंडियन नेशन में अर्नेस्ट जी डे का एक पत्र प्रकाशित हुआ कि स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में एक सार्वजनिक मन्दिर या संस्थान प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, जिसका उद्देश्य होगा – "विभिन्न धर्मों की सहायता से मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति। विभिन्न धर्म विभिन्न मार्गों की तरह हैं, सभी मार्ग एक ही लक्ष्य पर पहुँचते हैं।" पत्र-लेखक स्वयं इस संस्थान के उपाध्यक्ष थे। **(क्रमश:)**

---

१. विवेकानन्द ओ समकालीन भारतवर्ष, खंड १, पृ. १२३), **२.** वही, **३.** वही

स्वामी विवेकानन्द और राजस्थान

लेखक – स्वामी विदेहात्मानन्द
प्रकाशक – अद्वैत आश्रम, ५ डिही एण्टाली रोड, कोलकाता – ७०००१४, पृष्ठ- ६१६, मूल्य – १५०/-

साहित्य की विधाओं में एक यात्रा वृत्तान्त विधा भी है, जो अत्यन्त रोचक और लोकप्रिय। स्थूलबुद्धि या यों कहें कि अल्पमति व्यक्ति भी सरस कहानी, नाटक के द्वारा विषयों को समझ लेता है। आध्यात्मिक तत्त्व और उसके सिद्धान्त की प्रतीति कठिन होने पर भी वेद, उपनिषदों और पुराणों में कई आख्यायिकाएँ और कहानियाँ प्रस्तुत हैं, जिससे वे सरल ढंग से बोधगम्य हुईं और जन-मानस का हृदय-हार बनीं। स्वामी विवेकानन्द का वेदान्त दर्शन भले ही लोग कठिनाई से समझते हो, लेकिन उनके प्राच्य-पाश्चात्य के यात्रा-वृत्तान्त लोग बड़े ही प्रेम से पढ़ते हैं और उसमें आनेवाले सुख-दुखमय प्रसंगों से अभिभूत हो जाते हैं।
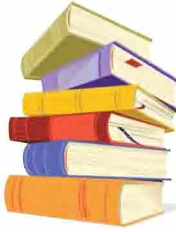
रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर से प्रकाशित होनेवाली 'विवेक ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने 'स्वामी विवेकानन्द और राजस्थान' नामक पुस्तक का प्रणयन किया है। स्वामी विदेहात्मानन्द जी स्वामी विवेकानन्द विषयक तथ्यों के गहन अध्येता और अन्वेषक हैं। रामकृष्ण मठ-मिशन में, हिन्दी में रामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य के क्षेत्र में उनकी सेवाएँ प्रखर मार्त्तंड के समान उज्ज्वल हैं। उनका यह महान ग्रन्थ वर्षों गहन शोध के बाद पूर्ण प्रामाणिकता के साथ लिखा गया है।

इस पुस्तक में कुल ४४ अध्याय हैं, जो दो खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम खण्ड में 'स्वामी विवेकानन्द का राजस्थान-भ्रमण' शीर्षक है, जिसमें २१ अध्याय हैं और द्वितीय खण्ड में 'स्वामी विवेकानन्द और राजस्थान' नामक शीर्षक हैं, जिसमें २३ अध्याय हैं।

यहाँ प्रकाशकीय उद्धरण उल्लेखनीय है – ''स्वामीजी के इस परिव्राजक जीवन के मोटे तौर पर दो खण्ड किए जा सकते हैं – ''वाराहनगर मठ से ऋषिकेश-दिल्ली तक का 'तीर्थदर्शन तथा हिमालय यात्रा' और अलवर से मद्रास तक की 'जनदर्शन तथा कन्याकुमारी यात्रा'। इस यात्रा के प्रथम दौर में वे कभी एकाकी तो कभी गुरुभाइयों के साथ उत्तर भारत में पर्यटन करते हुए ध्यान तथा समाधि के मार्ग से परम तत्त्व परमात्मा में प्रतिष्ठित होने का अथक प्रयास कर रहे थे। यात्रा के दूसरे पर्व में वे अपने मठ तथा गुरुभाइयों के साथ अपने प्रगाढ़ सम्बन्धों को स्थगित करके एकाकी पश्चिम भारत का भ्रमण करते हुए अपनी भारत माता तथा उसकी करोड़ों सन्तानों को देखने, समझने तथा उनके पुनरुद्धार के उपायों पर चिन्तन-मनन तथा ध्यान करने में तल्लीन थे।''

प्रथम खण्ड में स्वामीजी की भ्रमण की भूमिका, राजपुताना में प्रवेश, जयपुर, किशनगढ़, अजमेर, आबू और खेतड़ी, मद्रास, मुम्बई, जापान आदि स्थानों के भ्रमण की चर्चा है। 'विवेकानन्द' नाम का इतिहास, नर्तकी का मर्मस्पर्शी भजन, खेतड़ी नरेश राजा अजीत सिंह से भेंट, विश्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने हेतु अमेरिका जाने का संकल्प और दैवी आदेश की अद्भुत घटनाओं का वर्णन है। इन घटनाओं का वर्णन पढ़कर लेखक की प्रखर लेखनी का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

द्वितीय खण्ड में कनाडा, शिकागो, बॉस्टन यात्रा का उल्लेख है। शिकागो सम्मेलन से पहले स्वामीजी ने जो वहाँ संघर्ष किया और तदनन्तर शिकागो की अभूतपूर्व सफलता, उससे सम्बन्धित खेतड़ी नरेश, गुरु-भाइयों, मद्रासी मित्रों और अन्य लोगों के लिखे पत्रों का उल्लेख है। स्वामीजी का सुदीर्घ लगभग साढ़े तीन वर्षों तक अमेरिका आदि में धर्म-प्रचार कर भारत में आकर विभिन्न स्थानों और लोगों से मिलने का बड़ा सुन्दर चित्रण लेखक ने किया है। स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द जी के द्वारा खेतड़ी में किए गए सेवा-कार्यों का उल्लेख है।

यह पुस्तक एक ओर जहाँ स्वामी विवेकानन्द की संघर्षमय गाथा को प्रस्तुत करती है, वहीं दूसरी ओर स्वामीजी का भारत-भ्रमण कर भारत की स्थिति से द्रवीभूत होना, भारतवासियों के कल्याण हेतु कन्याकुमारी में ध्यान करना, योजना बनाने से सम्बन्धित घटनाएँ उनकी विराट हृदयवत्ता का दिग्दर्शन करती है।

लेखक ने पाठकों के विशेषणार्थ एक घटना के सम्बन्ध में कई लेखकों द्वार लिखित तथ्यों का भी उल्लेख किया है और उसके बाद उस सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों के आधार पर निष्पक्ष भाव से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

पुस्तक पठनीय और संरक्षणीय तो ही है, उपहार में वितरणीय भी है। लेखक सर्वप्रकारेण श्लाघनीय और प्रणम्य हैं।

जगद्गुरु श्रीरामकृष्ण

सम्पादक एवं प्रकाशक – डॉ. ओमप्रकाश वर्मा
सचिव विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर,
मोबाइल - ०९८२६३३१८१५
पृष्ठ- ३९०+५=३९५ मूल्य – २५०/-

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के शील सच्चरित्र आदि आदर्श गुणों से अलंकृत पूर्णावतार श्रीकृष्ण के कर्तव्यपरायण सदुपदेश, लोकहितकारक, धर्मसंस्थापक आदि गुणों से सुसज्जित श्रीरामकृष्ण परमहंस को जगद्गुरु पद पर प्रतिष्ठापित करने का यह श्रेयस्कर प्रयास डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने 'जगद्गुरु श्रीरामकृष्ण' ग्रन्थ के सम्पादन के द्वारा किया है। 'जगद्गुरु' एक महनीय पद होता है। जिसके विचारों, आदर्शों, मान्यताओं, धारणाओं आदि से समग्र जगत प्रभावित होकर उन्हें शिरोधार्य करता है, वही वास्तव में जगद्गुरु का सच्चा सहर्ष अधिकारी कहलाने लायक होता है। अपने क्षेत्रों में सर्वोपरि विराजमान सकलगुण निधान, महानायक, चिन्तक, धर्माधिकारी, सन्त, समाज सुधारक, राजनैतिक, राष्ट्रकवि, लोकपथ-प्रदर्शक आदि चालीस मनीषियों ने श्रीरामकृष्ण के चरित्र-चिन्तन-उपदेश-विचार-अनुभूतियाँ-प्रेरकप्रसंग-मान्यता-धारणा आदि को अपने वाक्पुष्प से सुसज्जित करने का यह महनीय प्रयास किया है। डॉ. वर्मा ने इन पुष्पों को संकलित करके पुष्पस्तवक स्वरूप पुस्तक का सम्पादन कर एक सराहनीय कृत्य किया है। इस पुष्पस्तवक में एक पुष्प स्वामी विशुद्धानन्द द्वारा सृजित है, इसमें उन्होंने ठाकुर द्वारा उपदेशित ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को उपस्थापित किया है। स्वामी वीरेश्वरानन्द ने अपने आलेखरूपी पुष्प के माध्यम से श्रीरामकृष्ण की अनेक लीलाओं के द्वारा उनके आध्यात्मिक उत्कर्ष को वर्णित किया है। शंकरी प्रसाद बसु ने श्रीरामकृष्ण की शताब्दी से सार्धशताब्दी पर्यन्त परमहंस यात्रा का वर्णन किया है। यह गदाधार चट्टोपाध्याय से प्रारम्भ होकर श्रीरामकृष्ण परमहंस के आंदोलन की यात्रा है, जो 'एकोऽहम बहु स्याम' को चरितार्थ करने वाली ईश्वर की प्रवृत्ति स्वरूप है। स्वामी निखिलानन्द ने सभी धर्मों का सार मानव-धर्म को माना है 'श्रीरामकृष्ण परमहंस के अनुसार आज का धर्म मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति ही है। पूर्वराष्ट्रपति महामहिम डॉ. एस. राधाकृष्णन् ने ईश्वर विषयक धर्मविषयक धर्मावलम्बियों की अवधाराणाओं में विद्यमान ईश्वर विषयक मतभेद को शान्त करते हुए परमहंस श्रीरामकृष्ण द्वारा उस परब्रह्म परमात्मा की एक ही परम सत्ता का अनुभव करते हुए उपदेशित किया। स्वामी बुधानन्द ठाकुर और नरेन के बीच में ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। ब्रह्म और जीव के मध्य में माया रहती है। माया का आवरण हटते ही जीव ब्रह्ममय हो जाता है। ठीक वही स्थिति यहाँ दृष्टिगोचर होती है। पं. रामकिंकर उपाध्याय लोककल्याण हेतु स्वामी विवेकानन्द को गढ़नेवाले श्रीरामकृष्ण को कुशल शिल्पी मानते हैं। उनका मानना है कि शिकागो की धर्म-महासभा में सर्वधर्म-समभाव का उपदेश देने वाले विवेकानन्द के अन्दर युगावतारी श्री रामकृष्ण परमहंस ही थे। स्वामी गौतमानन्द ने अनेक प्रसंगों के माध्यम से रामकृष्ण के आशीर्वाद की महिमा का बखान किया है। डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा ने श्रीरामकृष्ण के धर्म दर्शन की मीमांसा करते हुए त्रिसूत्राबद्ध बताया १. ईश्वर प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य, २. ईश्वर का एकत्व होना और ३. सभी धर्मों का लक्ष्य एक होना। स्वामी विदेहात्मानन्द ने श्रीरामकृष्ण के अनेक देवी देवताओं के दर्शन का वर्णन किया है। अर्नोल्ड टायनबी ने श्रीरामकृष्ण के सर्वधर्मसमन्वय और स्वामी सत्यरूपानन्द ने श्रीरामकृष्ण की सामाजिक समरसता पर प्रकाश डाला है। स्वामी प्रपत्त्यानन्द के शब्दों में वेद-वेदांग, उपनिषद, धर्म-दर्शन, शास्त्र और पुराण आदि में जिस परम तत्त्व का चिन्तन किया गया है, वह श्रीरामकृष्ण ही हैं, जो अपनी लीलाओं से भक्तों को उनके चिन्तन के अनुरूप ही लक्षित होते हैं। केदारनाथ लाभ श्रीरामकृष्ण को अमृत के पूर्ण कुम्भ के सदृश मानते हैं, जो सर्वत्र अमृतवृष्टि करता है। स्वामी हिरण्यमयानन्द कहते हैं कि रामकृष्ण विश्व के धर्मों को सीख देते हैं कि प्रत्येक धर्म शान्ति, सौहार्द और समन्वय को उपस्थापित करता है उसमें कहीं भी हिंसा, सन्देह, स्वार्थपरता नहीं है। डॉ. एन.एन.पी. सिन्हा श्रीरामकृष्ण को युगधर्म का प्रवर्तक मानते हैं। स्वामी निखिलात्मानन्द के अनुसार श्रीरामकृष्ण भगवद्भक्ति साधना के लिये १. शान्त, २. दास्य, ३. सख्य, ४. वात्सल्य और ५. मधुर पाँच भावों का उल्लेख करते हैं, जिनमें से किसी एक के द्वारा भी भगवतप्राप्ति सम्भव है। अवधेश प्रधान के आलेख में श्रीरामकृष्ण के उपदेशों में प्रयुक्त सूक्तियों के प्रयोग एवं उनके सम्पर्क में आये हुए हिन्दी भाषियों के द्वारा संभाषण में विविध शैलियों का समावेश मिलता है। कनक तिवारी

श्रीरामकृष्ण के सर्वधर्म-समन्वयात्मक विचारों का उल्लेख करते हैं। उनके विभिन्न धर्मों की साधना का वर्णन करते हैं। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा श्रीरामकृष्ण के जीवन की अनेक दिव्य झाँकियों को प्रस्तुत करते हैं। जिसमें प्रथम है सर्वदेवीस्वरूप श्रीरामकृष्ण। ठाकुर बाल्यकाल से ही अनेक देवी देवताओं के दर्शन कर तल्लीन हो जाते थे। द्वितीय है वेदान्त मूर्ति 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-का भाव मूर्तरूप दृष्टिगोचर होता था। तृतीय है युगावातार, जिसमें उन्होंने युगावश्यकतानुरूप जीवनदर्शन को प्रस्तुत किया था। स्वामी चेतनानन्द श्रीमाँ सारदा देवी द्वारा उल्लेखित श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में उनके जीवन के अनेक दिव्य, प्रेरक, आध्यात्मिक, रोचक, भावपूर्ण विविध संस्मरणों से उनकी अलौकिक झाँकी प्रस्तुत करते हैं। श्रीरामकृष्ण के उपदेशों में उपनिषदों के गूढ़ सिद्धान्तों को जन सामान्य के लिए अत्यन्त सरल सहज सुमधुर समुचित भावों द्वारा उन्हें बोधगम्य बना देते थे, चाहे वह ब्रह्मसूत्र का 'तत्तु समन्वयात्' हो अथवा विशिष्टाद्वैतवाद हो। डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा के अनुसार वे मानव रूप में एक देवता थे, जिसमें किसी भी मानव को देवता बनाने की शक्ति थी, अत: उन्हें देव-मानव कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

स्वामी तन्निष्ठानन्द ने श्रीरामकृष्ण की रसिकता, डॉ. सुरुचि पाण्डेय ने उनका सर्वत्र चैतन्य-भाव, स्वामी ब्रह्मेशानन्द ने धर्मसंस्थापकत्व का प्रतिपादन किया। स्वामी लोकेश्वरानन्द ने उन्हें अमृतवाणी का शिल्पी कहा है। सुचित्रा मित्र भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीरामकृष्ण के जीवन में अत्यन्त ही समानता स्वीकार करती है। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी श्रीरामकृष्ण और रामकृष्ण संघ को भारत के उद्धारक के रूप में देखते हैं। डॉ. सत्येन्दु शर्मा के अनुसार उनके उपदेश अध्यात्मशास्त्रीय गूढ़-जटिल सिद्धान्तों के सहज परिचायक होते थे। उनके वचनामृत को धर्म शास्त्र में अत्यन्त ही श्रद्धा से स्थान दिया गया है।

उक्त विवेचन से श्रीरामकृष्ण परमहंस में जगदगुरु पद की शोभावर्धन की क्षमता है, यह प्रमाणित है। वे युगावतार हैं। अबोध बालक से लेकर धीर-गम्भीर, ज्ञानी विज्ञानी पंडित सभी उनके वचनामृत सागर में निमग्न होना चाहते हैं। चालीस आलेख के माध्यम से श्रीरामकृष्ण के स्तवनस्वरूप जगदगुरु श्रीरामकृष्ण स्तुति चालीसा ग्रन्थ उनके वाङ्मय स्वरूप की श्री वृद्धि करता है। **समीक्षक – डॉ. राघवेन्द्र शर्मा**

आतंकनिर्मूलनं रामराज्ये

लेखक – प्रो. बालकृष्ण कुमावत
प्रकाशक – तुलसी मानस संस्थान
८१, माथुर वैश्य नगर, टोंक रोड,
जयपुर – ३०२०२९ (राजस्थान)
मोबा. ९४१४०५२८३१
पृष्ठ- ३७८+३५ =४१३, मूल्य – ४००/-

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।

भगवान श्रीराम के जन्मोद्देश्य के सम्बन्ध में श्रीरामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं – भगवान असुरों का विनाश करते हैं, देवताओं की स्थापना करते हैं, वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं, यही भगवान श्रीराम के अवतरित होने का उद्देश्य है।

सम्प्रति सम्पूर्ण विश्व आतंकवाद से त्रस्त है। यह किसी एक देश की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की समस्या है। इस वैश्विक संवेदना की अनुभूति करते हुए विद्वान लेखक श्री बालकृष्ण कुमावत जी ने 'आतंकनिर्मूलनं रामराज्ये' नामक पुस्तक की रचना की है। लेखक ने श्रीराम के जीवनादर्श को अपनाकर आतंकनिर्मूलन का मार्ग प्रस्तुत किया है। उनके विविध जीवन-प्रसंगों के द्वारा इस समस्या का समाधान दर्शाया है। इस ४१३ पृष्ठों की पुस्तक के १५ अध्याय हैं, जिनमें भगवान श्रीराम के कई जीवन-प्रसंगों पर चर्चा की गई है। इसमें ३० ग्रन्थों एवं ११ पत्रिकाओं के सन्दर्भ हैं। इससे पुस्तक की प्रामाणिकता और सारगर्भिता दृष्टिगोचर होती है।

जिस प्रकार रावण के अत्याचार से ऋषि-मुनि और प्रजा त्रस्त थी, आज उसी प्रकार आतंकवादियों से निर्दोष सज्जन विश्ववासी त्रस्त हैं। राम-राज्य की अवधारणा और उसके क्रियान्वयन से आतंकवाद समूल नष्ट होगा और विश्व में श्रीराम सदृश सुशासन और शान्ति स्थापित होगी।

परमपूज्य स्वामी सत्यमित्रानन्द जी के आशीर्वचन, मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री शिवराज सिंह जी और लगभग १६ विद्वान, चिन्तकों की शुभाशंसा पुस्तक की उपादेयता को बढ़ाती है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में वैश्विक शान्ति हेतु लेखक की यह कृति अत्यन्त प्रशंसनीय और हार्दिक श्लाघनीय है। OOO

समाचार और सूचनाएँ

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो धर्म-महासभा में प्रदत्त व्याख्यान के १२५वें स्मरणोत्सव के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मठ-मिशन के केन्द्रों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए गए –

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा में मई और जून,२०१९ में सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें ३० शैक्षणिक संस्थानों के २७९४ विद्यार्थियों ने भाग लिया। इसके बाद ९ जून को व्याख्यान, सस्वर पाठ एवं संगीत के कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें ५०० विद्यार्थियों एवं १०० अध्यापकों एवं अभिभावकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, आसनसोल में २२ जून को युवा सम्मेलन एवं व्याख्यान का आयोजन हुआ, जिसमें ६०० लोग उपस्थित थे।

रामकृष्ण मठ, हैदराबाद में २६ अक्टूबर २०१८ से २० जून २०१९ तक तेलंगाना के ८२ विद्यालयों में व्याख्यान, पाठावृत्ति एवं सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें कुल २०,७९७ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, हरिद्वार में ११ मई, २०१९ को प्रश्नोत्तरी एवं व्याख्यान प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, जिसमें २२ विद्यालयों से ८८ विद्यार्थियों ने भाग लिया। विजेताओं को १ जून, २०१९ को आयोजित कार्यक्रम में पुरस्कृत किया गया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन मैंगलूरु ने जून, २०१९ में ६ कॉलेजों में व्याख्यान आयोजित किए, जिसमें २४५० युवक उपस्थित हुए।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, मुम्बई द्वारा ३१ मई, २०१९ को गेटवे ऑफ इंडिया में आयोजित सार्वजनिक सभा में २५० लोग उपस्थित हुए।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, शिमला में १५ एवं १६, जून, २०१९ को युवा सम्मेलन एवं भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें ५९ कॉलेजों के छात्रों एवं ५२ भक्तों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा में ९ जून, २०१९ को व्याख्यान आयोजित हुआ, जिसमें ३२५ लोगों ने भाग लिया।

आश्रमों द्वारा अन्य आयोजित कार्यक्रम

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा में १२ से १९ मई, २०१९ तक बच्चों के लिये ग्रीष्मकालीन शिविर आयोजित हुए, जिसमें २५ बच्चों ने भाग लिया। जिसमें बच्चों को जप, भजन, योगासन और आदर्शोन्मुखी शिक्षा का प्रशिक्षण दिया जाता था।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, हरिद्वार में १ जून,२०१९ को सेवाश्रम का ११९वाँ स्थापना दिवस मनाया गया। इस अवसर पर उत्तराखण्ड के राज्यपाल श्रीमती बेबी रानी मौर्य एवं रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष स्वामी शिवमयानन्दजी ने सार्वजनिक सभा को सम्बोधित किया एवं सेवाश्रम की – ऑपरेशन थियेटर कॉम्पलेक्स, आई.सी.यू., सर्जिकल वार्ड, इमरजेंसी विभाग एवं सी.टी. स्केन फैसेलिटी इकाइयों का उद्घाटन किया। लगभग १००० लोग कार्यक्रम में उपस्थित हुए।

२ जून, २०१९ को पावन फलाहारणी काली पूजा के दिन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने अयोध्या में **रामकृष्ण मठ, लखनऊ** के अयोध्या-उपकेन्द्र में नव निर्मित बहु-उपयोगी भवन का उद्घाटन किया।

३ जून, २०१९ को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर** में स्वामी विज्ञानानन्द साधु निवास के प्रथम तल का उद्घाटन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी ने महाराज ने किया।

मेघालय के राज्यपाल श्री तथागत रॉय ने ८ जून, २०१९ को **रामकृष्ण मिशन, शिलांग** के विवेकानन्द सांस्कृतिक केन्द्र का परिदर्शन किया। ○○○